नलचम्पूः
राम नारायण लाल बेनीमाधव

महाकविश्रीत्रिविक्रमभट्टविरचिता

नलचम्पूः

[अन्वय, संस्कृतव्याख्या, हिन्दी अनुवाद, टिप्पणी, विशद भूमिका सहित]

व्याख्याकार

तारिणीश झा

व्याकरणवेदान्ताचार्य

प्रकाशक

रामनारायणलाल बेनीमाधव

प्रकाशक एवं पुस्तक-विक्रेता

इलाहाबाद-२

प्रथम संस्करण] १९७८ [मूल्य रु० ३·२५ पैसे

प्रकाशक
रामनारायणलाल बेनीमाधव
प्रकाशक तथा पुस्तक-विक्रेता
इलाहाबाद

जुलाई १६७८ ई०

मुद्रक
विजय कुमार अग्रवाल
नव साहित्य प्रेस
इलाहाबाद

भूमिका

'चम्पू' की परिभाषा

'चम्पयति योजयति गद्यपद्ये इति चम्पूः' इस व्युत्पत्ति के अनुसार गद्य और पद्य मिश्रित रचना को चम्पू कहते हैं। जैसा कि दण्डी ने लिखा है—

'गद्यपद्यमयी काचिच्चम्पूरित्यभिधीयते' (काव्यादर्श १, ३१)

इसी बात को साहित्यदर्पणकार ने भी पुष्ट किया है—

'गद्यपद्यमयं काव्यं चम्पूरित्यभिधीयते'

अर्थात् जिस काव्य में गद्य-पद्य का संयुक्त प्रयोग किया जाता है उसे चम्पू-काव्य कहते हैं। इस प्रकार चम्पू-काव्य में गद्य एवं पद्य का मिश्रण रहता है और यों तो वासवदत्ता, हर्षचरित तथा कादम्बरी आदि गद्य-कृतियों में भी यत्र-तत्र पद्य प्रयुक्त हुए हैं, पर प्रधानतया उन्हें गद्य-साहित्य या गद्य-काव्य के ही अन्तर्गत रखा जाता है। इसी प्रकार नीति-कथाओं में भी गद्य-पद्य का सम्मिश्रण दीख पड़ता है, किन्तु उनमें पद्यों का प्रयोग किसी विशेष प्रयोजन से ही किया जाता है और उनके पद्य या तो उन कथाओं से प्राप्त होने वाली शिक्षा के रूप में हैं या वह किसी विशेष कथन की पुष्टि में प्रमाण रूप में उद्धृत हैं। इस प्रकार साहित्य की उन अन्य विधाओं से, जिनमें कि गद्य-पद्य का मिश्रण पाया जाता है, चम्पू काव्य की पृथक्ता स्पष्ट करते समय विचारक यह मत व्यक्त करते हैं कि चम्पू में गद्य-पद्य का समान रूप से व्यवहार होता है और उसके पद्य किसी प्रयोजन विशेष से प्रयुक्त नहीं होते, बल्कि वह तो उसकी कथा के ही उसी प्रकार अंगभूत होते हैं जिस प्रकार उसके गद्य भाग। चम्पू-रामायण के रचयिता भोज ने कहा भी है कि चम्पू में गद्य और पद्य का वही पारस्परिक सम्बन्ध है जो संगीत में गीत और वाद्य का—

'गद्यानुबन्धरसमिश्रितपद्यसूक्तिः
हृद्यापि वाद्यकलया कलितेव गीतिः।

विश्वगुणादर्श के रचयिता वेंकटाध्वरि ने इस गद्य-पद्य के मिश्रण को द्राक्षा और मधु का मिश्रण बताया है ।

चम्पूकाव्य का उद्‌भव और विकास

चम्पूकाव्य का उद्‌भव ईसवीय सन् के प्रारंभ से पूर्व ही हो चुका था । गुप्तकाल के शिलालेखों से ज्ञात होता है कि इस प्रकार का काव्य चतुर्थ शताब्दी ई० में विद्यमान था । दण्डी, जिनका समय ईसा की छठी शताब्दी माना जाता है, ने भी अपने काव्यादर्श नामक ग्रन्थ में चम्पूकाव्य का लक्षण दिया है । लक्षण-ग्रन्थों की रचना लक्ष्य-ग्रन्थों की रचना के पश्चात् ही हुआ करती है, अतः दण्डी के पूर्व चम्पूकाव्य की रचना हो चुकी थी, ऐसा मानना पड़ेगा । परन्तु काव्य के सम्पूर्ण लक्षणों से समन्वित चम्पू की रचना दसवीं शताब्दी से पूर्व की उपलब्ध नहीं है । प्रथम चम्पू नलचम्पू ही है, जो १० वीं शताब्दी के आरंभकाल में रचा गया । तदनन्तर १५ वीं शती तक चम्पुओं का विकास बहुत मन्थर गति से हुआ है । इस काल के चम्पुओं में यशस्तिलकचम्पू, जीवन्धरचम्पू, रामायणचम्पू, भारतचम्पू आदि प्रसिद्ध हैं । १६ वीं शती के आरंभ से लेकर लगभग ढाई सौ वर्षों तक निरन्तर चम्पू काव्यों की रचना होती रही है । दो सौ से ऊपर चम्पू इसी काल में लिखे गये । डा० छविनाथ त्रिपाठी ने अपने शोधप्रबन्ध 'चम्पू काव्यों का आलोचनात्मक एवं ऐतिहासिक अध्ययन' में २४५ चम्पुओं का उल्लेख किया है, जिनमें ७४ चम्पू को प्रकाशित और शेष को अप्रकाशित बताया है ।

कतिपय चम्पू ग्रन्थों का परिचय

१. नलचम्पू

जैसा कि ऊपर संकेत किया जा चुका है कि सब से प्राचीन चम्पू-काव्य नलचम्पू है । इसका दूसरा नाम दमयन्तीकथा है । इसके लेखक त्रिविक्रमभट्ट हैं । कहते हैं कि त्रिविक्रमभट्ट बचपन में गण्डमूर्ख थे । इनके पिता नेमादित्य किसी राजा के यहाँ सभापण्डित थे, कार्यवश कहीं बाहर गये हुए थे । इस बीच दिग्विजय की लालसा से कोई इनके पिता का विद्वेषी विद्वान् सभा में आया और

किसी भी पण्डित से शास्त्रार्थ करने का आग्रह करने लगा। नेमादित्य को घर से बुलाने के लिए दूत भेजा गया, परन्तु नेमादित्य की अनुपस्थिति में त्रिविक्रमभट्ट को राजसभा में चलने के लिए कहा गया। त्रिविक्रम ने अपनी कुलदेवी सरस्वती से पिता की प्रतिष्ठा रखने के लिए प्रार्थना की। सरस्वती ने आशीर्वाद दिया कि जब तक तुम्हारे पिता लौटकर नहीं आते, तबतक मैं तुम्हारे मुख में निवास करूंगी। भारती के प्रसाद को पाकर त्रिविक्रम राजसभा में पधारे और प्रतिपक्षी को परास्त किया। राजा ने इनका अतिशय सम्मान किया। घर लौट आने पर इन्होंने विचारा कि जबतक भगवती की कृपा है तब तक मैं कोई ललित प्रबन्ध रच डालूं। अतएव उन्होंने 'नलचम्पू' का लिखना प्रारंभ किया। जिस दिन सप्तम उच्छ्वास समाप्त हुआ, उसी दिन उनके पिता घर लौट आये। सरस्वती उनके मुंह से निकल गईं और जहाँ तक लिखा गया था, वहीं तक यह काव्य रह गया। इस किंवदन्ती का उल्लेख नलचम्पू की विवृति नामक टीका के प्रारंभ में किया गया है।

किन्तु इस किंवदन्ती का कोई मौलिक आधार नहीं है, जिसको स्वीकार किया जा सके। क्योंकि इसको सत्य मान लेने पर जब इस अधूरे ग्रन्थ में ही त्रिविक्रम की सरस्वती लुप्त हो गई तब उन्होंने 'मदालसाचम्पू' तथा 'इन्द्रराजप्रशस्ति' ये अन्य ग्रन्थ कैसे लिखे तथा राजा इन्द्रराज के प्रमुख सभापण्डित कैसे बने रहे। अतः यह किंवदन्ती अमान्य है। तब नलचम्पू की कथा की अपूर्णता के विषय में विद्वानों की धारणा है कि त्रिविक्रम का चम्पू लिखने का उद्देश्य तो यहीं पूर्ण हो जाता है, क्योंकि गद्य-पद्य में सभंग श्लेष का जो चामत्कारिक वर्णन करना चाहिए, वह यहाँ तक पूरा हो गया है। अतएव कथा से कोई शेष प्रयोजन नहीं रह जाता है, अथवा अस्वस्थता आदि के कारण भी यदि नलचम्पू को अपूर्ण ही समाप्त करना पड़ गया हो तो असंभव नहीं है।

नलचम्पू में सात उच्छ्वास हैं और नल तथा दमयन्ती की कथा वर्णित है। प्रत्येक उच्छ्वास के अन्तिम श्लोक में 'हरचरणसरोज' शब्द है। इसमें नल के मन्त्री सालंकायन ने नल को जो उपदेश दिया है, वह कादम्बरी में चन्द्रापीड को दिये गये शुकनास के उपदेश के अनुकरण पर है। कवि ने न्याय, वैशेषिक आदि दर्शनों से भी उदाहरण लिये हैं। इसका कथानक महाभारत के

वनपर्व से लिया गया है। वनपर्व में यह कथा २७ अध्यायों में वर्णित है और नलचम्पू में इसके प्रारंभिक अध्यायों की कथा आती है। ग्रन्थ के प्रारंभ में कवि ने शिव की स्तुति के अनन्तर कवि-प्रशसा तथा खल-निन्दा और पश्चात् वाल्मीकि, व्यास, बाण तथा गुणाढ्य की कविता की प्रशंसा की है। संक्षेप में कवि-चरित भी दिया है। प्रथम उच्छ्वास में कथा का आरंभ है और शेष उच्छ्वासों में कथा का विस्तार किया गया है। नल का चरित वर्णन करने में कविवर ने अपनी नवीन कल्पना का अधिक उपयोग किया है। इसमें राजा नल द्वारा दमयन्ती के समीप जाकर इन्द्रादिलोकपालों का सन्देश पहुँचाने तक की कथा आई है। दमयन्ती का स्वयंवर, राजा नल का दमयन्ती के साथ सुखोपभोग, कलि की ईर्ष्या, पुष्कर से द्यूतक्रीडा, राज्यभङ्ग, दयन्तीपरित्याग, ऋतुपर्ण से सम्पर्क आदि मार्मिक प्रकरण इसमें वर्णित नहीं है। इसी आधार पर विद्वानों ने कल्पना की है कि नलचम्पू एक अपूर्ण काव्य है।

२. मदालसाचम्पू

त्रिविक्रमभट्ट ने एक और चम्पू-ग्रन्थ मदालसाचम्पू लिखा है। इसमें कुवलयाश्व और मदालसा की प्रेम-कथा वर्णित है। इस कथा का आधार मार्कण्डेयपुराण है। इसकी रचना उल्लासों में की गई है। 'नलचम्पू' के समान 'मदालसा' की रचना श्लेष-प्रधान नहीं है। कुवलयाश्व-चरित पातालकेतु का वध, मदालसा-परिणय, मदालसा से वियोग और उसकी पुनःप्राप्ति आदि का इसमें वर्णन किया गया है। यद्यपि इसमें उत्कृष्ट काव्य-सोष्ठव नहीं है, फिर भी कथानक की प्रणयन-चातुरी पाठक को आकृष्ट कर लेती है।

३. जीवन्धरचम्पू

एक जैन लेखक हरिचन्द्र ने जैन मुनि जीवन्धर के जीवन को लेकर जीवन्धरचम्पू लिखा है। यह ग्रन्थ ८५० ई० के लगभग गुणभद्र द्वारा लिखे गये उत्तरपुराण पर आधारित है। अतः इसका लेखक ९०० ई० के बाद हुआ होगा। उसने माघ और वाक्पति का सफलतापूर्वक अनुकरण किया है। यह निश्चयपूर्वक नहीं कहा जा सकता है कि 'धर्मशर्माभ्युदय' का लेखक और यह एक ही व्यक्ति हैं।

४. यशस्तिलकचम्पू

दसवीं शताब्दी के राष्ट्रकूट राजा कृष्ण तृतीय, जिसका दूसरा नाम कृष्णराजदेव था, के समकालीन एक जैन लेखक सोमदेव, जिन्हें सोमप्रभ सूरि भी कहा जाता है, ने यशस्तिलक चम्पू की रचना की। यह कृति पर्याप्त विस्तृत तथा जैन सिद्धान्तों की जानकारी के लिए नितान्त उपयोगी है। साथ ही संस्कृत साहित्य के इतिहास की दृष्टि से भी इस कृति का विशेष महत्त्व है, क्योंकि इसमें अनेक काव्य-रचयिताओं का भी उल्लेख है और कई ऐसी काव्य-कृतियों का भी नाम दिया गया है, जिनका आज तक कोई पता नहीं है। यशस्तिलक चम्पू के आठ उच्छ्वासों में अवन्ति नरेश यशोधर, उसकी पत्नी की कपट-धूर्तता, राजा की मृत्यु और नाना योनियों में जन्म तथा अन्ततः जैन धर्म में दीक्षा का वृत्तान्त आकर्षक ढंग से अंकित हुआ है। वस्तुतः इस चम्पू में कवि ने यही प्रतिपादित करना चाहा है कि मनुष्य जैन धर्म का पालन कर किस प्रकार अपना कल्याण कर सकता है। यशस्तिलकचम्पू की कथा भी गुणभद्र के 'उत्तर पुराण' पर आश्रित है। उसी कथा के आधार पर पुष्पदन्त ने 'जसहर चरिउ' नामक अपभ्रंश काव्य और वादिराज सूरि ने संस्कृत 'यशोधराचरित्र' नामक कृतियों की रचना भी की है। सामान्यतया सोमदेव ने बाणभट्ट की 'कादम्बरी' के आदर्श पर ही यह चम्पू लिखा है और उनके 'यशस्तिलक' में 'नलचम्पू' की भाँति श्लेष का सौन्दर्य नहीं है। सरल तथा सुरुचिपूर्ण शैली ही प्रयुक्त हुई है।

५. रामायणचम्पू

भोज ने रामायणचम्पू लिखा है। मुद्रित पुस्तक के अन्त में लेखक का नाम नहीं है, अपितु लेखक को विदर्भराज कहा गया है। भारतीय परम्परा के अनुसार मालवा में स्थित धारा का राजा इसका लेखक है। विदर्भ और मालव दो विभिन्न स्थान हैं, अतः इन दोनों स्थानों के राजा भी पृथक् व्यक्ति होंगे। अब तक जो सामग्री उपलब्ध है, उसके आधार पर भोज को विदर्भराज कहना संभव नहीं है। भोज के राज्य का समय १००५ से १०५४ ई० के बीच में है, अतः इस ग्रन्थ का समय ११ वीं शती का पूर्वार्ध होता है।

है। राजा भोज ने यह चम्पू सुन्दरकाण्ड के अन्त तक लिखा है, युद्धकाण्ड बाद में लक्ष्मण नामक किसी व्यक्ति ने लिखा है। यह चम्पू वैदर्भी रीति में लिखा गया है यह उत्कृष्ट चम्पू-ग्रन्थ है।

६. भागवतचम्पू

१०५० ई० में अभिनवकालिदास ने भागवतचम्पू लिखा है। इसमें ६ अध्यायों में भागवत की कथा है। अभिनवकालिदास नाम के कई कवि हुए हैं, अतः इस चम्पू के वास्तविक लेखक का नाम अज्ञात है।

७. उदयसुन्दरीकथा

कोंकण के राजा मुम्मुणिराज के आश्रित कवि सोड्ढल ने ११ वीं शताब्दी में उदयसुन्दरीकथा नामक चम्पू की रचना की, जिसमें बाण के हर्ष-चरित का स्पष्ट अनुकरण दीख पड़ता है। सोड्ढल गुजराती कायस्थ थे और उनका जन्म दक्षिण गुजरात के लाट देश में हुआ था। उन्होंने 'उदयसुन्दरीकथा' में प्रतिष्ठाननगर के राजा मलयवाहन के नागराज शिखण्ड तिलक की कन्या उदयसुन्दरी के साथ विवाह की कथा अंकित की है और इसमें सन्देह नहीं कि यह चम्पू अभिनव कल्पनाओं के साथ-साथ सुललित एवं सुमधुर भाषा से रिपपूर्ण है।

८. कीर्तिकौमुदी

१२४० ई० में सुरथोत्सव के लेखक सोमेश्वर देव ने चम्पू की विधा में 'कीर्तिकौमुदी' नामक ग्रन्थ लिखा। इसमें वीरधवल के मन्त्री वस्तुपाल का जीवनचरित वर्णित है।

९. गंगावंशानुचरित

वासुदेवरथ ने १४२० ई० के लगभग चम्पू रीति में 'गंगावंशानुचरित' लिखा। इसमें कलिंग पर राज्य करने वाले गंगावंश का इतिहास वर्णित है।

१०. भारतचम्पू

१५०० ई० के लगभग अनन्तभट्ट ने 'भारतचम्पू' लिखा। इसमें बारह स्तबकों में महाभारत की कथा चम्पू शैली में अंकित है।

११. वरदाम्बिकापरिणयचम्पू

१५४० ई में विजयनगर के राजा अच्युतराय की पत्नी रानी तिरुमलाम्बा ने 'वरदाम्बिका-परिणय-चम्पू' की रचना की। इसमें उन्होंने अच्युतराय एवम् वरदाम्बिका के माध्यम से स्वयं अपनी ही प्रणय-कथा लिखी है। यह चम्पू काव्य इस बात का परिचायक है कि रानी तिरुमलाम्बा का संस्कृतभाषा पर कितना विलक्षण अधिकार था और उनकी कल्पनाशक्ति कितनी उर्वर थी।

१२. आनन्दकन्दचम्पू

नीतिग्रन्थ वीरमित्रोदय के लेखक मित्रमिश्र ने १६२० ई० में श्रीकृष्ण के बाल-जीवन पर 'आनन्दकन्दचम्पू' लिखा है।

१३. भागवतचम्पू

राघवपाण्डवयादवीय के लेखक चिदम्बर ने १६०० ई० में भागवत की कथा के आधार पर भागवतचम्पू लिखा है।

१४. पारिजातहरणचम्पू

१६०० ई० में शेषकृष्ण ने पाँच अध्यायों में 'पारिजातहरणचम्पू' लिखा है। इसमें श्रीकृष्ण के द्वारा स्वर्ग से पारिजात को ले आने का वर्णन है।

१५. नीलकण्ठविजयचम्पू

१६५० ई० में नीलकण्ठ दीक्षित ने पाँच अध्यायों में 'नील-कण्ठविजयचम्पू' लिखा है। लेखक का वक्रोक्ति अलंकार पर पूर्ण अधिकार है और वह भावों की सूक्ष्मता को बहुत कुशलता के साथ प्रकाशित कर सकता है, यह उसके ग्रन्थ को देखने से ज्ञात होता है। इसमें उसने शिव के पराक्रमों का वर्णन किया है।

१६. विश्वगुणादर्शचम्पू

वेंकटाध्वरि (१६५० ई०) ने 'विश्वगुणादर्शचम्पू' लिखा है। इसमें जीवन के अच्छे और बुरे दोनों पक्षों का उल्लेख किया गया है। अपने समय में प्रचलित रीतियों और प्रथाओं की त्रुटियों का विशेष रूप से तामिल प्रदेश में प्रचलित रीतियों की त्रुटियों का उन्होंने बहुत सुन्दर ढंग से प्रतिपादन किया है।

उनके आक्रमण के विषय पुरोहित, संगीतज्ञ, ज्योतिषी, वैद्य तथा अन्य व्यवसायों के करने वाले व्यक्ति हैं। उन्होंने अनुप्रास पर अपने पूर्ण अधिकार का समुचित प्रदर्शन किया है।

१७. वरदाभ्युदयचम्पू

'वरदाभ्युदयचम्पू के लेखक भी वेंकटाध्वरि ही हैं। इसका दूसरा नाम हस्तगिरिचम्पू है। इसमें काञ्ची-स्थित देवता का महत्त्व वर्णन किया गया है।

१८. उत्तरचम्पू

'उत्तरचम्पू' भी वेंकटाध्वरि का ही लिखा हुआ है। इसमें रामायण के उत्तरकाण्ड की कथा वर्णित है।

१९. श्रीनिवासचम्पू

इस चम्पू को भी वेंकटाध्वरि ने ही लिखा है। इसमें दस अध्यायों में तिरुपति के समीप तिरुमलाइ में विद्यमान देवता की प्रशस्ति वर्णित है। वेंकटाध्वरि के उक्त चारों चम्पू ग्रन्थों में से विश्वगुणादर्श तामिल प्रदेश में बहुत अधिक प्रचलित है।

२०. चित्रचम्पू

अठारहवीं शताब्दी में वाणेश्वर विद्यालंकार ने 'चित्रचम्पू' लिखा है। यह अर्ध-ऐतिहासिक काव्य है। इसमें बर्दवान के राजा चित्रसेन के जीवन का वर्णन है, जिनका स्वर्गवास १७४४ ई० में हुआ था। यह ग्रन्थ वैष्णव भावनाओं और तत्त्वों का प्रदर्शक होने के कारण भी अत्यन्त महत्त्वपूर्ण है।

इन चम्पुओं के अतिरिक्त भी बहुत-से चम्पू-ग्रन्थ प्रकाशित तथा अप्रकाशित रूप में विद्यमान हैं। इससे संस्कृत-साहित्य में चम्पूकाव्यों की एक समृद्ध परम्परा का पता चलता है।

नलचम्पूकार त्रिविक्रमभट्ट

त्रिविक्रमभट्ट ने 'नलचम्पू' में स्वयं अपना परिचय दिया है और इस प्रकार वह शाण्डिल्यगोत्रीय ब्राह्मण थे तथा उनके पिता का नाम नेमादित्य था। यद्यपि

नलचम्पू के कुछ संस्करणों में देवादित्य नाम मिलता है, किन्तु त्रिविक्रम ने इन्द्रराज के नोसारी शिलालेख में अपने को नेमादित्य का पुत्र बतलाया है—

श्रीत्रिविक्रमभट्टेन नेमादित्यस्य सूनुना ।
कृता शस्ता प्रशस्तेयमिन्द्रराजाङ्घ्रिसेविना ।।

त्रिविक्रमभट्ट का समय अन्तरंग तथा बहिरंग प्रमाणों के आधार पर निश्चित किया जा सकता है। नलचम्पू के प्रथम उच्छ्वास में त्रिविक्रम ने बाणभट्ट (७ वीं शताब्दी ई०) का नाम निर्देश किया है—

शश्वद्बाणद्वितीयेन नमदाकारधारिणा ।
धनुषेव गुणाढ्येन निः शेषो रञ्जितो जनः ।। (१,१४)

इससे सिद्ध है कि नलचम्पू की रचना बाणभट्ट के पीछे की गई थी। भोजराज (११ वीं शताब्दी ई०) ने अपने सरस्वती कण्ठाभरण में नलचम्पू का निम्नलिखित पद्य उद्धृत किया है—

पर्वतभेदि पवित्रं जैत्रं नरकस्य बहुमतं गहनम् ।
हरिमिव हरिमिव हरिमिव वहति पयः पश्यत पयोष्णी ।। (६, ६६)

अतएव त्रिविक्रमभट्ट का समय सप्तम तथा एकादश शताब्दी के मध्य में होना चाहिए। फिर यह समय कौन-सा होगा, इस विषय में हमें एक निर्णायक प्रमाण उपलब्ध होता है। हैदराबाद के अन्तर्गत मान्यखेट के राजा जयतुंग द्वितीय के पुत्र इन्द्रराज तृतीय का राज्याभिषेक ९१५ ई० में करण्डक नगर में हुआ था, जहाँ अभिषेक के अनन्तर उनकी ओर से सुवर्णतुलादान तथा अनेक ग्रामों का दान किया गया था। इस तथ्य का सूचक एक ताम्रपत्र नवसारी ग्राम में प्राप्त हुआ है, जिसके एक श्लोक में उसके रचयिता का नाम नेमादित्य का पुत्र त्रिविक्रमभट्ट अंकित है (देखिए ऊपर का श्लोक)। पितृनाम-साम्य से स्पष्ट है कि यह ताम्रपत्र नलचम्पू के प्रणेता त्रिविक्रम का ही लिखा हुआ है, अतः त्रिविक्रम का समय दसवीं शती का पूर्वार्ध निश्चित रूप से सिद्ध होता है।

त्रिविक्रमभट्ट का दूसरा नाम 'यमुनात्रिविक्रम' था। क्योंकि जैसे कालिदास, भारवि एवं माघ के श्लोक-विशेषों पर मुग्ध होकर विद्वानों ने उन्हें क्रमशः

दीपशिखा कवि, आतपत्र कवि एवं घंटा कवि नाम से कहना प्रारंभ किया उसी तरह त्रिविक्रमभट्ट के एक पद्य के रमणीय भाव पर मुग्ध होकर सहृदय जनों ने इन्हें यह नाम प्रदान किया था। यह पद्य नलचम्पू के छष्ठ उच्छ्वास के प्रारंभ में पाया जाता है—

उदयगिरिसुतायां प्राक् प्रभापाण्डुताया-
मनुसरति निशीथे शृङ्गमस्ताचलस्य ।
जयति किमपि तेजः साम्प्रतं व्योममध्ये
सलिलमिव विभिन्नं जाह्नवं यामुनं च ॥

भाव यह है कि उदयाचल पर प्राची प्रभा का प्रकाश तथा अस्ताचल के शिखर पर अन्धकार व्याप्त हो जाने पर आकाश के बीचो-बीच प्रकाश-अंधकार का ऐसा मिश्रण हो हो रहा है मानों गंगा-यमुना का संगम हो रहा हो। कैसी अनोखी कल्पना है यह! आकाशगंगा की पंक्ति में यमुना की अवतारणा त्रिविक्रम की प्रतिभा ही कर सकी।

त्रिविक्रमभट्ट की रचनायें

यों तो त्रिविक्रमभट्ट की दो ही रचनायें हैं—एक 'नलचम्पू' और दूसरी 'मदालसाचम्पू', जिनका परिचय पहले दिया जा चुका है; किन्तु इनके अतिरिक्त भी उनकी रचना कही जाती है—इन्द्रराजप्रशस्ति। यह कोई ग्रन्थ नहीं है प्रत्युत अपने आश्रयदाता वेंकटाधीश इन्द्रराज तृतीय के राज्याभिषेक तथा उसके बाद उनके किये हुए दान आदि की प्रशस्तियां हैं, जो ताम्रपत्रों के रूप में प्राप्त हुई हैं। इन प्रशस्तियों में रचयिता के रूप में त्रिविक्रमभट्ट का नाम अंकित है और इनकी रचना भी गद्य-पद्यमय, श्लेषप्रचुर तथा काव्यगुणों से ओत-प्रोत है। उदाहरणार्थ एक पद्य यहाँ उद्धृत किया जा रहा है—

कृतगोवर्धनोद्धारं हेलोन्मूलितमेरुणा ।
उपेन्द्रमिन्द्रराजेन जित्वा येन न विस्मितम् ॥

इसमें इन्द्रराज तृतीय द्वारा मेरुनगर (कन्नौज) के राजा पर की गई विजय का वर्णन है। एक अर्थ कृष्ण तथा इन्द्र के पक्ष में लगता है, दूसरा अर्थ मेरुनगर के राजा तथा इन्द्रराज के पक्ष में।

नलचम्पू का कथासार

प्रथम उच्छ्वास—इस अवनीतल पर आर्यावर्त नाम का एक देश है। इसमें एक निषध नामक विख्यात जनपद है, जहाँ उत्तम पुरुषों द्वारा निवास करने योग्य निषधा नाम की एक नगरी है। उस नगरी में वीरसेन का पुत्र, शत्रुओं का संहारक, युद्धकुशल, प्रतापी, नीतिज्ञ, प्रजानुरञ्जक, पुण्यात्मा और परोपकारपरायण राजा नल राज्य करता है।

उसका महामन्त्री सालंकायन-सुत श्रुतिशील है, जो समस्त विद्याओं का आधार-स्तम्भ, नल का द्वितीय प्राण है। उसके मन्त्री पद पर रहने से नल को राज्य-व्यवस्था की चिन्ता बहुत कम करनी पड़ती है अतः विहार, आखेट, विनोद-गोष्ठी आदि में ही उसका अधिकांश समय व्यतीत होता है।

एक समय मेघों से जल बरसाकर सारे विश्व को आप्लुत करती हुई वर्षा ऋतु आती है। मानो सम्पूर्ण जगत् में जिसके गुण गाये जा रहे हैं और अनुपम रूपराशि से जो सम्पन्न है उस राजा नल का दर्शन करने आयी हो। इसी वर्षाकाल में आखेट-वन का रक्षक यह सूचना देता है कि उनके विहार-वन में एक भयंकर जंगली सूकर आ गया है। उसके दांत बड़े चमकीले हैं। काला तो वह इतना है कि अञ्जन या जल राशि से मेदुर मेघ की भ्रान्ति उत्पन्न कर देता है। अपनी मस्ती में किसी की चिन्ता नहीं करता। लीला-सरोवर को मथकर अस्त-व्यस्त कर दिया है। यह सुनकर राजा सोचने लगता है—इस वर्षाकाल में चारों ओर हरियाली छा जाती है, मोर नाचने लगते हैं। जला-शयों का जल दूध की तरह प्राञ्जल हो गया है। केतकी की सुगंध से भरा वायु बहने लगता है, जिससे सूकर उन्मत्त हो जाते हैं। अतः शिकार करने के लिए यह उपयुक्त समय है। ऐसा सोचकर वह बाहुक नामक सेनापति को बुलाकर आदेश देता है कि शीघ्र आखेट के लिए प्रस्थान की तैयारी करो।

राजा की आज्ञा से बाहुक शिकार की सारी सामग्री प्रस्तुत कर देता है। नल एक उत्तम घोड़े पर सवार होकर यमदूतों जैसे शिकारियों के साथ वहाँ जा पहुँचता है। वन में घुसते ही व्याधों ने सारी वनस्थली को व्यथित कर दिया है। हाथियों का दल चिग्घारने लगा है। मृगों का दल व्याधसैन्य के क्रूर

कोलाहल से ही निष्प्राण होने लगा है । बाणों के आघात से घूर्णित भैंसे धरती पर धड़ाधड़ लोटने लगे हैं। अपने वेग से अश्वों को भी नीचा दिखा देने वाले हरिण लंबी छलांगें भरते हुए मानों आकाश में ही तैर रहे हैं। इसी बीच एक जलाशय की दलदल भूमि में, दावानल से जले हुए पहाड़ की तरह वह उत्पाती सूकर दिखाई पड़ता है, जिसके रोंगटे खड़े हो गये हैं, जो राजा के घोड़ों को घूरती नजर से देख रहा है, थुथने फुलाकर घर्घर ध्वनि कर रहा है और गुच्छाकार पूंछ को ऊपर उठाये हुए है ।

उसे देखते ही राजा सावधान हो जाता है और विविध पंखों से युक्त बाणों की वर्षा उस सूकर पर वैसे ही करने लगता है जैसे वीरशिरोमणि राम राक्षसाधिप रावण पर करते थे । उन दोनों में ऐसा भयंकर युद्ध ठन जाता है, जिससे मानो पृथ्वी कांपने लगती है, पर्वत हिल उठते हैं और क्षण भर के लिए मध्याह्न का सूर्य ठिठक जाता है । दर्शकों को यह निर्णय करना कठिन हो जाता है कि फुर्ती से बाण बरसाने वाला राजा प्रशंसनीय है या उछल-उछल कर बगल काटने वाला घोड़ा अथवा राजा और घोड़े से अपने को बचाकर निकल ले जाने वाला सूकर । चिरकाल तक युद्ध में पराक्रम प्रदर्शन के बाद उस शूकरराज पर नरराज नल की विजय होती है ।

विजय के उपरान्त थका हुआ राजा एक सालवृक्ष के नीचे बैठकर आराम करने लगता है। शीतल-मन्द-सुगन्ध वायु उसे आनन्द देता है । इसी बीच वहाँ एक विचित्र वेष वाला पथिक कहीं से आता है और राजा को देखकर आश्चर्य से सोचने लगता है कि लक्षणों एवं तेजस्विता से ऐसा प्रतीत होता है कि यह कोई महापुरुष है, जो समुद्र पर्यन्त पृथ्वी का शासक हो सकता है । ऐसा सोचकर वह आगे बढ़कर कहता है--'कामविजयिन् ! आपका मंगल हो' । राजा भी आश्चर्य से गर्दन उठाकर उसका स्वागत करते हुए कहता है--'हे तीर्थयात्री ! कहो, कहाँ से आ रहे हो ? कहाँ जाओगे ? कुछ सुस्ता लो, उसके बाद कोई अपूर्व घटना सुनाओ । क्योंकि देश-विदेश में घूमने वाले लोग कई तरह के आश्चर्यजनक दृश्य देखते हैं ।

पथिक भी राजा की जिज्ञासा को सम्मानित करता हुआ कहता है--'दक्षिण दिशा में एक विदर्भ नामका देश है, जहाँ के प्रदेश प्रत्येक प्राणी को उत्कण्ठित

कये रहता है । वहाँ की प्राकृतिक सुषमा स्वर्गीय आनन्द देती है । वह देश सुन्दर एवं रसिक स्त्रियों की तो निधि ही है । वहाँ मैं गन्धमादन पर्वत पर स्थित भगवान् कार्तिकेय के दर्शन के लिए गया था । वहाँसे लौटते समय मार्ग में थककर एक वटवृक्ष के नीचे ठहरा । इतने में ही एक अत्यन्त सुन्दरी राजकुमारी अपनी प्रौढ़ सखियों सहित वहाँ आयी । मैं उसके सौन्दर्य से विमूढ होकर सोचने लगा कि यह साक्षात् लक्ष्मी या पार्वती ही तो नहीं है । उसके लावण्य का वर्णन वही कर सकता है, जिसके मुख में शेषनाग की भाँति दो हजार जिह्वायें हों ।

उसी समय वहाँ एक उत्तरवासी पथिक आया जो दक्षिण दिशा को जा रहा था । जैसे आपने मुझसे कोई अपूर्व कथा सुनाने को कहा है ऐसे ही उस राजकुमारी ने भी उस पथिक से कोई अद्भुत वार्ता सुनाने का आग्रह किया । मैंने उन दोनों के वार्तालाप का अन्तिम अंश सुना जो इस प्रकार था—

'वे आँखें धन्य हैं जो उस काम-विजयी राजा के मुख-मण्डल को देखकर तृप्त होती हैं । तुम काममञ्जरी हो और वह युवक उसका आस्वादक भ्रमर है । यदि विधाता तुम दोनों का समागम करा देता तो उसका विचित्र-रचना-संकल्प पूरा हो जाता ।'

मैं नहीं जानता कि वह भाग्यशाली युवक कौन है जिसकी उसने ऐसी प्रशंसा की । पर उसके विषय में सुनने मात्र से राजकुमारी को रोमाञ्च हो आया । आश्चर्य के मारे मैं भी किंकर्तव्यविमूढ हो गया । इसीलिए मैं उसके विषय में यह भी नहीं पूछ सका कि वह कौन है, कहाँ से आयी है और कहाँ जा रही है । अब मैं यही सोचता हूँ कि उस विश्वसुन्दरी राजकुमारी को देखकर मेरी उस दिशा की यात्रा सफल रही । आज भी आप जैसे अतिमानवसौन्दर्य की मूर्ति को देखकर मैं कृतकृत्य हो गया, देश-भ्रमण का प्रयास सफल हो गया । अब मुझे अपने देश जाने की आज्ञा दीजिए ।"

पथिक की बातें सुनकर राजा सोचने लगता है—'विदर्भदेश निश्चय ही स्त्री-रत्नों की खान है और पथिक भी यथार्थवक्ता है । किन्तु आश्चर्य तो यह है कि मैंने उस राजकुमारी को कभी आँख से नहीं देखा, उसके वंशादि का मुझे

पता नहीं, फिर भी चुम्बक की तरह उसकी लावण्य-कीर्ति मुझे खींचती चली जा रही है। मन धैर्य-द्वार को तोड़कर उसकी ओर भागा जा रहा है।

इस तरह सोचता हुआ राजा उस पथिक को अपने आभूषण देकर विदा करता है और स्वयं भी शिकारियों के दल के साथ राजधानी को लौट आता है। पर उस दिन से उसके मन की उदासी बढ़ जाती है और उसके वर्षाकालीन दिन उत्कण्ठा के कारण पथिकों से उस राजकुमारी के बारे में पूछताछ करने में ही बीतते हैं।

द्वितीय उच्छ्वास—वर्षा ऋतु का समय समाप्त हो रहा है। शरद् के आगमन के उपलक्ष्य में भ्रमरों एवं हंसों ने स्वागत-गान शुरू कर दिया है। राजा नल समीप के ही एक वन में विहार कर रहा है। किन्नर-मिथुन द्वारा गाये जाते हुए शृंगारोद्दीपक गीतों को सुनकर नल की उत्कण्ठा और भी बढ़ रही है। इस बीच कुछ वनपालिकायें आती हैं और वन के विविध दृश्यों को दिखाती हुई सभी पदार्थों का वर्णन श्लिष्ट शब्दों में करती हैं। उनकी उक्तिवक्रता पर वह बहुत सन्तुष्ट होता है और अंगों के आभूषणों को देकर उन्हें विदा करता है।

तदनन्तर वह सर्वर्तुनिवास नामक अतिरमणीय वन में घूमने लगता है। उसी समय वहाँ अचानक श्वेतकमल सदृश धवल पंखों वाले राजहंसों की मंडली आकाश से उतरती है। राजा विस्मय-स्तिमित नेत्रों से उसे देखता ही रहता है। हंसगण कमल-नालों को खाना, इधर-उधर उड़ना और विचरना प्रारंभ कर देते हैं। कौतुकवश राजा उन्हें पकड़ने का यत्न करता है और अन्ततः एक को पकड़ ही लेता है। हाथों में आते ही वह चाँदी की झाँझ की तरह मधुर ध्वनि में अत्यन्त स्पष्ट उच्चारणपूर्वक राजा को आशीर्वाद देता है।

हंस की निर्भीकता, आश्चर्यजनक रूप, वाङ्माधुरी, प्रज्ञा, अर्थ की उदारता, स्पष्ट वर्ण-व्यक्ति आदि देखकर राजा सोचने लगता है कि निश्चय ही यह पक्षी के वेष में कोई देवता है। अतएव राजा बड़े स्नेह के साथ हंस का स्वागत करता है। उत्तर में हंस कहता है कि मैं आपके दर्शन से ही तृप्त हूँ। इसी बीच अपने सहचर को पकड़ा गया देखकर हंस-वधू आँसू गिराती हुई राजा

के सम्मुख आती है और श्लेष भरी वाणी में बहुत तरह की उलाहनायें सुनाती हैं। नल भी श्लिष्ट उक्तियों में ही उसका उत्तर देता है। तब हंस नल से कहता है--'आप व्यंग्य वचनों से मेरी प्रिया को कुपित न करें'। अभी इन तीनों का वाग्विनोद चल ही रहा है कि तब तक आकाशवाणी होती है-- 'राजन्! इस हंस को छोड़ दो। यही दमयन्ती को तुम्हारी ओर आकृष्ट करने में सहायक होगा।'

दमयन्ती नाम सुनते ही राजा को रोमांच हो आता है। 'यह दमयन्ती कौन है, यह आश्चर्यजनक पक्षी कौन है और यह आकाशवाणी कैसी है, यह सब विस्तार से जानना चाहिए' यह सोचता हुआ एक छायादार लतामण्डप में बैठकर हंस से पूछता है--'कल्याणमित्र! यह दमयन्ती कौन है?' हंस कहता है--

'दक्षिण देश में कुण्डिन नाम का एक नगर है। वहाँ के राजा भीम हैं। उनकी रानी प्रियंगुमंजरी है। इनके कोई सन्तान नहीं थी। एक दिन वन-विहार करते समय एक बन्दरी के बच्चे को देखकर इन दम्पती को अपनी सन्तानहीनता के कारण बड़ा दुःख हुआ। रानी प्रियङ्गुमञ्जरी तथा महाराज भीम अभी विचार ही कर रहे थे कि सन्ध्याकाल आ गया। अन्त में भीम ने पत्नी को यह युक्ति बताई कि वह कामवर्षी भगवान् शंकर की आराधना करे। पति की आज्ञा से रानी आशुतोष की आराधना में संलग्न हो गई।

तृतीय उच्छ्वास--एक रात सुखपूर्वक सोयी हुई प्रियंगुमंजरी ने रात्रि के अन्तिम भाग में स्वप्न देखा--'भगवान् शंकर चन्द्रमण्डल से उतरकर कह रहे हैं कि--हे पुत्री! यह पारिजात की मंजरी ले लो। प्रातःकाल मेरी आज्ञा से दमनक मुनि आकर तुम पर अनुग्रह करेंगे। यह कह कर वे मंजरी दे देते हैं। वह भी प्रसाद रूप में उसे ग्रहण करती है। प्रातः काल रानी ने भगवान् भुवन-भास्कर को नमस्कार करके स्तुति की। इधर महाराज भीम भी प्रातःकालिक कृत्य करके रानी से मिलने के लिए अन्तःपुर पहुँचे। उन्होंने रानी की प्रसन्न मुख-मुद्रा देखकर जान लिया कि भगवान् शिव ने अनुग्रह किया है। रानी ने अपने स्वप्न का वृत्तान्त राजा से कह दिया। तब राजा ने भी कहा कि मैंने भी आज गत रात स्वप्न में गणेश, कार्तिकेय तथा पार्वती सहित भगवान् शंकर को

देखा है। अतएव पुरोहित जी हम दोनों के स्वप्नों का फल बतायेंगे। उस समय वहाँ उपस्थित पुरोहित बोला—'महाराज ! अवश्य ही आप लोग संसार को अपने यश से व्याप्त करने वाली सन्तान प्राप्त करेंगे।'

इसी बीच सूर्य-मण्डल से एक महामहिम मुनि उतरे उनका दमनक नाम था। राजा ने उनकी अगवानी करके प्रणाम किया और उच्च स्वर्णासन पर बैठाया। तब मुनि बोले—'हम भगवान् चन्द्रमौलि के आदेश से आपको यह सूचित करने आये हैं कि आपको एक लोकोत्तर कन्यारत्न की प्राप्ति होगी। जब रानी ने यह सुना तो वह दुःखी हुई, क्योंकि वह पुत्र चाहती थी कन्या नहीं। अतः वह बोली—'भगवन् ! मुझे कन्यारत्न का वरदान नहीं चाहिए।' इस पर मुनि ने कहा—'हे चन्द्रमुखी ! भगवान् सदाशिव ही सब प्राणियों के शुभाशुभ को देखकर तुलाधर के समान तोल-तोल कर फल देते हैं। मैं क्या कर सकता हूँ।' तब रानी ने मुनि से क्षमा माँगी और उन्हें आभूषण, वस्त्र, माला आदि देने लगी। पर मुनि ने किसी भी वस्तु को स्वीकार नहीं किया और यह कहते हुए आकाश में उड़ गए कि ये वस्तुएँ आप ही लोगों को शोभा देती है, हमें नहीं।

कालक्रम से रानी गर्भवती हुई और उसने एक कन्यारत्न को जन्म दिया। राजा ने दमनक मुनि द्वारा दिये गये वरदान का स्मरण करके उस कन्या का नाम दमयन्ती रखा। वह शनैः शनैः माता-पिता को आनन्द देती हुई बढ़ने लगी। शीघ्र ही कन्याजनोचित गीतवाद्यादि कला एवं कुलाचार आदि में निपुण हो गई। अब उसका शरीर अभिनवयौवनलावण्य से विभूषित हो गया है। वह इतनी हृदयावर्जक हो गई है कि जिस युवक की दृष्टि उस पर पड़ जाती है, वह अपलक नेत्रों से उसे निहारता ही रह जाता है।' इतना कहकर हंस चुप हो जाता है।

चतुर्थ उच्छ्वास—इस वृत्तान्त को सुनकर विषयासक्त हुआ राजा मन में सोचता है कि मैंने पथिक के मुख से जिस सुन्दरी के विषय में सुना था, वह अवश्य ही यही कन्या है। फिर वह हँसकर हंस से कहता है कि हे सुमधुरभाषी महात्मा ! जो कुछ सुनने योग्य था, वह मैं सुन चुका। अब तुम स्वेच्छानुसार अपनी क्रीडा की वापी या उसके आस-पास की भूमि में विहार करो। तत्पश्चात् राजा राज-

भवन की ओर चला जाता है। वह हंस बहुत समय तक उस सरोवर की लहरों पर क्रीडा करके राजहंसों के झुंड के साथ ही आकाश में उड़ जाता है।

शीघ्र ही सब हंस विदर्भ देश के अलंकारभूत कुण्डिनपुर पहुँच कर राज-भवन के पास कन्यान्तः पुर के क्रीडोद्यान-सरोवर में उतर पड़ते हैं। उनको देखकर उत्कण्ठा से दमयन्ती शीघ्र ही वहाँ जाकर उसी हंस को पकड़ लेती है, जिसको नल ने पकड़ा था। उसके हाथों में आकर हंस दमयन्ती को आशी-र्वाद देता है कि दीर्घलोचन वाले नल को तुम पति के रूप में प्राप्त करो। उस हंस की इस प्रकार की सुसंस्कृत वाणी सुनकर दमयन्ती विचार करती है कि यह नल अवश्य ही वही है, जिसके विषय में गौरी-महोत्सव में जाते समय एक पथिक ने वर्णन किया था। तदनन्तर दमयन्ती उस हंस से उस नल के विषय में पूछती है। हंस कहना प्रारंभ करता है--

'नल निषध देश का राजा है। उसके पिता का नाम वीरसेन तथा माता का नाम रूपवती है। नल बाल्यकाल से ही कुशाग्रबुद्धि हैं। जब से वे समस्त विद्याओं में पारंगत होकर तरुण हो गये हैं तब से उनकी मुखकान्ति चन्द्रमा से स्पर्धा करने लगी है। उनका सौन्दर्य नयनाभिराम हो गया है। श्रुतशील नाम का एक ब्राह्मण उनका मन्त्री और मित्र है। उसके पिता सालंकायन महाराज वीरसेन के प्रधान मंत्री थे। एक दिन राजसभा में वीरसेन और सालंकायन दोनों उपस्थित थे। नल ने पिता को प्रणाम किया, सालंकायन को नहीं। इससे सालंकायन को दुःख एवं क्रोध हुआ। उन्होंने नल को युवराजोचित उपदेश दिया। वीरसेन ने भी सालंकायन की बातों का समर्थन किया। अनन्तर वीरसेन ने वन में जाकर तपस्या करने की इच्छा प्रकट की। ज्योतिषियों ने बताया कि उसी दिन राज्याभिषेक का शुभ मुहूर्त है। उसी समय आकाश से कुछ मुनिगण उतरे, जिनके हाथों में समस्त तीर्थों के जल तथा अभिषेक की सामग्री थी। खूब धूमधाम से राज्याभिषेक हुआ। सपत्नीक वीरसेन वन में चले गये। सालंकायन भी अपने पुत्र श्रुतशील को नल का मंत्री बनाकर स्वयं वीरसेन का अनुयायी बना। नल पितृवियोग से दुःखी रहने लगे। किन्तु परि-जनों द्वारा मन-बहलाव किये जाते हुए वे कालयापन कर रहे हैं'।

पञ्चम उच्छ्वास--यह सुनकर दमयन्ती की एक परिहासशीला सखी उस राजहंस से कहती है कि हे महानुभाव ! जिस प्रकार यह बाला तुम्हारे द्वारा ऐसे प्रेम भरे वाक्यों से उस राजा पर मोहित कराई गई है उसी प्रकार तुम उस राजा को भी इस सखी के प्रति आसक्त करो। कभी एक हाथ से ताली नहीं बजती, दोनों को ही एक दूसरे पर आसक्त होना आवश्यक है। दमयन्ती ने भी उस हंस से यह कहकर कि तुम पुनः यहाँ पर आना, अपने गले की मोतियों की माला उस हंस की ग्रीवा में डाल देती है। तत्पश्चात् वे राजहंस उस तालाब में विहार करके पर्वत, वन, ग्राम, नगर आदि का अतिक्रमण करते हुए निषधा नगरी की वाटिका में जाकर वहाँ स्वच्छन्दता पूर्वक विहार करने लगते हैं। नल की वनपालिका दासी उसी हंस को पकड़कर राजा के पास ले जाती है। वह हंस राजा नल से दमयन्ती के अवलोकन से आरंभ करके हार दिये जाने तक का समस्त विवरण कहता है और वह मोतियों की माला राजा को समर्पित कर देता है। राजा प्रेमपूर्वक उस माला को गले में पहन लेता है। तदुपरान्त वह राजा अपने अन्य समस्त कार्यों से विश्वस्त होकर उस हंस के साथ दमयन्ती से सम्बन्धित बातों एवं विनोद में ही अनेक दिन बिता देता है। एक दिन हंस राजा से विदा लेकर चला जाता है। उसके चले जाने पर नल दमयन्ती के प्रति और भी अधिक उत्कण्ठित हो उठता है।

उधर दमयन्ती की यौवनावस्था देखकर महाराज भीम स्वयंवर का आयोजन करते हैं, जिसमें सकल भूपालों को आमन्त्रित किया जाता है। जो वृद्ध ब्राह्मण दूत बनकर उत्तर की ओर जाने वाला है उससे श्लिष्ट वाणी में दमयन्ती नल को अवश्य लाने को कहती है। जब वृद्ध ब्राह्मण निषधा नगरी से लौट-कर आता है तो वह दमयन्ती से बताता है कि नल भी तुम्हारे प्रति अत्यधिक उत्कण्ठित हो रहे हैं।

निमन्त्रण पाकर नल भी अपने दल-बल के साथ कुण्डिनपुर के लिए प्रस्थान कर देता है। मार्ग में पर्वतों, नदियों, नगरों आदि को पार करता हुआ वह विन्ध्याचल पहुँचता है। वहाँ एक दिन विश्राम करके नर्मदा के किनारे वह अपने दल-बल का डेरा डालता है। उस समय सुन्दर वेष-भूषा धारण करके आकाश-मार्ग से इन्द्र आदि देवों का आगमन सूचित होता है। जब देवगण

राजा के पास पहुँचते है और राजा उनसे आगमन का कारण पूछता है तो इन्द्र कुबेर की ओर ताकने लगते हैं। कुबेर नल से कहते हैं कि नारद जी से दमयन्ती के स्वयंवर का समाचार प्राप्त करके हम लोग भी कुण्डिनपुर के प्रति जा रहे हैं। किन्तु अपने मुँह से किसी से कुछ माँगने में हिचकिचाहट हो रही है। अतः हम चाहते हैं कि तुम हमारे दूत बनो। यह सुनकर नल बड़े धर्म-संकट में पड़ जाता है, किन्तु अन्त में वह देवों का दूत होना स्वीकार कर लेता है।

षष्ठ उच्छ्वास--इसी बीच धीरे-धीरे एक के बाद एक मार्ग मापते हुए राजा नल को एक जगह किसी व्यक्ति का गाना सुनाई पड़ता है। ज्यों ही राजा उसके सम्मुख होता है त्योंही वह बड़े मनोहर शब्दों में राजा की स्तुति करना प्रारंभ कर देता है। राजा अपने अंगों के आभूषण देकर उसका सत्कार करता है और सामने बहती हुई नदी का तथा उसका अपना परिचय पूछता है। वह बताता है कि इस नदी का नाम तापी है और मेरा नाम पुष्कराक्ष है। मैं सन्देश-वाहक हूँ। आपकी प्रेयसी दमयन्ती ने मुझे आपका समाचार जानने के लिए भेजा है। कल आपकी उसके भेजे हुए किन्नरमिथुन से भी भेंट होगी। उसने अपने करकिसलय से भोजपत्र पर आपको यही पत्र लिखा है। नल उत्सुकता से उसे खोलकर पढ़ने लगता है। उसमें लिखा था कि 'हे नल ! नल होते हुए भी तुम मुझे अनल के समान क्यों सन्तप्त कर रहे हो ? मैं उस दिन की प्रतीक्षा में हूँ, जब कुण्डिनपुर की भूमियाँ तुम्हारे चरणों से विभूषित होंगी'। तब राजा नल उस पुष्कर के साथ दमयन्ती के सम्बन्ध में बातें करता हुआ चिरकाल तक वहीं ठहर जाता है।

इसी बीच एक स्थान पर किन्नर-मिथुर का परस्परालाप राजा के कानों में पड़ता है। निकट पहुँचने पर पुष्कराक्ष परिचय देता है कि यह सुन्दरक नाम का किन्नर और यह विहंगवागुरिका नाम की किन्नरी है। सुन्दरक राजा को प्रणाम करके दमयन्ती द्वारा प्रदत्त अंगूठी, रेशमीवस्त्र का जोड़ा तथा मनोहर मणिकर्णपूर उपहार देता है। राजा दमयन्ती की भेंट स्वीकार करके अपने शिविर में आकर किन्नर-किन्नरी के विद्या-विनोदों एवं अद्‌भुत गीतियों से मनो-रंजन करता हुआ दमयन्तीविषयक वार्तालाप में ही रात्रि व्यतीत कर देता है।

प्रातः काल पुष्कराक्ष और किन्नर-मिथुन के साथ सदलबल राजा की यात्रा पुनः प्रारंभ हो जाती है। पुष्कराक्ष वन-प्रदेशों की रमणीय शोभा का वर्णन करता चलता है। अन्त में जब सब विदर्भ देश पहुंच जाते हैं तब पुष्कराक्ष राजा से कहता है कि आप यहीं विदर्भा तथा वरदा के संगमतट पर सेना-निवेश करायें। यह सुन राजा वहीं पर अपने दल बल के साथ डेरा डाल देता है।

सप्तम उच्छ्वास—नल के आगमन का समाचार सुनकर कुण्डिनपुर के नागरिक और नगरवधूजन राजा के सत्कारार्थ पुष्प-फल आदि लेकर आते हैं और स्वयं विदर्भ-नरेश भीम भी आकर राजा नल का यथोचित सम्मान करते हैं। इसी बीच दमयन्ती द्वारा प्रेषित कुब्जिका और वामनिका विविध उपहार लेकर नल के पास पहुँचती हैं। नल उनसे दमयन्ती का उपहार लेकर, उसका कहलाया सन्देश सुनकर तथा दमयन्ती विषयक तरह-तरह की बातें करके बहुत प्रसन्न होता है। जब वे लौट जाती हैं तब राजा पर्वत नामक एक वामन पुरुष को पुष्कर और किन्नर-मिथुन के साथ दमयन्ती के पास भेजता है।

जब राजा मध्याह्नकृत्य सम्पन्न करके भोजन-कक्ष में जाता है तो उसे बाहर बड़ा कोलाहल सुनाई पड़ता है। प्रतीहारी से पूछने पर पता चलता है कि दमयन्ती की ओर से सैनिकों को उत्तमोत्तम भोजन कराया जा रहा है, नल के लिए दमयन्ती ने अपने हाथ से स्वादिष्ठ भोजन बनाकर भेजा है। प्रिया के हाथ का बनाया हुआ भोजन नल बहुत चाव से खाता है तथा उसकी पाक-कला की भूरि-भूरि प्रशंसा करता है। भोजनोपरान्त थोड़ी देर विश्राम करने पर देखता है कि पर्वतक, जिसे कुछ देर पूर्व नल ने दमयन्ती के पास भेजा था, खूब सजा-धजा हुआ और अलंकार धारण किये हुए लौटा है। वह नल से कहता है—'हे स्वामी ! यहां से जाकर-राजप्रासाद में कुब्जिका और वामन कन्याओं ने सौभाग्य की देवी तथा सौन्दर्य की खान दमयन्ती से कहा कि हे देवी ! इन्द्र आदि लोकपाल तुमको चाहते हैं और उन लोकपालों के कहने से राजा नल यहाँ पर देवताओं का दूत-कार्य सम्पादन हेतु आये हैं। इस बात को सुनकर दमयन्ती बहुत चिन्तित हो उठी हैं।'

राजा नल भी यह समाचार पाकर सोचने लगा कि एक ओर तो मैं दुर्निवार मन्मथ के शरों से आहत हूँ और दूसरी ओर इन्द्र की आज्ञा है। अब यहाँ क्या करना चाहिए। लोकपालों की आज्ञा तो अवश्य ही पालनीय है। ऐसा विचार कर नल अकेला ही राजा भीम के भवन में जाकर वहाँ इन्द्र द्वारा प्रदत्त वरदान के प्रताप से कन्याओं के अन्तःपुर में प्रवेश करता है। प्रवेश करने पर दमयन्ती के भवन के पीछे वह खड़ा हो जाता है और वहाँ सखियों के गीतों से प्रमुदित की जाती हुई दमयन्ती का अवलोकन करता है।

इस प्रकार प्रविष्ट हुए राजा नल को देखकर दमयन्ती अत्यन्त विस्मित होती है और विचार ने लगती है कि राजा नल यहाँ किस प्रकार प्रविष्ट हुए। क्योंकि यहाँ अनेक प्रकार के रक्षक हैं, जिनके कारण बाहरी पक्षी भी यहाँ प्रविष्ट नहीं हो सकता। अतएव भूपाल नल का रात्रि में यहाँ प्रवेश पाना विस्मयावह है। नल भी उस अनुपम सुन्दरी दमयन्ती को देखकर मुग्ध रह जाता है और बड़ी कठिनाई से अपने आप को सँभालकर इन्द्र आदि देवों का सन्देश कहता है। तथा उन्हीं में से किसी को वरने का अनुरोध करता है। तब उसकी सखी प्रियंवदा बोलती है—'महाराज ! जो सुनना था सुन लिया, देवताओं का संदेश भी जान लिया। पर किसी के प्रति प्रेम अपनी इच्छा से नहीं अपितु ईश्वरेच्छा से ही होता है। यह मेरी सखी तो आप में ही अनुरक्त है। आपको छोड़कर किसी अन्य का वरण नहीं करेगी।'

इसके पश्चात् नल अन्तःपुर में अधिक देर ठहरना उचित न समझकर वहाँ से प्रस्थान कर देता है। किन्तु दमयन्ती की रूप-माधुरी का पान करने के कारण अब उसका मन उससे हटाये नहीं हटता है। अतएव वहाँ से वापस आकर अत्यन्त कोमल पलंग पर लेटने पर भी वह दमयन्ती विषयक उत्कण्ठा में ही सारी रात बिता देता है।

नलचम्पू एवं महाभारत की नल-कथा में अन्तर

यद्यपि नलचम्पू की कथावस्तु का आधार महाभारत के वनपर्व में वर्णित 'नलोपाख्यान' ही है तो भी नलचम्पूकार ने अपनी कल्पना के अनुरूप पर्याप्त अन्तर करके चम्पू की रचना की है। (१) महाभारत के नलोपाख्यान

में दमनक मुनि भीम-दम्पती को पुत्री-प्राप्ति के साथ तीन पुत्रों के होने का भी वरदान देते हैं जबकि नलचम्पू में पुत्रों की तो कोई बात ही नहीं है बल्कि केवल पुत्री का वरदान पाकर भीम-भार्या मुनि पर कुपित होती है। (२) महाभारत में नल के मंत्री श्रुतशील की कोई चर्चा नहीं है, जबकि नलचम्पू में वह सदा नल के साथ रहता है। (३) महाभारत में जब नल अयोध्या में छद्म-वेष में राजा ऋतुपर्ण के यहाँ सारथि के रूप में रहा था तब उसने अपना नाम बाहुक रखा था, पर नलचम्पू में बाहुक नल का सेनापति था। (४) महाभारत में नारद और पर्वत दोनों के ऋषि हैं, जबकि नलचम्पू में पर्वतक नल का सेवक है। फिर नलचम्पू की निम्नलिखित बातें तो महाभारत में बिलकुल ही नहीं पायी जाती हैं—

(१) पथिकों के द्वारा नल और दमयन्ती के सामने एक दूसरे के सौन्दर्य की प्रशंसा करना, (२) किन्नरमिथुन द्वारा शरद्गायन, (३) वन-पालिका के द्वारा हंस को पकड़कर लाना, (४) हंस के पकड़े जाने पर हंसी का करुण विलाप करना, (५) आकाशवाणी होना, (६) वानरी के बच्चे को देखकर प्रियगुमंजरी को अपनी अनपत्यता पर दुःखी होना, (७) दमयन्ती की सखी का हंस से वार्तालाप करना, (८) हंस को दमयन्ती के द्वारा मुक्ताहार देना, (९) इन्द्रादि देवों के आगमन की सूचना देने के लिए आकाश से निर्निमेष पुरुष का उतरना, (१०) कुण्डिनपुर की ओर जाते हुए नल को मार्ग में दमयन्ती के द्वारा प्रेषित पुष्कराक्ष, किन्नर, किन्नरी, सुन्दरक और विहंगवागुरिका आदि का साक्षात्कार होना, (११) नल और दमयन्ती का परस्पर एक दूसरे के पास उपहार भेजना, (१२) कुंडिनपुर के समीप पहुँचने पर पुरवासियों तथा राजा भीम का नल से मिलना, (१३) दमयन्ती द्वारा स्वादिष्ठ भोजन नल तथा सैनिकों के लिए भेजना इत्यादि वर्णन महाभारत में नहीं है।

नलचम्पू का मूल्याङ्कन

नलचम्पू में जैसे सरस तथा प्रसन्न श्लेष पाये जाते हैं, उतने रमणीय तथा चमत्कार-जनक श्लेष इतनी अधिकता में अन्यत्र समुपलब्ध नहीं होते। यद्यपि श्लेष का प्रयोग नलचम्पू से लगभग चार सौ वर्ष पहले की रचना (सुबन्धु की)

वासवदत्ता में भी हम देखते हैं, किन्तु उसके श्लेष एक तो दूरारूढ हैं और दूसरे उसमें प्राय: अभंग श्लेष का ही चमत्कार है, जब कि नलचम्पू की श्लेष-योजना में एक ओर सारल्य है और दूसरी ओर सभंगता भी। सभंग श्लेष की सरल योजना करने में नलचम्पूकार त्रिविक्रम के समान पटु कोई भी कवि नहीं दिखाई देता। इस कवि को पता है कि सभंग श्लेष के कारण कविता में कठिनता आ जाती है—'वाचः काठिन्यमायान्ति भंगश्लेषविशेषतः'। अतएव उन्होंने छोटे-छोटे अनुष्टुपों में इतनी सुन्दरता के साथ सभंग श्लेष का प्रयोग किया है कि उसके समझने में पदों के विशेष तोड़ मरोड़ करने की आवश्यकता नहीं होती और अर्थ भी अनायास विशेष परिश्रम के विना हृदयंगम हो जाता है। यथा—

प्रसन्नाः कान्तिहारिण्यो नानाश्लेषविचक्षणाः।
भवन्ति कस्यचित्पुण्यैर्मुखे वाचो गृहे स्त्रियः॥ (१,४)

सदूषणापि निर्दोषा सखरापि सुकोमला।
नमस्तस्मै कृता येन रम्या रामायणी कथा॥ (१,११)

अप्रगल्भाः पदन्यासे जननीरागहेतवः।
सन्त्येके बहुलालापाः कवयो बालका इव॥ (१, ६)

नलचम्पू के श्लेष विरोधाभास, परिसंख्या, रूपक, उपमा, भ्रान्तिमान्, उत्प्रेक्षा आदि अलकारों से मिश्रित होकर और भी अधिक कमनीयता उत्पन्न कर देते हैं। श्लिष्ट विरोधाभास का उदाहरण देखिए—

ब्रह्मण्योऽपि ब्रह्मवित्तापहारो स्त्रीयुक्तोऽपि प्रायशो विप्रयुक्तः।
सद्वेषोऽपि द्वेषनिर्मुक्तचेताः को वा तादृग् दृश्यते श्रूयते वा॥ (१,३९)

इस मे श्लिष्टोपमा का प्रयोग भी जमकर किया है। देखिए आर्यावर्त के वर्णन-प्रसंग में—

यत्र चतुरगोपशोभिताः संग्रामा इव ग्रामाः। परशुराम इव परशुभासितः। राघव इवालघुकोदण्डभङ्गरञ्जितजनकः।

इसमें श्लिष्ट परिसंख्या का प्रयोग भी बहुलता से मनोहर रूप में किया गया है। प्रथम उच्छ्वास में ही इसके कई उदाहरण आये हैं। इसमें आये

हुए प्रायः सभी पात्र--नल, दमयन्ती, श्रुतशील, मृगयावनपालक, सरोरक्षिका, पथिक, राजहंस, किन्नर-मिथुन आदि श्लिष्ट भाषा बोलते हैं। श्लेष के अतिरिक्त अलंकारों में से विरोध, परिसंख्या, उपमा, उत्प्रेक्षा, भ्रान्तिमान् तथा विभावना भी इसमें कम आकर्षक नहीं हैं। अनुप्रास की छवि सर्वत्र दिखाई देती है। कई स्थानों पर यमक का प्रयोग भी हुआ है। यमक का एक सुन्दर उदाहरण अवलोकनीय है--

धृतकदम्बकदम्बकनिष्पतन्नवपरागपरागममन्थराः ।
हृततुषारतुषा रतिरागिणां प्रियतमा मरुतो मरुतो वधुः ।

नलचम्पू में प्रकृति-चित्रण भी भव्य हुआ है। पर्वत, वन, उपवन, नदी, सरोवर, आश्रम, चन्द्रोदय, संध्या, प्रातःकाल, वर्षा ऋतु एवं शरद् ऋतु आदि का मनोरंजक वर्णन किया गया है। प्रथम उच्छ्वास में वर्षा ऋतु का जो नारीपरक समासोक्तिमय एवं मानवीकरण के रूप में चित्रण है, वह अत्यन्त मनोरंजक एवं सहृदयों के हृदय को आकर्षित करने वाला है। द्वितीय उच्छ्वास में शरद् ऋतु, वन एवं चन्द्रोदय आदि का बड़ा ही सुन्दर वर्णन है। वन-वर्णन का एक चित्र देखिए--

यत्र त्रिजटाश्रयमनेकजटाः, स्फुरदेकपुष्पमनेकपुष्पाः, समुद्वेजितराममानन्दितरामाः समुपहसन्ति लङ्केश्वरं तरवः ।

इस वन के वृक्ष रावण की हँसी उड़ा रहे हैं, क्योंकि रावण के पास एक ही त्रिजटा थी जब कि वृक्षों के पास अनेक जटायें हैं, रावण के पास एक ही पुष्प (पुष्पक विमान) था, इनके पास अनेक पुष्प हैं और रावण ने राम को उद्विग्न किया था जब कि ये वृक्ष रामाओं अर्थात् स्त्रियों को आनन्दित करने वाले हैं।

फूलों से लदे हुए वृक्षों पर काले-काले भौंरे उड़ रहे हैं, उनको बादल समझकर मोर कोमल केका (वाणी) करता हुआ नाच रहा है तथा पिच्छ को तरलित कर रहा है--

पटलमलिकुलानामुन्नमन्मेघनीलं
भ्रमदुपरि तरूणां पुष्पितानां विलोक्य ।

मुदुमदकलकेकानिर्भरो नृत्यसक्त-
स्तरलयति कलापं मन्दमन्दं मयूरः ।। (२, ४)

दूसरे और सातवें उच्छ्वासों में चन्द्रोदय का वर्णन तो कवि के प्रकृति का विलक्षण प्रेमी सिद्ध करता है—

'आप्लावितमिव मुक्तमर्यादेन दुग्धवार्धिना, सिक्तभूभागाङ्गणमिवामन्दचन्दनाम्बुच्छटाभिः, विलिप्तदिग्भित्तिकमिव सान्द्रसुधापङ्कपिण्डितैः, पूरितमिवोत्सर्पिकर्पूरपांसुवृष्ट्या, प्रविष्टमिव स्फटिकमणिमहामन्दिरोदरदरीम्, उत्प्लवमानमिव द्रवीभूततुहिनाचलमहाप्लवेन भुवनमासीत् ।'

अर्थात् चन्द्रिका से भवन धवलित हो जाने पर ऐसा प्रतीत होता था मानो दूध का समुद्र सीमा का अतिक्रमण करके उमड़ पड़ा हो, मानो चन्दन के जल से भूमण्डल को सींच दिया गया हो, मानो अमृत के गाढ़े घोल से दिशाओं की दीवारें पोत दी गई हैं, मानो कपूर का चूर्ण बरस रहा है, मानो महल सफेद स्फटिक मणि के विशाल मन्दिर के अन्दर प्रवेश कर गया है, मानो पिघले हुए हिमालय की बाढ़ आ गई है।

पांचवें उच्छ्वास में विन्ध्य-स्थलियों का चारु चित्रण भी चमत्कारजनक है। नर्मदा नदी का आकर्षक चित्रण, वृद्ध तापसों का वर्णन, जल-विहार करती हुई पुलिन्द रमणियों का रमणीय चित्रण, सहृदयों के हृदयों को सहज ही अपनी ओर आकर्षित कर लेते हैं। कहीं विशाल वृक्ष हैं, कहीं भ्रमर-पंक्तियां हैं, कहीं विशाल पूंछ वाले बंदर और पक्षियों की मनोहर पंक्तियां सुशोभित हो रही हैं। फूलों के भार से लदे हुए वृक्षों के वर्णन में रूपक मिश्रित उत्प्रेक्षा अलंकार की योजना कितनी सुन्दर बन पड़ी है—

वायुस्कन्धमवष्टभ्य स्फारितैः पुष्पलोचनैः ।
वियद्विस्तारमेते हि वीक्षन्त इव पादपाः ।। (५, ४५)

छठे उच्छ्वास में प्रभात-वर्णन के प्रसंग में नलचम्पूकार ने आकाश में गंगा और यमुना के संगम की जो उत्प्रेक्षा की, उससे सुधीसमाज इतना आनन्दविभोर हुआ कि उसने कवि को 'यमुनात्रिविक्रम' की उपाधि से विभूषित कर दिया—

उदयगिरिगतायां प्राक्प्रभापाण्डुताया-
मनुसरति निशीथे शृङ्गमस्ताचलस्य ।
जयति किमपि तेजः साम्प्रतं व्योममध्ये
सलिलमिव विभिन्नं जाह्नवं यामुनं च ॥ (६, १)

अर्थात् एक त्रिविक्रम तो विष्णु हैं जिनके चरण-कमलों से निकलकर गंगा जी आकाश में आई हैं और दूसरे ये त्रिविक्रम नलचम्पूकार हैं, जिनके पद-प्रयोग ने यमना को भी आकाश में उपस्थित कर दिया है। अतएव यदि विष्णु 'गंगा-त्रिविक्रम' हैं तो ये भी 'यमुना-त्रिविक्रम' हुए ।

इस प्रकार नलचम्पू में प्रकृति के अनेक रूपों का श्लिष्ट एवं चामत्का-रिक चित्रण पर्याप्त रूपेण किया गया है ।

नलचम्पू का प्रतिपाद्य रस विप्रलम्भ शृंगार है । नल और दमयन्ती दोनों, पथिक तथा हंस से एक दूसरे के अनुपम सौन्दर्य को सुनकर परस्पर आसक्त होते हैं और एक दूसरे को प्राप्त करने के लिए आतुर हो उठते हैं। कवि ने यहाँ विप्रलम्भ का वर्णन उद्दीपन रूप में किया है । दोनों की दशा का परि-संख्यामय वर्णन निम्न गद्यांश में देखिए--

'एवमनयोरन्योन्यप्रेषितप्रच्छन्नदूतोक्तिवर्धितानुरागयोः चलन्त्यङ्गानि न मनो-रथाः, परिवर्तते चक्षुः न हृदयम्·····वर्धते चिन्ता न रतिः । शुष्यत्यधरपल्लवो नाग्रहरसः' । (पञ्चम उच्छ्वास)

काव्य की समाप्ति भी विप्रलम्भ के वर्णन के साथ ही होती है । अंगी रस के अतिरिक्त अंग रूप में कहीं-कहीं वीर, रौद्र, भयानक, करुण, हास्य और अद्भुत रसों का भी संनिवेश हुआ है । प्रथमोच्छ्वास में मृगया और नल के संग्राम में वीर रस की अभिव्यक्ति हुई है । शूकर की आकृति एवं उसकी भय उत्पन्न करने वाली क्रूर चेष्टायें तथा शिकारियों के भय से अन्य जंगली पशुओं की भयावह स्थिति का चित्र भयानक की अनुभूति करा रहा है । चतुर्थ उच्छ-वास में नल को छोड़कर वीरसेन के वन चले जाने पर करुण रस की भी अभिव्यक्ति हो रही है । हंस-हंसी के मनुष्य-वाणी में वार्तालाप करते समय

तथा नल के सहसा कन्यान्तः पुर में दमयन्ती के पास पहुँच जाने पर अद्भुत रस की अनुभूति होती है। द्वितीय, पञ्चम तथा सप्तम उच्छ्वासों में वार्तालाप के प्रसंग में हास्य रस की अभिव्यक्ति होती है।

'नलचम्पू' में वस्तु-चित्रण एवं वृत्त-वर्णन भी कुशलतापूर्वक किये गये हैं। इसके स्वभावोक्तिमय वस्तु-चित्र हृत्पटल पर हूबहू अंकित हो जाते हैं। प्रथम उच्छ्वास का शूकर, पथिक तथा राजपुत्री का वर्णन, तृतीय का मुनि-वर्णन, पञ्चम का विन्ध्य-भूमियों तथा जरत्-तापसों का वर्णन एवं षष्ठ का ग्राम्य-नारियों एवं सस्य-स्थलियों का वर्णन इसके उत्तम उदाहरण हैं। वृत्त-वर्णन में मृगया, भोजन, स्नान, यात्रा आदि के चित्रण चमत्कारोत्पादक हैं। पात्रों का चरित्र-चित्रण भी सुन्दर हुआ है। शिक्षाप्रद मधुर सूक्तियों की कमी नहीं है। चौथे उच्छ्वास में नल को सालंकायन द्वारा दिया गया उपदेश कादम्बरी के शुकनासोपदेश का स्मरण करा देता है--

'तत् तात, सुविषमेघवर्तिनि विद्युद्विलास इवास्थिरे स्थितस्तारुण्ये मा स्म विस्मर स्मयेन विनयम्। अविनीतोऽग्निरिव दहति।.....आवर्जय गुणान्। निर्गुणे धनुषीव सुवंश्येऽपि कस्याग्रहो भवति। अभ्यस्य कलाः। निष्कलो वीणाध्वनिरिव न प्रशस्यते पुरुषः।' इत्यादि।

किन्तु उक्त प्रकार गुणविशिष्ट होने पर भी 'नलचम्पू' दोष-रहित नहीं है। आलोचकों का कहना है कि कवि इसमें श्लेष की शाब्दी क्रीडा में ही रमा है। जहाँ श्लेष की आवश्यकता नहीं थी वहाँ भी श्लेष प्रदर्शित किया है। जैसे--द्वितीय उच्छ्वास में हंस, हंसी और नल परस्पर क्लिष्ट श्लेष में वार्तालाप करते हैं। हंस के पकड़े जाने पर हंसी की वेदना हास-परिहास का रूप ले ले, यह उचित नहीं प्रतीत होता। इस प्रसंग में नैषधीयचरित का करुण चित्रण कहीं हृदयावर्जक है। कहीं सौन्दर्य-चित्रण तथा प्रकृति-चित्रण श्लेषादि अलंकारों के भार से इतना आक्रान्त हो गया है कि उसकी स्वाभाविकता नष्ट हो गई है। अवान्तर लंबे वर्णनों के कारण कथा-प्रवाह की गति बहुत मन्थर हो गयी है। अतएव सात उच्छ्वासों में थोड़ा-सा ही कथांश आ पाया है। कथा की

अपूर्णता तो और भी दोषावह है। नल-दमयन्ती का बिना विवाह कराये ऐसे स्थल पर कवि ने कथा को छोड़ दिया है जहां कथा का टूट जाना बहुत खलता है। इस प्रकार कतिपय अन्य दोष भी इसमें पाये जाते हैं। पर गुणबहुल इस काव्य को कुछ दोष उसी प्रकार अग्राह्य नहीं बना सकते जैसे कुछ कांजी के छींटे अथाह जल-राशि को खट्टा नहीं कर सकते।

प्रयाग
गुरुपूर्णिमा
२०३५ वि०

तारिणीश झा

॥ श्रीः ॥

नलचम्पूः

प्रथम उच्छ्वास

मंगलाचरण--

जयति गिरिसुतायाः कामसन्तापवाहि-
न्युरसि रसनिषेकश्चान्दनश्चन्द्रमौलिः ।
तदनु च विजयन्ते कीर्तिभाजां कवीना-
मसकृदमृतबिन्दुस्यन्दिनो वाग्विलासाः ॥१॥

अन्वय—गिरिसुतायाः कामसन्तापवाहिनि उरसि चान्दनः रसनिषेकः चन्द्रमौलिः जयति । तदनु च कीर्तिभाजां कवीनाम् असकृत् अमृतबिन्दुस्यन्दिनः वाग्विलासाः विजयन्ते ॥१॥

संस्कृत-व्याख्या--गिरिसुतायाः--पर्वतपुत्र्याः पार्वत्याः, कामसन्तापवाहिनि--कन्दर्पपीडाधारिणि, उरसि—वक्षसि, चान्दनः--मलयजसम्बन्धी, रसनिषेकः--द्रवाभिषेकः, चन्द्रमौलिः—इन्दुशेखरः, जयति--सर्वोत्कृष्टो भवति । तदनु च--तत्पश्चात् च, कीर्तिभाजां--यशः शालिनां, कवीनां--काव्यकाराणाम्, असकृत्--वारं वारम्, अमृतबिन्दुस्यन्दिनः--अमृतबिन्दून् पीयूषलवान् स्यन्दयन्ति वर्षन्तीति तादृशाः, वाग्विलासाः--वाणीविभ्रमाः, विजयन्ते—महिमान्विता भवन्ति ॥१॥

हिन्दी अनुवाद--पार्वती के काम-सन्तप्त वक्षःस्थल पर चन्दन-रस के सेचन रूप चन्द्रशेखर (शिव) सर्वोत्कृष्ट हैं। उसके पश्चात् यशस्वी कवियों के बार-बार अमृतबिन्दु टपकाने वाले वाणी के विलास उत्कृष्ट हैं ॥१॥

टिप्पणी--(१) गिरिसुतायाः--पार्वती के। गिरेः हिमालयस्य सुता गिरिसुता, तस्याः। किन्तु गिरि का अर्थ राजा भीम भी है। 'गिरिर्भीमनृपे सूर्ये स्वभावे पर्वते जले' इति कोषः । अतएव इससे कथा की ओर संकेत मिलता है,

क्योंकि इसमें नल-दमयन्ती की कथा वर्णित है और दमयन्ती के पिता राजा भीम ही थे। (२) कामसन्तापवाहिनि—कामजन्य सन्ताप का वहन करने वाले। कामस्य सन्तापः तं वोढुं शीलमस्य इति कामसन्तापवाहि कामसन्ताप√वह्+णिनि, तस्मिन्। (३) उरसि—छाती पर। (४) चान्दनः—चन्दन-सम्बन्धी। चन्दनस्य अयम् चान्दनः चन्दन+अण्। (५) रसनिषेकः—रस या जल का छिड़कन। नि√सिच्+घञ्=निषेकः, रसस्य निषेकः। (६) चन्द्रमौलिः—शिव। चन्द्रः मौलौ यस्य सः। भगवान् शंकर सकल मंगलों के मूल तथा समस्त रसों के निकेतन हैं, इसलिए कवि ने मंगलाचरण में पहले उन्हीं की जय कही है। शंकर की प्रथम वन्दना करने का यह भी रहस्य है कि 'ज्ञानं महेश्वरादिच्छेद्धनमिच्छेद्धनञ्जयात्' इति अभियुक्तोक्ति के अनुसार सुकाव्य रचने के लिए ज्ञान शंकर से ही प्राप्त किया जा सकता है। 'चन्द्रमौलि' पद से यह भी सूचित किया गया है कि चन्द्रमा के अमृतांशु या शीतांशु होने के कारण उसकी शीतलता से पार्वती का सन्ताप मिटेगा और चन्द्र के प्रकाश से जैसे अन्धकार का नाश होता है उसी तरह इस ग्रन्थ के प्रकाश से पाठक का अज्ञानान्धकार दूर होगा। (७) तदनु—उसके बाद अर्थात् रसाधार शंकर के बाद रस की अभिव्यक्ति के कारणभूत व्यास, वाल्मीकि आदि कवियों की। (८) कीर्तिभाजाम्—कीर्तिशाली। कीर्तिं भजन्ते इति कीर्तिभाजः कीर्ति√भज्+ण्वि, तेषाम् (९) असकृत्—बार-बार या निरन्तर। (१०) अमृतबिन्दुस्यन्दिनः—अमृत की बूँदें बहाने वाले। अमृतबिन्दु√स्यन्द्+णिनि। (११) वाग्विलासाः—वाणी के विलास। वाचां विलासाः वाग्विलासाः।

जैसा कि ऊपर संकेत किया जा चुका है, इस श्लोक में नलदमयन्ती की कथा की ओर संकेत है। तदनुसार अर्थ होगा—राजा भीम की पुत्री दमयन्ती की काम-सन्तप्त छाती पर नल चन्दननिषेक सदृश होगा, जो नल चन्द्रवंशियों के मौलिमुकुट है। इस श्लोक में रूपक अलंकार है और मालिनी छन्द है। इसका लक्षण—'ननमयययुतेयं मालिनी भोगिलोकैः' ॥१॥

कामदेव और कामिनी-कटाक्ष का वर्णन—

जयति मधुसहायः सर्वसंसारवल्ली-
जननजरठकन्दः कोऽपि कन्दर्पदेवः।

तदनु पुनरपाङ्गोत्सङ्गसञ्चारितानां
जयति तरुणयोषिल्लोचनानां विलासः ॥२॥

अन्वय—मधुसहायः सर्वसंसारवल्लीजननजरठकन्दः कोऽपि कन्दर्पदेवः जयति। तदनु पुनः अपाङ्गोत्सङ्गसञ्चारितानां तरुणयोषिल्लोचनानां विलासः जयति ॥२॥

संस्कृत-व्याख्या—मधुसहायः—वसन्तसखः, सर्वसंसारवल्लीजननजरठकन्दः —सर्वः सकलः संसारः जगत् एव वल्ली लता तस्याः जनने समुत्पादने जरठकन्दः कठोरबीजवद्विद्यमानः समस्तसंसारोत्पत्तिहेतुरित्यर्थः, कोऽपि—अनिर्वचनीयः, कन्दर्पदेवः—कामदेवः, जयति—सर्वोत्कर्षेण वर्तते । तदनु—तत्पश्चात्, पुनः—भूयः, अपाङ्गोत्सङ्गसञ्चारितानाम्—अपाङ्गोत्सङ्गे नेत्रप्रान्तक्रोडे सञ्चारितानां प्रवर्तितानां, तरुणयोषिल्लोचनानां—तरुणयोषितां युवतीनां यानि लोचनानि नेत्राणि तेषाम्, विलासः—कटाक्षादिविभ्रमः, जयति—सर्वोत्कर्षेण वर्तते ॥२॥

हिन्दी अनुवाद—वसन्त रूपी मित्र वाला तथा समस्त संसार रूपी लता को उत्पन्न करने में कठोर बीज रूप अनिर्वचनीय कामदेव उत्कृष्ट हैं। तत्पश्चात् पुनः आँखों की कोर की गोद में चलाया गया युवतियों का नेत्रविलास उत्कृष्ट है ॥२॥

टिप्पणी—(१) **मधुसहायः**—वसन्त जिसका मित्र हो। मधुः सहायो यस्य सः । (२) **सर्वसंसारवल्लीजननजरठकन्दः**—सम्पूर्ण संसार रूपी लता को उत्पन्न करने में कठोर या परिपक्व कन्द या बीज । जैसे वीज लता को उत्पन्न करता है वैसे कामदेव संसार को उत्पन्न करता है। (३) **अपाङ्गोत्सङ्गसञ्चारितानाम्**—नेत्र-प्रान्त की गोद में संचारित । कामिनियों की तिरछी चितवन को कटाक्ष कहते हैं और कटाक्ष आँखों की कोर की गोद में चलाया जाता है । सर्वः संसारः (कर्म० स०), स एव वल्ली (मयूरव्यंसकादित्वात्) (रूपकरूप-समासः), तस्याः जननम् (ष० त०), तस्मिन् जरठकन्दः (सुप्सुपास०) ॥ जरठः कन्दः (कर्म० स०) । (४) **तरुणयोषिल्लोचनानाम्**—युवतियों के नेत्रों का । तरुण्यः योषितः (कर्म० स०), तासां लोचनानि (ष० त०) ।

इस श्लोक में कन्दर्प में कन्दत्व के आरोप के प्रति संसार में वल्लीत्व का आरोप कारण है, इसलिए परम्परितरूपक अलंकार है और मालिनी छन्द है ॥२॥

सारस्वत स्रोत का वर्णन--

अगाधान्तः परिस्पन्दं विबुधानन्दमन्दिरम् ।
वन्दे रसान्तरप्रौढं स्रोतः सारस्वतं वहत् ॥३॥

अन्वय--अगाधान्तः परिस्पन्दं रसान्तरप्रौढ विबुधानन्दमन्दिरं वहत् सारस्वतं स्रोतः वन्दे ॥३॥

संस्कृत-व्याख्या—अगाधान्तः परिस्पन्दं—(वाणी-पक्षे) अगाधः अपरिमितः अन्तः मनसि परिस्पन्दः चमत्कारः येन तादृशम् (नदीपक्षे) अगाधा गम्भीरा अन्तः मध्ये परिस्पन्दा आवर्ता यस्य तादृशम्, रसान्तरप्रौढं—(वाणीपक्षे) रसानां शृङ्गारादीनाम् अन्तरेण वैशिष्ट्येन प्रौढं संसारं (नदीपक्षे) रसाया भूम्या अन्तरे अभ्यन्तरे प्रौढं कृतप्रवाहं, विबुधानन्दमन्दिरं--(वाणीपक्षे) विबुधानां देवानां पण्डितानां वा आनन्दमन्दिरं हर्षहेतुकं (नदी-पक्षे) विषु पक्षिषु बुधाः श्रेष्ठाः राजहंसाः तेषाम् आनन्दमन्दिरं हर्षस्थानं, वहत्--(वाणीपक्षे) प्रवहत् (नदीपक्षे) प्रसरत्, सारस्वतं--सरस्वत्याः वाण्याः सम्बन्धि (नदीपक्षे) सरस्वत्याः सरस्वतीति नाम्न्याः नद्याः, स्रोतः--प्रवाहं, वन्दे—नमस्करोमि स्तौमि वा ॥३॥

हिन्दी अनुवाद--वाणी पक्ष में—हृदय में अपरिमित चमत्कार उत्पन्न करने वाले, (शृंगार आदि नौ) रसों की विशेषता से प्रौढ़, विद्वानों के हर्षस्थान और विकसनशील वाणी के प्रवाह की वन्दना करता हूँ ।

नदी पक्ष में--मध्य में गंभीर भँवर वाले, पृथ्वी के भीतर प्रौढ (अर्थात् प्रगल्भता से बहने वाले), देवताओं या पक्षिश्रेष्ठों (राजहंसों) के आनन्द-धाम तथा बहते हुए सरस्वती नदी के प्रवाह की स्तुति करता हूँ ॥३॥

टिप्पणी--(१) **अगाधान्तः परिस्पन्दम्**--(१) अन्तः करण में विशिष्ट चमत्कार उत्पन्न करने वाले, (२) अथाह गहराई के बीच तरंगित होने वाले । (२) **रसान्तरप्रौढम्**—(१) रसों के वैशिष्ट्य से प्रगल्भ, (२) पृथ्वी के भीतर प्रौढ(प्रकर्षता से बहने वाली)। 'रसा विश्वम्भरा स्थिरा' इत्यमरः। 'अन्तरमवकाशावधिपरिधाना-

न्तर्धिभेदतादर्थ्ये" इति चामरः। (३) विबुधानन्दमन्दिरम्--(१) विद्वानों के आनन्द के मन्दिर, देवताओं या श्रेष्ठ पक्षियों के आनन्द-निकेतन ।(४) वहत्--बहते हुए। √वह्+लट्—शतृ। (५) सारस्वतम्--सरस्वती देवी तथा सरस्वती नदी के। (६) स्रोतः--प्रवाह को।

इस श्लोक में शब्दशक्तिमूलक ध्वनि से सरस्वतीनदीपरक अर्थ सूचित होता है, जो वाणी और नदी के उपमानोपमेय भाव सम्बन्ध को व्यक्त करता है। इसमें अनुष्टुप् छन्द है ॥३॥

वाणी की वर्णना—

प्रसन्नाःकान्तिहारिण्यो नानाश्लेषविचक्षणाः ।
भवन्ति कस्यचित्पुण्यैर्मुखे वाचो गृहे स्त्रियः ॥४॥

अन्वय--पुण्यैः (एव) कस्यचित् मुखे प्रसन्नाः कान्तिहारिण्यः नानाश्लेषविचक्षणाः वाचः (तथा कस्यचित्) गृहे (प्रसन्नाः.....) स्त्रियः भवन्ति ॥४॥

संस्कृत-व्याख्या--पुण्यैः—सुकृतैः, (एव) कस्यचित्—कस्यचन जनस्य, मुखे--आनने, प्रसन्नाः--प्रसादगुणयुक्ताः, कान्तिहारिण्यः—कान्तिः औज्ज्वल्यरूपः शब्दगुणः दीप्तरसत्वरूपः अर्थगुणश्च तेन हारिण्यः मनोहराः, नानाश्लेषविचक्षणाः—नाना बहुविधं शब्दगुणार्थालंकारशब्दालंकाररूपं चतुर्विधं श्लेषं श्लेषालंकारं विशेषेण चक्षते प्रकथयन्ति इति तादृश्यः, वाचः--सूक्तयः, (तथा कस्यचित्) गृहे--भवने, (प्रसन्नाः—प्रसन्नचित्ताः, कान्तिहारिण्यः--कान्त्या शरीरसौन्दर्येण हारिण्यः मनोज्ञाः, नानाश्लेषविचक्षणाः--नाना बहुविधः यः आश्लेषः आलिङ्गनं तत्र विचक्षणाः निपुणाः, स्त्रियः—रमण्यः, भवन्ति--जायन्ते ॥४॥

हिन्दी-अनुवाद--(वाणी-पक्ष में) पुण्यों से (ही) किसी के मुख में प्रसादगुणयुक्त, औज्ज्वल्यरूप कान्तिगुण के कारण मनोहर तथा अनेक प्रकार के श्लेषालंकारों को प्रकट करने वाली वाणियाँ आती हैं। (स्त्री-पक्ष में) पुण्यों से (ही) किसी के घर में (सदा) प्रसन्न (रहने वाली) कान्ति (सौन्दर्य) से मनोहर तथा अनेक प्रकार के आलिंगन करने में निपुण रमणियाँ आती हैं ॥४॥

टिप्पणी--(१) **प्रसन्नाः**--(१) प्रसादगुणयुक्त, (२) प्रसन्नता से युक्त। प्र√ सद्+ क्त। प्रसाद शब्दगुण, अर्थगुण होता है। आचार्य वामन के अनुसार जहाँ बन्ध की गाढता के कारण शिथिलता भी विद्यमान रहती है वहाँ प्रसाद शब्दगुण होता है। गाढता और शिथिलता दोनों ही विरुद्ध धर्म हैं। दोनों का एक जगह अवस्थान प्रतिकूल प्रतीत होता है। किन्तु जैसे करुण रस के नाटकों में सुख और दुःख का सम्मिश्रण होता है उसी तरह प्रसाद गुण में भी ओज गुण का मिश्रण रहता है--'करुणप्रेक्षणीयेषु सम्प्लवः सुखदुःखयोः। यथाऽनुभवतः सिद्धस्तथैवोजः प्रसादयोः॥' (का० सू० वृ० ३, १, ६)। और प्रसाद अर्थगुण वहाँ होता जहाँ श्रवण मात्र से शब्दों के अर्थ की प्रतीति हो जाती है। (२) **कान्तिहारिण्यः**--कान्तिगुण के कारण मनोहर, कान्ति से विभूषित। कान्ति√ हृ+णिनि+ङीप् (ई)। कान्ति शब्दगुण वहाँ होता है जहाँ रचना में उज्ज्वलता (नवीनता) होती है। और कान्ति अर्थ गुण वहाँ होता है जहाँ रस की दीप्ति लक्षित होती है। (४) **नानाश्लेषविचक्षणाः**--(१) विभिन्न श्लेषालंकारों को बताने वाली (२) विविध आलिंगनों में दक्ष। श्लेष--श्लेषालंकार चार प्रकार का होता है--शब्दगुण, अर्थगुण, शब्दालंकार और अर्थालंकार। आचार्य चण्डपाल के अनुसार श्लेष=आलिंगन बारह प्रकार का होता है--स्पृष्टक, विद्धक, उद्घृष्ट, पीडन, लतावेष्टक, वृक्षाधिरूढ, तिलतण्डुल, क्षीरनीर, अरूपगूढ, जघनोपश्लेष, स्तनालिंगन और लालाटिक।

इस श्लोक में श्लेष अलंकार है। यहाँ 'वाचः स्त्रिय इव' तथा 'स्त्रियः वाच इव' में परस्पर उपमान उपमेय भाव भी है। इसमें अनुष्टुप् छन्द है॥४॥

काव्य और बाण को मर्मस्पर्शी होना चाहिए--

किं कवेस्तेन काव्येन किं काण्डेन धनुष्मतः।
परस्य हृदये लग्नं न घूर्णयति यच्छिरः॥५॥

अन्वय--कवेः तेन काव्येन किम्? धनुष्मतः तेन काण्डेन च किम्? यत् परस्य हृदये लग्नं सत् शिरः न घूर्णयति॥५॥

संस्कृत व्याख्या--कवेः--काव्यकर्तुः, तेन--तथाविधेन, काव्येन--रसात्मकवाक्येन, किं--किम्प्रयोजनं न किमपि प्रयोजनमित्यर्थः, धनुष्मतः--धनुर्धारिणः,

तेन, काण्डेन--बाणेन, च, किम् ? यत्--काव्यं काण्डं च, परस्य--अन्यस्य श्रोतुः शत्रोश्च, हृदये--मनसि वक्षसि च, लग्नं--संसक्तं, सत्, शिरः--मस्तकं, न घूर्णयति--न चालयति (अर्थात् काव्यपक्षे अद्भुतचमत्कारेण न चमत्करोति तथा शत्रुपक्षे दुःसहपीडया न कम्पयति) ।।५।।

हिन्दी अनुवाद--कवि के उस काव्य से क्या (लाभ) ? और धनुर्धारी के उस बाण से क्या (लाभ) ? जो दूसरे के हृदय में लगकर (उसके) सिर को न हिला दे (अर्थात् काव्यपक्ष में अद्भुत चमत्कार से सिर को न झुमा दे तथा बाण पक्ष में पीडा से सिर को न भन्ना दे) ।।५।।

टिप्पणी--(१) कवेः--कवते सर्वं जानाति श्लोकान् ग्रथते वर्णयति वा इति कविः√कु+इ, तस्य। (२) काव्येन--कवेः इदं कर्म वा इति काव्यम् कवि+ष्यञ्, तेन । (३) धनुष्मतः--धनुष धारण करने वाले के । धनुः अस्ति अस्य इति धनुष्मान् धनुष्+मतुप्, तस्य । (४) काण्डेन--बाण से । 'काण्डः स्तम्भे तरुस्कन्धे वाणेऽवसरनीरयोः' इति मेदिनी। (५) परस्य--दूसरे के, शत्रु के । (६) न घूर्णयति--संचालित न कर दे ।

इस श्लोक में भी श्लेष अलंकार तथा अनुष्टुप् छन्द है ।।५।।

कुकवि की वाणी अग्राह्य होती है--

अप्रगल्भाः पदन्यासे जननीरागहेतवः ।
सन्त्येके बहुलालापाः कवयो बालका इव ।।६।।

अन्वय--एके कवयः पदन्यासे अप्रगल्भाः जननीरागहेतवः बहुलालापाः बालकाः इव सन्ति ।।६।।

संस्कृत-व्याख्या--एके--केचन, कवयः--काव्यरचयितारः पदन्यासे--पदानां सुप्तिङन्तरूपाणां न्यासे नैयत्यप्रयोगे, अप्रगल्भाः अनिपुणाः, जननीराग-हेतवः--जनानां विद्वज्जनानां नीरागे रागाभावे हेतवः कारणम्, बहुलालापाः--बहुलः प्रचुरः आलापो निःसारोक्तिविन्यासो येषां तथाविधाः (सन्तः) बालकाः, इव, सन्ति । (बालकपक्षे व्याख्या--) पदन्यासे--चरणक्षेपे, अप्रगल्भाः--अनिपुणाः, जननीरागहेतवः--जनन्याः मातुः रागः अनुरागः तस्य हेतवः

कारणम्, बहुलालापाः--बह्वीः प्रचुराः लालाः सृणिकाः पिबन्तीति तादृशाः अथवा बह्व्यः लालाः अप्स्वरूपाः येषु तादृशाः) ॥६॥

हिन्दी अनुवाद--कुछ कवि (सुप्तिङन्त रूप) पदों के रखने में (बालक-पक्ष में पैर रखने में) अनिपुण (अनाड़ी) लोगों में (कविता के प्रति) अरुचि उत्पन्न कर देने वाले (बालक-पक्ष में माता के अनुराग को बढ़ाने वाले तथा बहुत-सी व्यर्थ बातों को कहने वाले) (बालक-पक्ष में बहुत लार पीने वाले) बालकों के समान होते हैं ॥६॥

टिप्पणी--(१) **पदन्यसे**--काव्यार्थ के अनुकूल शब्दों के प्रयोग में, पैरों के रखने में। नि√अस्+घञ्=न्यासः, पदानां न्यासः पदन्यासः (ष० त०)। तस्मिन्। (२) **अप्रगल्भाः**--जो प्रगल्भ (ढीठ या निपुण) न हो, अनाड़ी। (३) **जननीरागहेतवः**--(कविपक्ष में) लोगों में (कविता के प्रति) वैराग्य के हेतु अर्थात् विरक्ति या अरुचि उत्पन्न करने वाले। निकृष्टो रागः नीरागः (प्रादिसमास), जनानां नीरागः, तस्य हेतवः (ष० त०)। (बालक-पक्ष में) माता के अनुरागों के उत्पादक। जनन्याः रागः, तस्य हेतवः (ष० त०)। (४) **बहुलालापाः**—(कवि-पक्ष में) बहुत निरर्थक प्रलाप करने वाले। बहुलः आलापो येषां ते (ब० स०)। (बालक-पक्ष में) बहुत लार पीने वाले। बह्वीः लालाः बहुलालाः (कर्म० स०), पूर्वपदे पुंवद्भावः, ताः पिबन्ति इति बहुलाला √पा+क+ टाप् (आ)=बहुलालापाः। अथवा बह्व्यो लाला अप्स्वरूपा येषु (ब० स०), 'ऋक्पूरब्धूः--इति सूत्रेण समासान्तः अच्प्रत्ययः।

इस श्लोक में श्लिष्टोपमा अलंकार है तथा अनुष्टुप् छन्द है ॥६॥

अकारण द्वेष करने वाले दुष्टों की गोष्ठी से अलग रहना चाहिए--

अक्षमालापवृत्तिज्ञा कुशासनपरिग्रहा।
ब्राह्मीव दौर्जनी संसद्वन्दनीया समेखला ॥७॥

अन्वय--अक्षमालापवृत्तिज्ञा कुशासनपरिग्रहा समेखला दौर्जनी संसद् ब्राह्मी इव वन्दनीया ॥७॥

संस्कृत-व्याख्या--अक्षमालापवृत्तिज्ञा--(दुर्जनगोष्ठीपक्षे) अक्षमया असहन-शीलतया क्रोधेनेत्यर्थः य आलापः संभाषणं तस्य वृत्तिं व्यवहारं जानातीति

तथाविधा (विप्रगोष्ठीपक्षे) अक्षाणां रुद्राक्षाणां माला स्रक् तस्याः अपवृत्तिः भ्रमणं जपार्थं करे संचालनमिति यावत् तां जानातीति तथाविधा, कुशासनपरिग्रहा—(दुर्जनगोष्ठी-पक्षे) कुशासनस्य कुत्सितशिक्षणस्य परिग्रहः स्वीकारः यस्याः तादृशी (विप्रगोष्ठीपक्षे) कुशानां दर्भाणाम् आसनानि पीठानि तेषां परिग्रहः स्वीकारो यस्याः तादृशी, समेखला—(दुर्जनगोष्ठीपक्षे) समे साधौ खला दुष्टा प्रतिपक्षभूतेति यावत् (विप्रगोष्ठीपक्षे) मेखलया काञ्च्या सहिता युक्ता, दौर्जनी—दुर्जनसम्बन्धिनी, संसद्—सभा, ब्राह्मी—विप्रसम्बन्धिनी (संसद्), इव—यथा, वन्दनीया—नमस्करणीया दूरतः परिहरणीयेति यावत् ।।७।।

हिन्दी-अनुवाद—असहनशीलतापूर्वक बात करने का व्यवहार जानने वाली (विप्रसभा-पक्ष में—रुद्राक्षमाला फेरने का ज्ञान रखने वाली), कुशिक्षा स्वीकार करने वाली (विप्रसभा-पक्ष में—कुशों का आसन स्वीकार करने वाली) तथा सज्जन के प्रति दुष्टता करने वाली (विप्रसभा-पक्षमें—मूँज की बनी मेखला (करधनी) से युक्त) दुर्जनों की सभा विप्रों की सभा की तरह वन्दनीय है (अर्थात् दूर से ही परिहरणीय है ।।७।।

टिप्पणी—(१) **अक्षमालापवृत्तिज्ञा**—(१) अक्षमा या असहनशीलता पूर्वक बात करने की शैली को जानने वाली (दुर्जनसभा)। न क्षमा अक्षमा (न० त०), तया आलापः (सुप्सुपा स०), तस्य वृत्तिः (ष० त०), तां जानातीति अक्षमालापवृत्ति√ज्ञा+क कर्तरि+टाप् (आ) । (२) रुद्राक्षमाला फेरने का ढंग जानने वाली (विप्रसभा) । अक्षाणां माला, तस्याः अपवृत्तिः (ष० त०) तां जानातीतिपूर्ववत् । (२) **कुशासनपरिग्रहा**—(१) कुत्सित शिक्षा ग्रहण करने वाली (दुर्जनसभा) । कुत्सितं शासनं कुशासनम् (प्रादिसमास), कुशासनस्य परिग्रहः यस्याः सा (व्यधिकरण ब० स०) । (२) कुशों का आसन स्वीकार करने वाली (विप्रसभा) । कुशनिर्मितानि आसनानि (मध्य० स०), कुशासनानां परिग्रहः यस्याः सा । (३) **समेखला**—(१) सज्जन के प्रति दुष्टता से युक्त (दुर्जनसभा) । समे खला (व्यस्त पद) अथवा अलुक् समास । (२) मेखला (मूँज की बनी करधनी) से युक्त (विप्रसभा) । मेखलया सहिता समेखला (तेन सहेति ब० स० 'वोपसर्जनस्य' इति सहस्य सादेशः) । (४) **दौर्जनी**—दुर्जनों की । दुर्जनस्य इयं दौर्जनी । दुर्जन+अण्+

ङीप् । (५) संसद्—सभा । संसीदन्ति अस्याम् इति संसद् सम्√सद्+क्विप् । (६) ब्राह्मी--ब्राह्मणों की (सभा) । ब्रह्मण: इयं ब्राह्मी ब्रह्मन्+अण्+ङीप् ।

इस श्लोक में भी श्लिष्टोपमा अलंकार है और अनुष्टुप् छन्द है ।।७।।

विद्वानों की वन्दना—

रोहणं सूक्तरत्नानां वृन्दं वन्दे विपश्चिताम् ।
यन्मध्यपतितो नीचः काचोऽप्युच्चैर्मणीयते ।।८।।

अन्वय--सूक्तरत्नानां रोहणं विपश्चितां वृन्दम् (अहं) वन्दे, यन्मध्यपतितः नीचः अपि काचः उच्चैः मणीयते ।।८।।

संस्कृत-व्याख्या--सूक्तरत्नानां--सूक्तानि सुभाषितानि एव रत्नानि मणयः तेषां, रोहणम्--उत्पत्तिस्थानं, विपश्चितां—विदुषां, वृन्दं--समूहम् (अहं) वन्दे--प्रणमामि, यन्मध्यपतितः—येषां विपश्चितां मध्यम् अन्तरालं पतितः, नीचः--क्षुद्रः, अपि काचः--प्रबन्धः काव्यमित्यर्थः, उच्चैः—उत्कृष्टः, मणीयते --मणिवदाचरति (अर्थाद्विदुषां समालोचनया उत्कर्षं प्राप्नोति) पक्षान्तरे सूक्तरत्नानां—सुप्रशस्तमणीनां, रोहणं रोहणाद्रिं, वन्दे—प्रशंसामि, यन्मध्यगतः --यदभ्यन्तरगतः नीचः--क्षुद्रः, काचः--क्षारमृद्विकारः, उच्चैर्मणीयते-- उत्कृष्टमणितां प्राप्नोति ।।८।।

हिन्दी अनुवाद--सुभाषित रूपी रत्नों के उत्पत्तिस्थान उन विद्वानों के समूह को मैं नमस्कार करता हूँ, जिनके मध्य में गया हुआ क्षुद्र प्रबन्ध (काव्य) भी उच्च कोटि के मणि की तरह प्रतीत होता है । पक्षान्तर में अच्छे रत्नों को उत्पन्न करने वाले रोहण पर्वत की प्रशंसा करता हूँ जिसके मध्य में पड़ा हुआ तुच्छ काँच भी उत्कृष्ट मणि के समान प्रतीत होता है ।।८।।

टिप्पणी--(१) **सूक्तरत्नानाम्**--(१) सुभाषित रूपी रत्न, (२) उत्तम रत्न । (२) **रोहणम्**—(१) जन्मस्थान, (२) विदूरपर्वत । रोहति अस्मिन् इति रोहणम्√रुह्+ल्युट्—अन अधिकरणे । (३) **विपश्चितां वृन्दम्**--विद्वानों के समूह को । 'विद्वान् विपश्चिद्दोषज्ञः सन् सुधीः कोविदो बुधः' इत्यमरः । (४) **काच**--(१) प्रबन्धकाव्य, (२) काँच, शीशा । कच्यन्ते अर्थाः अनेन अस्मिन् वा इति काचः √कच् (बन्धने)+घञ् । (५) **मणीयते**—मणि के

समान प्रतीत होता है या निखर उठता है। अर्थात् विद्वानों की आलोचनाप्रवण प्रतिभा के योग से सुन्दर व्याख्या से सम्पन्न होकर उल्लसित हो उठता है। मणिरिवाचरति इति मणीयते मणि+क्यङ, दीर्घ+लट्—ते।

इस श्लोक में विद्वान् और रोहण पर्वत में उपमान एवं उपमेय भाव व्यञ्जित होता है ॥८॥

सज्जन और दुर्जन में बहुत अन्तर होता है—

अत्रिजातस्य या मूर्तिः शशिनः सज्जनस्य च ।
क्व सा वैरात्रिजातस्य तमसो दुर्जनस्य च ॥९॥

अन्वय—अत्रिजातस्य शशिनः सज्जनस्य च या मूर्तिः (भवति), सा वैरात्रिजातस्य तमसः दुर्जनस्य च क्व ? ॥९॥

संस्कृत व्याख्या—अत्रिजातस्य—अत्रिमुनिसमुत्पन्नस्य, (सज्जनपक्षे न त्रिभिर्जातस्य परमेकेनैव पित्रोत्पन्नस्य) शशिनः—चन्द्रस्य, सज्जनस्य—साधुपुरुषस्य, च, या, मूर्तिः —शरीरं (भवति), सा, मूर्तिः, वै—निश्चयेन, रात्रिजातस्य—निशायामुत्पन्नस्य (दुर्जनपक्षे वैरा—वैरप्रधाना, त्रिजातस्य—त्रिभिर्जातस्य अनिश्चितजनकस्येत्यर्थः) तमसः—अन्धकारस्य, दुर्जनस्य—असाधुपुरुषस्य च, क्व—कुत्र (भवति न कुत्रापीत्यर्थः) ॥९॥

हिन्दी अनुवाद—अत्रिमुनि से उत्पन्न होने वाले (सज्जन-पक्ष में—तीन से न उत्पन्न होने वाले अर्थात् एक ही पिता से उत्पन्न) चन्द्रमा एवं सत्पुरुष की जो मूर्ति (शरीर) है, वह निश्चित ही रात्रि से उत्पन्न (दुर्जन-पक्ष में—तीन से (अर्थात् जार से) उत्पन्न अंधकार एवं दुर्जन की वैरप्रधान मूर्ति कहाँ (अर्थात् सज्जन और दुर्जन में तेजस्तिमिरवत् महान् अन्तर है) ॥९॥

टिप्पणी—(१) अत्रिजातस्य—(१) अत्रि से उत्पन्न । पुराण के अनुसार चन्द्रमा की उत्पत्ति अत्रि ऋषि के नेत्र से मानी गई है। अत्रेः जातः अत्रिजातः (पं० त०) तस्य। (२) तीन से उत्पन्न नहीं अर्थात् जारज या वर्णसंकर पुत्र नहीं। क्योंकि सज्जन की उत्पत्ति वैध पिता से ही हुई रहती है। त्रिभिः जातः त्रिजातः, न त्रिजातः अत्रिजातः (न० त०), तस्य। (२) शशिनः—चन्द्रमा की। शशः (कलङ्कः) अस्ति अस्य इति शशी शश+इनि तस्य। (३)

सज्जनस्य—साधु पुरुष की । सन् जनः सज्जनः (कर्म० स०), तस्य । (४) **रात्रिजातस्य**—(१) रात में उत्पन्न । रात्रौ जातः (स० त०), तस्य । (२) दुर्जन-पक्ष में यहाँ 'वैरा' और 'त्रिजातस्य' अलग-अलग पद हैं । 'वैरा' का अर्थ है—वैर प्रधान । 'त्रिजातस्य' का अर्थ है—'तीन से उत्पन्न । त्रिभिः जातः (पं० त०), तस्य । वैरम् अस्ति अस्याः इति वैरा वैर+अच्+टाप् 'वैरा' 'मूर्तिः' का विशेषण होगा । 'सा+अवैरा=सावैरा' ऐसी विवक्षा करने पर 'अवैरा' सज्जन की मूर्ति का भी विशेषण होगा । (५) **तमसः**—अंधकार की । 'अन्धकारोऽस्त्रियां ध्वान्तं तमिस्रं तिमिरं तमः' इत्यमरः । (६) **दुर्जनस्य**—दुष्ट पुरुष की । दुष्टो जनः दुर्जनः (प्रादि समास) । 'पिशुनो दुर्जनः खलः' इत्यमरः ।

इस श्लोक में अनुष्टुप् छन्द है और सज्जन-दुर्जन में परस्पर उपमान-उपमेय-भाव व्यञ्जित होता है ॥६॥

जो सरस काव्य काव्य का अभिनन्दन नहीं करता, वह मद्यप की भाँति उपेक्षणीय है—

निश्चितं ससुरः कोऽपि न कुलीनः समेऽमतिः ।
सर्वथासुरसम्बद्धं काव्यं यो नाभिनन्दति ॥१०॥

अन्वय—यः सर्वथासुरसम्बद्धं काव्यं न अभिनन्दति (सः) निश्चितमेव कोऽपि ससुरः, न कुलीनः समे अमतिः (अस्ति) ॥१०॥

संस्कृत-व्याख्या—यः—जनः, सर्वथा—सर्वप्रकारेण, सुरसं—शोभना रसाः शृङ्गारादयः यत्र तादृशं, बद्धं—रचितं, काव्यं—कविवाक्यं, न अभिनन्दति—न प्रशंसति, (सः) निश्चितमेव—नियतमेव, कोऽपि—कश्चन, ससुरः—सुरया मद्येन सहितः मद्यप इत्यर्थः, न कुलीनः—न सत्कुलोत्पन्नः, समे—साधौ, अमतिः—बुद्धिशून्यः विरुद्धमतिरिति यावत् (अस्ति) । पक्षान्तरे—यः, सर्वथा—सर्वप्रकारेण, असुरसम्बद्धम्—असुरैः दैत्यैः सम्बद्धं मिलितं, काव्यं—कविपुत्रं शुक्राचार्यमिति यावत्, न अभिनन्दति—न प्रशंसति, सः, निश्चितमेव, कोऽपि, सुरः—देवः, न—नहि, कुलीनः—कौ पृथिव्यां लीनः कृतनिवासः, समेमतिः—मा लक्ष्मीः इः कामः ताभ्यां सहितः समः=विष्णुः तस्मिन् नमतिः बुद्धिः यस्य तादृशः (अस्ति) ॥१०॥

हिन्दी अनुवाद—जो सर्वथा सुन्दर (शृंगार आदि) रसों से युक्त काव्य-बन्ध (काव्य-रचना) का अभिनन्दन नहीं करता है, वह निश्चित ही कोई मद्यप (शराबी), अकुलीन तथा साधुपुरुष के प्रति विरुद्ध विचार रखने वाला है। (पक्षान्तर में—जो सर्वथा दैत्यों से सम्बन्धित शुक्राचार्य का अभिनन्दन नहीं करता है, वह निश्चित ही कोई देवता, पृथ्वी में लीन रहने वाला नहीं अर्थात् स्वर्गस्थ तथा लक्ष्मी और प्रद्युम्न सहित विष्णु में बुद्धि लगाने वाला है)॥१०॥

टिप्पणी—(१) **सर्वथासुरसम्बद्धम्**—(काव्य-पक्ष में) सर्वथा+सुरसम् +बद्धम्=सब प्रकार से सुन्दर रसों वाले काव्यबन्ध (कवि-रचना) का। सुष्ठु शोभनाः रसाः यस्मिन् तत् (ब० स०)। (शुक्राचार्यपक्ष में) सब प्रकार से असुरों से सम्बन्ध रखने वाले। (२) **काव्यम्**—(१) कवि की रचना। कवेर्भावः कर्म वा काव्यम् कवि+ष्यञ्। (२) कवेः अपत्यं काव्यः कवि+घञ् (स्वार्थे)। 'शुक्रो दैत्यगुरुः काव्य उशना भार्गवः कविः' इत्यमरः। (३) **न अभिनन्दति**—अभिनन्दन या प्रशंसा नहीं करता है। (४) **ससुरः**—(१) मद्य (पीने) वाला। सुरया सहितः ससुरः ('तेन सहेति'—ब० स०), सहस्य सादेशः। (२) स+सुरः=देवः। (५) **न कुलीनः**—(१) अच्छे कुल का नहीं। कुलस्यापत्यं वा कुले भवः कुलीनः कुल+ख—ईन। (२) पृथ्वी के आश्रित नहीं अर्थात् स्वर्गनिवासी। कौ लीनः कुलीनः (सुप्सुपास०) (५) **समेऽमतिः**—(१) सज्जनों के प्रति अनुकूल मति न रखने वाला। न मतिर्यस्य स अमतिः (न० ब० स०)। (२) लक्ष्मी तथा काम सहित विष्णु में मति (ध्यान) लगाने वाला। मासहितः इः इति समेः (मध्य० स०) अथवा मा च इश्च इति मयौ (द्व० स०), ताभ्यां सहितः समेः ('तेन सहेति'—ब० स०), तस्मिन् मतिः यस्य स समेमतिः (ब० स०)।

इस श्लोक में भी अनुष्टुप् छन्द है ॥१०॥

आद्य कवि वाल्मीकि की स्तुति—

सदूषणापि निर्दोषा सखरापि सुकोमला।
नमस्तस्मै कृता येन रम्या रामायणी कथा ॥११॥

अन्वय:—येन सदूषणापि निर्दोषा, सखरा अपि सुकोमला, रम्या रामायणी कथा कृता तस्मै नमः ।।११।।

संस्कृत-व्याख्या—येन—आदिकविना, सदूषणापि—दोषसहितापि, निर्दोषा—दोषरहिता (इति विरोधः सदूषणापि—दूषणेन रावणभ्रात्रा राक्षसेन सहिता अपि इति तत्परिहारः), सखरा अपि—खरेण कठोरतागुणेन सहिता अपि, सुकोमला—सुमृद्वी (इति विरोधः सखरा अपि—खरेण खरनामकराक्षसेन सहिता अपि इति तत्प रिहारः), रम्या—रमणीया, रामायणी कथा—रामचरितसम्बन्धिनी प्रबन्धरचना, कृता—विरचिता, तस्मै नमः—तं नमस्करोमि ।।११।।

हिन्दी अनुवाद—जिसने दूषणयुक्त होने पर भी निर्दोष तथा खरयुक्त होने पर भी अत्यन्त कोमल रमणीय रामायण-कथा विरचित की, उस (आदि-कवि) को नमस्कार है ।।११।।

टिप्पणी—(१) सदूषणापि—(२) दोषसहित, दूषण नामक राक्षस सहित। प्रथम अर्थ में यहाँ विरोध उपस्थित होता है, क्योंकि जो दोषसहित है वह निर्दोष कैसे हो सकता है, इसका परिहार दूसरे अर्थ से हो जाता है। दूषण रावण का भाई और सेनापति था। (२) सखरा—कठोरता (कठिन अर्थ) से युक्त, (२) खर नामक राक्षस सहित। यहाँ भी प्रथम अर्थ में विरोध उपस्थित होता है और दूसरे अर्थ से उसका परिहार हो जाता है। खर राक्षस जन-स्थान का रक्षक सेनापति था।

इस श्लोक में विरोधाभास अलंकार है और अनुष्टुप् छन्द है ।।११।।

भगवान् वेदव्यास की स्तुति—

व्यासः क्षमाभृतां श्रेष्ठो वन्द्यः स हिमवानिव ।
सृष्टा गौरीदृशी येन भवे विस्तारिभारता ।।१२।।

अन्वय—हिमवान् इव क्षमाभृतां श्रेष्ठः स व्यासः वन्द्यः, येन भवे ईदृशी विस्तारिभारता गौः सृष्टा ।।१२।।

संस्कृत-व्याख्या—हिमवान् इव—हिमालय इव, क्षमाभृतां—क्षमाशालिनां (हिमालयपक्षे पर्वतानां), श्रेष्ठः—उत्तमः, सः—प्रसिद्धः, व्यासः—सत्यवती-

सुतः, वन्द्यः—वन्दनीयः, येन—व्यासेन हिमवता च, भवे—संसारे शंकरे च, ईदृशी—लोकोत्तरा विलक्षणा च, विस्तारिभारता (गौरीपक्षे) विस्तारिणी विस्तरणशीला भा कान्तिः यस्याः तादृशी, रता शिवेऽनुरक्ता च, (वाणीपक्षे) विस्तारि प्रसरणशीलं भारतं महाभारतनामकग्रन्थः यस्याः तादृशी, गौः—वाणी गौरी पार्वती च, सृष्टा—रचिता उत्पादिता च ॥१२॥

हिन्दी-अनुवाद—हिमालय के समान क्षमाशील व्यक्तियों में (हिमालय-पक्ष में पर्वतों मे) श्रेष्ठ वे व्यास जी वन्दनीय हैं, जिन्होंने संसार में (गौरी-पक्ष में—शंकार में) ऐसी विशाल महाभारत रूपी वाणी (गौरी-पक्ष में विस्तृत कान्ति वाली एवं (शिव में) अनुरक्त गौरी=पार्वती) की सृष्टि की ॥१२॥

टिप्पणी—(१) हिमवान्—हिमालय। हिमम् अस्यास्तीति हिमवान् हिम+मतुप्, वत्व। (२) क्षमाभृताम्—क्षमाशीलों, (२) पर्वतों, में। क्षमणं क्षमा√क्षम्+अङ+टाप्। अथवा क्षमते इति क्षमा√क्षम्+अच्+टाप्। क्षमां बिभ्रति ये ते क्षमाभृतः क्षमा√भृ+ क्विप्, तुक् (त्) आगम=क्षमाभृतः, तेषाम्। 'सहनं क्षमा' इति कोषः। (३) व्यासः—अष्टादशपुराणप्रणेता व्यास। 'व्यासः सत्यवतीसुतः' इति कोषः। (४) भवे—संसार में, (२) शिव में। 'भवः क्षेमेश-संसारे सत्तायां प्राप्तिजन्मनोः' इति कोषः। (५) विस्तारिभारता—(१) विसरणशील या विशाल महाभारत की रचना वाली, (२) विसरणशील कान्ति वाली तथा (शिव में) अनुरक्त। वि√स्तृ+णिनि=विस्तारि। विस्तारि भारतं यस्याः सा (ब० स०)। 'गौः' (वाणी) का विशेषण। विस्तारिणो भा यस्याः सा 'विस्तारिभा' (ब० स०) तथा 'रता' ये दोनों व्यस्त पद हैं तथा 'गौः' (गौरी) के विशेषण हैं। (६) गौः—(१) वाणी, (२) गौरी=पार्वती। (७) सृष्टा—रचना की, (२) उत्पन्न की अर्थात् व्यासने महाभारतकथा लिखी और हिमालय ने पार्वती को उत्पन्न किया।

इस श्लोक में श्लिष्टोपमा अलंकार और अनुष्टुप् छन्द है ॥१२॥

महाभारत की कथा सबको आनन्द देती है—

कर्णान्तविभ्रमभ्रान्तकृष्णार्जुनविलोचना।
करोति कस्य नाह्लादं कथा कान्तेव भारती ॥१३॥

अन्वय--कर्णान्तविभ्रमभ्रान्तकृष्णार्जुनविलोचना कान्ता इव भारती कथा कस्य आह्लादं न करोति ॥१३॥

संस्कृत-व्याख्या--कर्णान्तविभ्रम०--(कान्तापक्षे) कर्णान्तयोः श्रोत्रप्रान्तयोः विभ्रमेण विलासेन भ्रान्ते चञ्चले कृष्णार्जुने नीलधवले विलोचने नयने यस्याः तथाभूता (भारती-कथापक्षे) कर्णस्य राधेयस्य अन्ते विनाशे (सति) विभ्रमेण विस्मयेन वेः गरुडस्य भ्रमेण वेगेन वा भ्रान्ताः कृष्णार्जुनविलोचनाः कृष्णः वासुदेवः अर्जुनः पार्थः विलोचनः धृतराष्ट्रः यस्यां तथाभूता, कान्ता इव --सुन्दरीव, भारती कथा--महाभारतकथा, कस्य--जनस्य, आह्लादं--हर्षातिरेकं, न करोति--न विदधाति ? अपितु सर्वस्य आह्लादं करोतीत्यर्थः ॥१३॥

हिन्दी-अनुवाद--कानों के अन्त तक विलासपूर्वक घुमाये गये नीले और श्वेत नेत्रों वाली (अर्थात् विलासपूर्वक तिरछी चितवन डालने वाली) ललना के समान कर्ण का विनाश हो जाने पर आश्चर्य से चंचल कृष्ण, अर्जुन तथा धृतराष्ट्र वाली महाभारत की कथा किसको आनन्दित नहीं करती ? ॥१३॥

टिप्पणी--(१) कर्णान्तविभ्रम०--(ललना-पक्ष में) कर्णप्रान्तपर्यन्त विलासपूर्वक अपनी नीली एवं उजली आँखों को घुमाने वाली। (महाभारतीय-कथा पक्ष में) कर्ण के मारे जाने पर आश्चर्य से या गरुड के वेग से घूम जाने वाले कृष्ण, अर्जुन तथा धृतराष्ट्र के वर्णन से युक्त। (२) भारती—महाभारतसम्बन्धी। भारतस्य इयं भारती भारत+अण्+ङीप्। (३) आह्लादम्--आनन्द। आ√ह्लाद्+घञ्।

इस श्लोक में श्लिष्ट उपमा अलंकार है और अनुष्टुप् छन्द है ॥१३॥

बाणभट्ट तथा गुणाढ्य कवि की प्रशंसा--

शश्वद्बाणद्वितीयेन नमदाकारधारिणा।
धनुषेव गुणाढ्येन निःशेषो रञ्जितो जनः ॥१४॥

अन्वय—धनुषा इव शश्वत् बाणद्वितीयेन नमदाकारधारिणा गुणाढ्येन निःशेषः जनः रञ्जितः ॥१४॥

संस्कृत-व्याख्या--धनुषा--चापेन, इव--यथा, शश्वत्--निरन्तरं सर्वदा इत्यर्थः, बाणद्वितीयेन—महाकविबाणभट्टसहितेन, नमदाकारधारिणा—न

मदाकारं गर्विताकृतिं धरतीत्येवंशीलेन, गुणाढ्येन--बृहत्कथाकारेण गुणाढ्यनामककविना, निःशेषः जनः--समस्तो लोकः, रञ्जितः--प्रमोदं प्रापितः। (धनुः पक्षे--बाणद्वितीयेन--बाणः शरः द्वितीयः सहायकः यस्य तादृशेन, नमदाकारधारिणा--नमत् वक्रम् आकारम् आकृतिं धरतीत्येवंशीलेन, गुणाढ्येन--गुणेन मौर्व्या आढ्येन सम्पन्नेन, निःशेषः--अखिलः, जनः--लोकः शत्रुवर्ग इत्यर्थः, अरम्--अत्यर्थं, जितः--पराभूतः) ॥१४॥

हिन्दी-अनुवाद--धनुष के समान निरन्तर बाणकविसहित (धनुष पक्ष में तीर सहित), विनम्र या गर्वशून्य आकृति वाले (धनुष-पक्ष में झुके हुए आकार वाले) गुणाढ्य (नामक कवि) ने (धनुष पक्ष में प्रत्यञ्चा से युक्त) सभी लोगों का अनुरंजन किया (धनुष-पक्ष में--सब लोगों को पूर्णरूप से जीत लिया) ॥१४॥

टिप्पणी--(१) शश्वत्--निरन्तर। 'शश्वदभीक्ष्णमसकृत्समाः' इत्यमरः। (२) बाणद्वितीयेन--(१) बाणभट्ट सहित अथवा जिसके सम्मुख बाणभट्ट जैसा यशस्वी कवि भी द्वितीय स्थान प्राप्त करता है। (२) तीर सहित अथवा जिसका सहायक बाण है। (३) नमदाकारधारिणा--(१) गर्वित आकार न धारण करने वाले अर्थात् विनम्र। (२) झुकी हुई या टेढ़ी आकृति धारण करने वाले। मदयुक्तः आकारः (मध्य० स०), मदाकारं धरति इति मदाकार √धृ+णिनि। न मदाकारधारिणा। नमन् आकारः (कर्म० स०), नमदाकार√धृ+णिनि=नमदाकारधारि (धनुः), तेन। (४) गुणाढ्येन--(१) गुणाढ्य नामक कवि ने। (२) गुण (प्रत्यंचा) से युक्त। गुणेन आढ्यम् (धनुः), तेन। (५) जनः रञ्जितः--(१) लोगों का अनुरंजन किया। (२) लोगों को अत्यन्त जीत लिया। जनः+अरम्+जितः=जनोऽरञ्जितः।

इस श्लोक में भी श्लिष्टोपमा अलंकार है और अनुष्टुप् छन्द है ॥१४॥

इत्थं काव्यकथाकथानकरसैरेषां कवीनाममी
विद्वांसः परिपूर्णकर्णहृदयाः कुम्भाः पयोभिर्यथा।
वाचो वाच्यविवेकविक्लवधियामीदृग्विधा मादृशां
लप्स्यन्ते क्व किलावकाशमथवा सर्वंसहाः सूरयः ॥१५॥

अन्वय--इत्थम् अमी विद्वांसः पयोभिः कुम्भा यथा एषां कवीनां काव्यकथाकथानकरसैः परिपूर्णकर्णहृदयाः (सन्ति), (अतः) मादृशां वाच्यविवेकविक्लवधियाम् ईदृग्विधाः वाचः क्व किल अवकाशं लप्स्यन्ते, अथवा सूरयः सर्वंसहाः (भवन्ति) ।।१५।।

संस्कृत-व्याख्या--इत्थम्--अमुना प्रकारेण, अमी—एते आधुनिकाः, विद्वांसः--सुधयः, पयोभिः--दुग्धैः, कुम्भाः--कलशाः, यथा—इव, एषां—पूर्वोक्तानां, कवीनां--काव्यकर्तॄणां, काव्यकथाकथानकरसैः—काव्यानि नाटकादीनि कथाः कादम्बर्यादयः कथानकानि आख्यानकानि तेषां रसैः, परिपूर्णकर्णहृदयाः--परिपूर्णानि आपूरितानि कर्णौ श्रोत्रे हृदयं चित्तं च येषां तादृशाः (सन्ति) (कुम्भपक्षे--परिपूर्णे आपूरिते कर्णं ऊर्ध्वभागो हृदयं मध्यभागश्च येषां तादृशाः) (अतः) मादृशां--मद्विधानां, वाच्यविवेकविक्लवधियां--वाच्यस्य अभिधेयस्य विवेके अवधारणे विक्लवा अकुशला धीः बुद्धिर्येषां तेषाम् ईदृग्विधाः--एवम्प्रकाराः, वाचः--गिरः, क्व--कुत्र, किल—खलु, अवकाशं—स्थानं, लप्स्यन्ते--प्राप्स्यन्ति, अथवा—आहोस्वित्, सूरयः--विद्वांसः, सर्वंसहाः--सर्वं शिवमशिवं वा सहन्ते--मर्षयन्तीति तादृशाः (भवन्ति) ।।१५।।

हिन्दी-अनुवाद--इस प्रकार ये (आधुनिक) विद्वान् दूध से (भरे) घड़े के समान इन कवियों (वाल्मीकि आदि) के काव्य, कथा तथा आख्यानकों के रसों से भरे कान तथा हृदय वाले हैं। (इसलिए) वाच्यार्थ के विवेक में कुण्ठित बुद्धि वाले मुझ जैसों की इस प्रकार की वाणियाँ भला कहाँ स्थान पायेंगी? अथवा विद्वान् लोग सब सहन करने वाले होते हैं ।।१५।।

टिप्पणी--(१) पयोभिः—दूध से। 'पयः क्षीरे च नीरे च' इति हैमः। (२) कुम्भाः—कलश। कुम् भुवम् उम्भतीति कु√उम्भ्+अच्, शकन्ध्वादित्वात् पररूप। (३) काव्यकथाकथानकरसैः--काव्यों, कथाओं और आख्यानकों के रसों से। काव्यानि च कथाश्च आख्यानकानि च (द्व० स०), तेषां रसाः (ष० त०), तैः। (४) परिपूर्णकर्णहृदयाः--जिनके कान और हृदय भर गये हैं। कर्णाश्च हृदयानि च (द्व० स०), परिपूर्णानि कर्णहृदयानि येषां ते (ब० स०)। (५) वाच्यविवेकविक्लवधियाम्--अभिधेयार्थ का निश्चय करने में कुंठित बुद्धि वाले। वाच्यस्य विवेकः (ष० त०), तस्मिन् विक्लवा

धीः येषां ते (ब० स०), तेषाम् । (६) ईदृग्विधाः—इस प्रकार की । ईदृशी विधा यासां ताः (ब० स०) । (७) सर्वंसहाः—सब कुछ सहने वाले अर्थात् सबका आदर करने वाले । इसलिए मेरे काव्य को भी वे पढ़ेंगे तथा सुनेंगे । सर्वं सहन्ते इति सर्वंसहाः सर्व√सह्+खच्, मुमागम ।

इस श्लोक में उपमा अलंकार है तथा शार्दूलविक्रीडित छन्द है, जिसका लक्षण है—'सूर्याश्वैर्यदि मः सजो सततगाः शार्दूलविक्रीडितम्' ॥१५॥

समंगश्लेष की विशेषता—

वाचः काठिन्यमायान्ति भङ्गश्लेषविशेषतः ।
नोद्वेगस्तत्र कर्तव्यो यस्मान्नैको रसः कवेः ॥१६॥

अन्वय—वाचः भङ्गश्लेषविशेषतः काठिन्यम् आयान्ति तत्र उद्वेगः न कर्तव्यः, यस्मात् कवेः एकः रसः न (भवति) ॥१६॥

संस्कृत-व्याख्या—वाचः—काव्य-वाण्यः, भङ्गश्लेषविशेषतः—भङ्गश्लेषस्य सभङ्गश्लेषालङ्कारस्य विशेषतः वैशिष्ट्यात्, काठिन्यं—दुर्बोधत्वम्, आयान्ति—प्राप्नुवन्ति, तत्र—तस्मिन्, उद्वेगः—चित्तवैक्लव्यं, न कर्तव्यः—न विधेयः, यस्मात्—यतः, कवेः—काव्यकर्तुः, एकः—एकप्रकारः, रसः—रुचिः न—नहि (भवति) ॥१६॥

हिन्दी अनुवाद—(काव्य की) वाणियाँ सभंगश्लेष की विशेषता से कठिन हो जाती हैं। पर उससे घबराना नहीं चाहिए। क्योंकि कवि के लिए एक ही रस नहीं है ।।१६।।

टिप्पणी—(१) **भङ्गश्लेषविशेषतः**—सभंगश्लेष की विशेषता से अर्थात् श्लेषालंकार की छटा से । भज्यन्ते शब्दाः अस्मिन् इति भङ्गः√भञ्ज्+घञ् । भङ्गश्चासौ श्लेषः भङ्गश्लेषः (कर्म० स०), भङ्गश्लेषस्य विशेषः (ष० त०), तस्मात् इति भङ्गश्लेषविशेषतः भङ्गश्लेषविशेष+तस् । (२) **काठिन्यम्**—कठिनता। कठिनस्य भावः काठिन्यम् कठिन+ष्यञ् । (३) **उद्वेगः**—घबराहट। उद्√विज्+घञ्। (४) **नैको रसः**—एक ही रस नहीं अर्थात् एक ही प्रकार की रुचि नहीं होती है; क्योंकि कवि अपने काव्य में कहीं कठिनता और कहीं मृदुता सृष्ट करता है, जिससे रसास्वाद दुष्कर नहीं होता है।

इस श्लोक में अनुष्टुप् छन्द है ॥१६॥

काव्य की आम्रफल से उपमा दी जा रही है--

काव्यस्याम्रफलस्येव कोमलस्येतरस्य च ।
बन्धच्छायाविशेषेण रसोऽप्यन्यादृशो भवेत् ॥१७॥

अन्वय--आम्रफलस्य इव कोमलस्य इतरस्य च काव्यस्य बन्धच्छाया-विशेषेण रसः अपि अन्यादृशः भवेत् ॥१७॥

संस्कृत-व्याख्या--आम्रफलस्य इव--रसालफलस्य इव, कोमलस्य--सुकुमारस्य प्रसादगुणयुक्तस्येत्यर्थः (आम्रपक्षे परिपक्वस्य) इतरस्य च--तद्भिन्नस्य कठिनस्य श्लिष्टस्येत्यर्थः (आम्रपक्षे अपक्वस्य), काव्यस्य--काव्य-ग्रन्थस्य, बन्धच्छायाविशेषेण--बन्धस्य पदरचनानैपुण्यस्य छायायाः व्यंग्यार्थस्य च विशषः वैशिष्ट्यं तेन (आम्रफलपक्षे--बन्धः अवयवसंघटनं छाया रक्तपीता-दिकान्तिश्च तयोः विशेषेण भेदेन) रसोऽपि--शृङ्गारादिरसोऽपि (आम्रपक्षे रसपदार्थोऽपि), अन्यादृशः--भिन्नरूपः (आम्रपक्षे मधुराम्लतिक्तादिरूपः), भवेत् ॥१७॥

हिन्दी अनुवाद--आम के फल की तरह कोमल (आम्र-पक्ष में परिपक्व तथा काव्य-पक्ष में प्रसादगुणसम्पन्न) और कठोर (आम्र-पक्ष में अपरिपक्व तथा तथा काव्य-पक्ष में श्लिष्ट) काव्य का भी पद-रचना एवं व्यंग्यार्थ की विशेषता से (आम्रफल-पक्ष में अवयव-संघटन तथा रक्त-पीतादि छाया) से रसास्वाद भिन्न-भिन्न प्रकार का हो जाता है ॥१७॥

टिप्पणी--(१) बन्धच्छायाविशेषेण--बन्ध (आम्र-पक्ष में अवयव-सघटन (काव्य-पक्ष में) पद-संघटन या पद-रचनानैपुण्य) और छाया (आम्रपक्ष में हरी-पीली-लाल आदि । (काव्य-पक्ष में व्यंग्यार्थ) की विशेषता के कारण । (२) रसः--(१) शृंगार आदि, (२) फल-रस । रस्यते इति रसः√रस्+अच् वा घ । (३) अन्यादृशः--भिन्न-भिन्न प्रकार का । अर्थात् काव्य-पक्ष में शृंगार-वीर आदि प्रकार का और आम्र-पक्ष में मधुर-अम्ल आदि प्रकार का ।

इस श्लोक में श्लिष्ट उपमा अलंकार है और अनुष्टुप् छन्द है ॥१७॥

कविवंशादिवर्णनम्

अस्ति समस्तमुनिमनुजवृन्दवृन्दारकवन्दनीयपादारविन्दस्य भगवतः विधेर्विश्वव्यापिव्यापारपारवश्यादवतीर्णस्य संसारचक्रे क्रतुक्रियाकाण्डशौण्डस्य शाण्डिल्यनाम्नो महर्षेर्वंशः ।

संस्कृत-व्याख्या—समस्तमुनिमनुज०—समस्ताः सकलाः मुनयः ऋषयः मनुजवृन्दं मानवसमूहः वृन्दारकाः देवाः तैः वन्दनीये पूज्ये पादारविन्दे चरणकमले यस्य तादृशस्य, भगवतः—ऐश्वर्यसम्पन्नस्य, विधेः—ब्रह्मणः, विश्वव्यापिव्यापारपारवश्यात्—विश्वव्यापी सम्पूर्णलोकव्यापी यो व्यापारः क्रिया तस्य पारवश्यात् पारतन्त्र्यात्, संसारचक्रे—भुवनमण्डले, अवतीर्णस्य—गृहीतजन्मनः, क्रतुक्रियाकाण्डशौण्डस्य—क्रतोः यज्ञस्य क्रियाकाण्डे कर्मपद्धतौ शौण्डस्य प्रवीणस्य, शाण्डिल्यनाम्नः—शाण्डिल्याख्यस्य, महर्षेः—महामुनेः, वंशः—कुलम्, अस्ति—विद्यते ।

हिन्दी अनुवाद—समस्त मुनियों, मानव-समूह एवं देवताओं से वन्दना के योग्य चरण-कमल वाले भगवान् ब्रह्मा के विश्वव्यापी व्यापार (सृष्टि-रचना) की परतंत्रता के कारण संसार-चक्र में जन्म ग्रहण किये हुए और यज्ञीय कर्मकाण्ड में दक्ष शाण्डिल्य नामक महर्षि का वंश है ।

टिप्पणी—वृन्दारक—देवता । 'वृन्दारका दैवतानि पुंसि वा देवता स्त्रियाम्' इत्यमरः । भगवतः—ऐश्वर्यशाली । 'भगं श्रीकाममाहात्म्यवीर्ययत्नार्ककीर्तिषु' इत्यमरः । विश्वव्यापी—संसार भर में फैला हुआ । विश्वं व्याप्नोति तच्छीलः इति विश्व—वि√आप्+णिनि कर्तरि ताच्छील्ये । संसारचक्रे—भवचक्र या भुवनमण्डल में । संसरतीति संसारः सम्√सृ+घञ् । संसारः चक्रमिव इति संसारचक्रम् (उपमितस०), तस्मिन् ।

श्रूयन्ते च यत्र श्रवणोचिताश्चन्दनपल्लवा इव केचिदनूचानाः शुचयः सत्यवाचो विरञ्चिवर्चसोऽर्चनीयाचारा ब्रह्मविदो ब्राह्मणाः । पुण्यजनाश्च न च ये लङ्कापुरुषाः, ससूत्राश्च न च ये लम्पटाः, प्रसिद्धाश्च न च ये लम्पाकाः, कामवर्षाश्च न च ये लङ्घनाः सन्मार्गस्य, नव-

वयसोऽपि न च ये लम्बालकाः, महाभारतिकाश्च न च ये रङ्गोपजीविनः, सेविताप्सरसोऽपि न च ये रम्भयान्विताः ।

संस्कृत-व्याख्या—यत्र—यस्मिन् शाण्डिल्यवंशे, श्रवणोचिताः—आकर्णनयोग्याः, चन्दनपल्लवा इव—मलयजकिशलया इव, केचित्—केचन, अनूचानाः—साङ्गवेदपाठिनः, शुचयः—पवित्राः, सत्यवाचः—सत्या वाक् वचनं येषां तादृशाः, विरञ्चिवर्चसः—विरञ्चेः ब्रह्मणः वर्च तेजः इव वर्चः येषां तादृशाः, अर्चनीयाचाराः—अर्चनीयः पूजनीयः आचारः आचरणं येषां ते तथाभूताः, ब्रह्मविदः—ब्रह्म वेदम् आत्मानं च विदन्ति जानन्ति इति ब्रह्मविदः ब्रह्मज्ञातारः, ब्राह्मणाः—विप्राः, श्रूयन्ते—आकर्ण्यन्ते । ये—ब्राह्मणाः, पुण्यजनाः—पवित्रपुरुषाः, न च, अलम्—अत्यर्थं, कापुरुषाः कुत्सितपुरुषाः (अनेन अर्थेन अत्र पुण्यजनाः=राक्षसाः, न च, लङ्कापुरुषाः लङ्कावासिनो राक्षसाः इति प्रतीयमानस्य विरोधस्य परिहारो भवति), ये, ससूत्राः—यज्ञोपवीतधारिणः न च, लम्पटाः—धूर्ताः (अनेन अर्थेन ससूत्राः—तन्तुभिः सहिताः, न च, अलम्—अत्यर्थम् पटाः—वस्त्राणि, इति विरोधस्य परिहारः), ये, प्रसिद्धाः—विख्याताः, न च, लम्पाकाः—लम्पटाः (अनेन अर्थेन प्रसिद्धाः—प्रकर्षेण सिद्धाः अग्निना संस्कृताः, न च, अलम्—अत्यर्थं, पाकाः—पक्वाः इति विरोधस्य परिहारः), ये, कामवर्षाः—कामं यथेष्टं वर्षन्तीति कामवर्षाः अभिलषितप्रदातारः, न च, लङ्घनाः—अतिक्रमणशीलाः सन्मार्गस्यसत्यपथस्य, (अनेन अर्थेन कामवर्षाः—यथेष्टं वर्षणशीलाः न च, अलम् —अत्यर्थं, घनाः मेघाः इति विरोधस्य परिहारः), ये, नववयसोऽपि—नवं नूतनं वयः अवस्था येषां तादृशाः अपि, न च, लम्बालकाःलम्बाः—दीर्घाः अलकाः केशाः येषां तादृशाः अग्निहोत्रित्वात् (अनेन नववयसोऽपि, न च, अलम् बालकाः—शिशवः इति विरोधस्य परिहारः), ये, महाभारतिकाश्च—महाभारतेन जीवन्ति इति महाभारतिकाः महाभारतकथावाचका इत्यर्थः न च, रङ्गोपजीविनः—अरम्—अत्यर्थम्, गां पृथिवीं पातीति गोपः तस्मात् गोपात् भूमिपालात् जीवन्ति इति गोपजीविनः राजप्रदत्तान्नादिकं न गृह्णन्ति इति यावत् (अनेन महाभारतिकाः—महान्तो नटाः, न च, रङ्गोपजीविनः—अभिनयवृत्तयः इति विरोधपरिहारः), ये, सेविताप्सरसः अपि—सेवितानि अपां जलानां सरांसि तड़ागाः यैः तादृशाः अपि, न च, अरम्—अत्यर्थम्, भयान्विताः—त्रास-

युक्ताः (अनेन सेविताप्सरसोऽपि—सेविताः उपभुक्ताः अप्सरसः देवांगनाः यैः तादृशाः अपि, न च, रम्भया एतदाख्याप्सरोभिः अन्विता युवतेति विरोधपरिहारः) ।

हिन्दी अनुवाद––जहाँ (शाण्डिल्य-वंश में) चन्दन के पल्लवों के समान कानों में धारण करने योग्य (अर्थात् प्रिय लगने वाले या उपदेश श्रवण योग्य), सांग वेदों के अध्येता, पवित्र, सत्यवक्ता, ब्रह्मा के समान तेजस्वी, वन्दनीय आचरण वाले तथा ब्रह्म को जानने वाले कुछ ब्राह्मण सुने जाते हैं । [इसके आगे इस गद्यखण्ड में समङ्गश्लेष होने के कारण एक अर्थ से विरोध होता है और दूसरे अर्थ से उसका परिहार हो जाता है ।] (विरोध––) जो पुण्यजन=राक्षस हैं किन्तु लङ्कापुरुष=राक्षस नहीं हैं । (परिहार––) जो पुण्यजन=पुण्यात्मा हैं किन्तु अलम्=अत्यन्त कापुरुष=कायर पुरुष नहीं है । (विरोध––) जो सूत्र (धागे) सहित हैं किन्तु बिलकुल ही वस्त्र नहीं हैं । (परिहार––) जो सूत्र (यज्ञोपवीत तथा कटिसूत्र) सहित हैं किन्तु लम्पट (धूर्त) नहीं हैं । (विरोध––) जो पूर्ण रूप से सिद्ध (पक गये हुए) हैं किन्तु बिलकुल पके नहीं हैं । (परिहार––) जो विख्यात हैं किन्तु लम्पट (लफंगे) नहीं हैं । (विरोध––) जो यथेष्ट वर्षा करने वाले हैं किन्तु पर्याप्त बादल नहीं है । (परिहार––) जो कामनाओं के वर्षक (देने वाले) हैं किन्तु सन्मार्ग का लंघन करने वाले नहीं हैं । (विरोध––) जो नई अवस्था वाले हैं किन्तु निरा बालक नहीं हैं। (परिहार––) जो नवीन अवस्था वाले हैं किन्तु (अग्नि-होत्री होने के नाते) लंबे बाल वाले नहीं हैं। (विरोध––)जो महान् नट (अभिनयोपजीवी) हैं किन्तु रंगमंच से जीविका चलाने वाले नहीं हैं । (परिहार––) जो महाभारत की कथा बांचने वाले हैं किन्तु राजोपजीवी बिलकुल नहीं हैं । (विरोध––) जो अप्सराओं का सेवन करने वाले हैं किन्तु रम्भा से युक्त नहीं हैं । (परिहार––) जो जल के सरोवर का सेवन करते हैं किन्तु भय से युक्त बिलकुलनहीं है ।

टिप्पणी––अनूचानाः––सांगोपांग वेद पढ़े हुए विद्वान् । अनु√वच्+कान नि० । विरञ्चि––ब्रह्मा । 'विरञ्चिः कमलासनः' इत्यमरः । पुण्यजन––(१) राक्षस । 'यातुधानः पुण्यजनो नैर्ऋतो यातुरक्षसी' इत्यमरः । (२) पवित्रात्मा । लङ्कापुरुषाः––(१) लंका के पुरुष अर्थात् राक्षस । (२) अलं कापुरुषाः

=बिलकुल कायर पुरुष । लम्पटा:--(१) धूर्त । (२) अलम्पटा:=बिलकुल वस्त्र । प्रसिद्धा:--(१) विख्यात ।(२) प्रकर्षेण सिद्धा:=पर्याप्त रूप से सिद्ध (रँधे हुए) । लम्पाका:--(१) लम्पट । (२) अलम्पाका:=बिलकुल पके हुए । कामवर्षा:--यथेष्ट बरसने वाले । लङ्घना:--(१) लांघने वाले । (२) अलङ्घना:=बिलकुल मेघ । लम्बालका:--(१) लंबे बालों वाले । (२) अलम्बालका:=बिलकुल बालक । महाभारतिका:--(१) महानट । भरतस्य मुनेः गोत्रापत्यम् भारतिका: भरत+ठञ्--इक । महान्तो भारतिका: महाभारतिका: (कर्म० स०) । (२) महाभारत की कथा बाँचकर जीविका चलाने वाले भरतान् भरतवंशीयान् अधिकृत्य कृतो ग्रन्थः भारतम् अथवा भारम् चतुर्वेदादिशास्त्रेभ्योऽपि सारं तनोतीति भारतम् । भारतेन जीवन्ति इति भारतिका: भारत+ठञ्--इक । महान्तो भारतिका: (कर्म० स०) । रङ्गोपजीविनः--(१) रंगशाला से जीविका चलाने वाले । (२) अरम्+गोपजीविनः=अत्यन्त राजोपजीवी । गां पातीति गोपः,=राजा, तस्मात् जीवन्ति इति गोपजोविनः गोप√जीव्+णिनि । सेविताप्सरस:--(१) अप्सरा का सेवन करने वाले । (२) जल के सरोवर का सेवन करने वाले ।

इस गद्य में श्लेषानुप्राणित विरोधाभास अलंकार है ।

किं बहुना

> जानन्ति हि गुणान्वक्तुं तद्विधा एव तादृशाम् ।
> वेत्ति विश्वम्भरा भारं गिरीणां गरिमाश्रयम् ॥१८॥

अन्वय—तद्विधा एव तादृशां गुणान् वक्तुं जानन्ति । हि गिरीणां गरिमाश्रयं भारं विश्वम्भरा वेत्ति ॥१८॥

संस्कृत-व्याख्या--तद्विधा एव--तादृशा एव शाण्डिल्यवंशोत्पन्नविप्रतुल्या एवेति यावत्, तादृशां--तथाविधानां सकलगुणगणमण्डितानामित्यर्थः, गुणान्--दयादाक्षिण्यादीन्, वक्तुं--कथयितुं, जानन्ति--विदन्ति । हि--यतः, गिरीणां पर्वतानां, गरिमाश्रयं--गुरुताधीनं, भारं--भरं, विश्वम्भरा--पृथ्वी, एव वेत्ति--जानाति ॥१८॥

हिन्दी अनुवाद——अधिक क्या (कहें)। उस प्रकार के लोग ही वैसे (गुणशालियों) के गुणों का वर्णन करना जानते हैं; क्योंकि पहाड़ों के गुरुता-मूलक भार को पृथ्वी ही जानती है ॥१८॥

टिप्पणी——(१) तद्विधाः——उस प्रकार के अर्थात् जैसे शाण्डिल्यकुलोद्भव ब्राह्मण थे वैसे। तेषां विधा इव विधा येषां ते तद्विधाः (ब० स०)। (२) गरिमाश्रयम्——गुरुता के आश्रित अर्थात् गुरु गंभीरता का। गुरोर्भावः गरिमा गुरु+इमनिच्, गरिम्णःआश्रयः (ष० त०) तम्। (३) विश्वम्भरा——पृथ्वी। विश्वम् बिभर्ति इति विश्वम्भरा विश्व √भृ+खच्, मुमागम+टाप्।

इस श्लोक में प्रतिवस्तूपमा अलंकार है और अनुष्टुप् छन्द है।।१८।।

तेषां वंशे विशदयशसां श्रीधरस्यात्मजोऽभूद्,
देवादित्यः स्वमतिविकसद्वेदविद्याविवेकः।
उत्कल्लोलां दिशि दिशि जनाः कीर्तिपीयूषसिन्धुं,
यस्याद्यापि श्रवणपुटकैः कूणिताक्षाः पिबन्ति ॥१९॥

अन्वय—विशदयशसां तेषां वंशे श्रीधरस्य आत्मजः देवादित्यः स्वमति-विकसद्वेदविद्याविवेकः अभूत्, यस्य दिशि दिशि उत्कल्लोलां कीर्तिपीयूषसिन्धुम् अद्यापि जनाः कूणिताक्षाः श्रवणपुटकैः पिबन्ति ॥१९॥

संस्कृत-व्याख्या——विशदयशसां——निर्मलकीर्तीनां, तेषां——शाण्डिल्यगोत्रोत्पन्नानां विप्राणां, वंशे——कुले, श्रीधरस्य——श्रीधरनाम्नो विप्रस्य, आत्मजः—पुत्रः, देवादित्यः——देवादित्यनामा विद्वान्, स्वमतिविकसद्वेदविद्याविवेकः——स्वस्य निजस्य मतिः बुद्धिः तस्यां विकसन् प्रस्फुटन् वेदविद्यया——श्रुतिज्ञानेन विवेकः सदसद्वस्तुज्ञानं यस्य तादृशः, अभूत्——जातः, यस्य——देवादित्यस्य, दिशि दिशि प्रतिदिशम्, उत्कल्लोलाम्——उत्तरङ्गिताम्, कीर्तिपीयूषसिन्धुं——यशोऽमृत-नदीम्, अद्यापि——अधुनापि, जनाः——लोकाः, कूणिताक्षाः——सुखात् किञ्चिन्नि-मीलिताक्षाः, श्रवणपुटकैः——श्रोत्रपुटैः, पिबन्ति——आस्वादयन्ति ॥१९॥

हिन्दी अनुवाद——निर्मल यश वाले उन ब्राह्मणों के वंश में श्रीधर के पुत्र देवादित्य अपनी बुद्धि से प्रकाशमान वेदविद्या के विवेकी हुए, जिनकी प्रत्येक दिशा में उत्तरंगित कीर्ति रूपी सुधा की नदी को लोग आज भी आनन्द से आँखें मींचकर कर्णपुटों से पी रहे हैं ॥१९॥

टिप्पणी--(१)**विशदयशसाम्**--धवल कीर्ति वाले । विशदं यशः येषां ते (ब० स०), तेषाम् (२) **स्वमति०**--अपनी बुद्धि में प्रकाशित होती हुई वेद-विद्या जन्य विवेक से सम्पन्न अर्थात् वेदविद्या के विशेषज्ञ। (३) **उत्कल्लोलाम्**--जिसमें तरंगे उठ रही हैं ऐसी, उमड़ती हुई । उद्गताः कल्लोलाः यस्यां सा, ताम् (ब० स०) 'अथोर्मिषु । महत्सूल्लोलकल्लोलौ' ।इत्यमरः । (४) **कीर्तिपीयूषसिन्धुम्**--यश रूपी अमृत की नदी या सागर को । (५) **कूणिताक्षाः**--कुछ-कुछ मुंदी हुई आंख वाले । कूणिते अक्षिणी येषां ते (ब० स०), समासान्तषच्प्रत्ययः । (६) **श्रवणपुटकैः**--कानरूपी चषकों या प्यालों से ।

इस श्लोक में रूपक अलंकार है और मन्दाक्रान्ता छन्द है ।।१६।।

देवादित्य के पुत्र त्रिविक्रम हुए--

तैस्तैरात्मगुणैर्येन त्रिलोक्यास्तिलकायितम् ।
तस्मादस्मि सुतो जातो जाड्यपात्रं त्रिविक्रमः ।।२०।।

अन्वय--येन तैः तैः आत्मगुणैः त्रिलोक्याः तिलकायितम् । तस्मात् जाड्यपात्रम् (अहं) त्रिविक्रमः सुतः जातः अस्मि ।।२०।।

संस्कृत-व्याख्या--येन--देवादित्येन, तैः तैः--सुप्रसिद्धैः, आत्मगुणैः--स्वगुणैः वैदुष्यादिभिः, त्रिलोक्याः--त्रिभुवनस्य, तिलकायितम्--तिलकवदाचरितम्, तस्मात्--देवादित्यात्, जाड्यपात्रम्--मन्दधीः (अहं), त्रिविक्रमः--त्रिविक्रमनामा, सुतः--पुत्रः, जातः--उत्पन्नः, अस्मि--विद्ये ।।२०।।

हिन्दी-अनुवाद--जो अपने उन-उन गुणों से तीनों लोक के तिलक सदृश थे । उनसे जड़ता का पात्र (मन्दबुद्धि) मैं त्रिविक्रम नाम का पुत्रउत्पन्न हुआ हूँ ।।२०।।

टिप्पणी--(१) **त्रिलोक्याः**--तीनों लोक के । त्रयाणां लोकानां समाहारः त्रिलोकी (द्विगु स०) ङीष् (ई), तस्याः । (२) **तिलकायितम्**--तिलक के समान आचरण किया । तिलकवत् आचरितम् इति तिलक+क्यङ (नामधातु) +क्त ।

इस श्लोक में धर्मलुप्तोपमा अलंकार है और अनुष्टुप् छन्द है ।।२०।।

कवि अपने अहंकार का निराकरण करता है--

सोऽहं हंसायितुं मोहाद् बकः पङ्गुर्यथेच्छति ।
मन्दधीस्तद्वदिच्छामि कविवृन्दारकायितुम् ॥२१॥

अन्वय--सः अहम् मन्दधीः यथा पङ्गुः बकः हंसायितुम् इच्छति, तद्वत् कविवृन्दारकायितुम् इच्छामि ॥२१॥

संस्कृत-व्याख्या--सः--जाड्यत्वेन प्रसिद्धः, अहं, मन्दधीः--मन्दबुद्धिः, यथा--यद्वत्, पङ्गुः--गमनासमर्थः, बकः--कह्वःबकपक्षीति यावत्, हंसायितुं--हंस इवाचरितुम्, इच्छति, तद्वत्--तथैव, कविवृन्दारकायितुं--कविवृन्दारक इव कविश्रेष्ठ इव आचरितुम्, इच्छामि--वाञ्छामि ॥२१॥

हिन्दी अनुवाद--सो मन्दबुद्धि मैं जैसे लंगड़ा बगुला हंस के समान आचरण करना चाहता है, उसी प्रकार कविवरों के समान आचरण करना चाहता हूँ ॥२१॥

टिप्पणी--(१) मन्दधीः--जड बुद्धि वाला। मन्दा धीः यस्य सः (ब० स०)। (२) कविवृन्दारकायितुम्--श्रेष्ठ कवि के समान आचरण करने के लिए। कविषु वृन्दारकः (स० त०), कविवृन्दारक इव आचरितुम् इति कविवृन्दारक+क्यङ दीर्घ (नामधातु) +तुमुन्।

इस श्लोक में उपमा अलंकार है और अनुष्टुप् छन्द है ॥२१॥

सभंगश्लेषमय काव्य का निर्माण करना कठिन होता है--

भङ्गश्लेषकथाबन्धं दुष्करं कुर्वता मया ।
दुर्गस्तरीतुमारब्धो बाहुभ्याम्भसां पतिः ॥२२॥

अन्वय--दुष्करं भङ्गश्लेषकथाबन्धं कुर्वता मया दुर्गः अम्भसां पतिः बाहुभ्यां तरीतुम् आरब्धः ॥२२॥

संस्कृत-व्याख्या--दुष्करं--कठिनं, भङ्गश्लेषकथाबन्धं--भङ्गश्लेषेण सभङ्गश्लेषेण कथाबन्धं कथारचनं, कुर्वता--विदधता, दुर्गः--दुर्गमः, अम्भसां पतिः--समुद्रः, बाहुभ्यां--भुजाभ्यां, तरीतुं--सन्तर्तुम्, आरब्धः--उपक्रान्तः ॥२२॥

हिन्दी अनुवाद--कठिन सभङ्गश्लेषमय कथाकाव्य की रचना करते हुए मैंने (मानों) दुर्गम समुद्र को भुजाओं से तैरना आरंभ किया है ॥२२॥

टिप्पणी—(१) दुष्करम्--कठिन, क्लेशसाध्य। दुस्√कृ+खल्। (२) भङ्गश्लेषकथाबन्धम्--भंगश्लेष से युक्त कथा की रचना। भज्यते इति भङ्गः √भञ्ज्+घञ्। श्लिष्यन्ति भिन्नं स्वरूपमपह्नुवते, एकस्वरूपतया भाषन्ते शब्दा यत्र स श्लेषः√श्लिष्+घञ्। भङ्गश्चासौ श्लेषः भङ्गश्लेषः (कर्म० स०) भङ्गश्लेषेण कथाबन्धः भङ्गश्लेषकथाबन्धः (सुप्सुपास०), तम्।

इस श्लोक में निदर्शना अलंकार है और अनुष्टुप् छन्द है ॥२२॥

कवि ही कवि के श्रम को जानता है—

उत्फुल्लगल्लैरालापाः क्रियन्ते दुर्मुखैः सुखम्।
जानाति हि पुनः सम्यक् कविरेव कवेः श्रमम् ॥२३॥

अन्वय--दुर्मुखैः उत्फुल्लगल्लैः सुखम् आलापाः क्रियन्ते पुनः हि कवेः श्रमं कविः एव सम्यक् जानाति ॥२३॥

संस्कृत-व्याख्या--दुर्मुखैः--दुष्टवदनैः दुर्जनैरित्यर्थः, उत्फुल्लगल्लैः—उत्फुल्लाः विस्तारिताः गल्लाः कण्ठदेशाः येषां तादृशैः (सद्भिः) सुखम्--अनायासम्, आलापाः—निन्दात्मिका आलोचनाः, क्रियन्ते--विधीयन्ते, पुनः—किन्तु, हि—निश्चयेन, कविः एव--काव्यनिर्माता एव, कवेः—काव्यनिर्मातुः, श्रमं—प्रयासं, सम्यक्--यथार्थतया, जानाति—वेत्ति ॥२३॥

हिन्दी अनुवाद—दुर्मुख लोग गला फाड़कर सुख से आलोचना करते हैं, किन्तु कवि के परिश्रम को तो कवि ही अच्छी तरह जान पाता है ॥२३॥

टिप्पणी—(१) दुर्मुखैः--दुष्ट मुख वाले, निन्दक। दुष्टानि मुखानि येषां ते दुर्मुखाः (ब० स०), तैः। (२) उत्फुल्लगल्लैः--जिनके गले विकसित हो गये हैं ऐसे। अर्थात् गला फाड़कर काव्य का दोष कहने वाले या व्यंग्य करने वाले। (२) आलापाः—निन्दात्मक कथन या आलोचना। आ√लप्+घञ्। यहाँ भी अनुष्टुप् छन्द है ॥२३॥

विद्वान् लोग इस कथा का आलोकन करें--

संगता सुरसार्थेन रम्या मे रुचिराश्रया ।
नन्दनोद्यानमालेव स्वस्थैरालोक्यतां कथा ॥२४॥

अन्वय––सुरसार्थेन संगता रम्या रुचिराश्रया मे कथा नन्दनोद्यानमाला इव स्वस्थैः आलोक्यताम् ॥२४॥

संस्कृत-व्याख्या––सुरसार्थेन––शोभनः रसः शृंगारादिः तेन युक्तः यः अर्थः तेन, (नन्दन-वनपक्षे––सुरसार्थेन––देवसमूहेन) संगता––युक्ता रम्या––रमणीया, रुचिराश्रया––रुचिरः मनोहरः आश्रयः नलोपाख्यानरूपः आधारः यस्याः तादृशी, (नन्दनवक्षपक्षे––मेरुचिराश्रया––मेरौ देवगिरौ चिरात् बहु-कालात् आश्रयो निवासो यस्याः तादृशी) मे––मम, कथा––नलदमयन्तीकथा, नन्दनोद्यानमाला इव––नन्दनवनपंक्तिरिव, स्वस्थैः––स्वस्थचित्तैः जनैः, (नन्दनवनपक्षे––स्वः स्थैः––स्वर्गस्थैः सुरैः) आलोक्यतां––दृश्यतां विचार्यता-मिति यावत् ॥२४॥

हिन्दी अनुवाद––सुन्दर रस वाले अर्थ से (नन्दनवन पक्ष में देव-समूह से) युक्त, रमणीय एवं सुन्दर आधार वाली (नन्दनवन-पक्ष में सुमेरुपर्वत पर चिर-काल से आश्रित) मेरी इस कथा को नन्दनवन की पंक्ति के समान स्वस्थ (सावधान, नन्दनवनपक्ष में स्वर्गस्थित देवता) लोग अवलोकन करें ॥२४॥

टिप्पणी––(१) **सुरसार्थेन**––(१) सुन्दर रस पूर्ण अर्थ से, (२) देव-वृन्द से। (२) **रुचिराश्रया**––सुन्दर आधार वाली, (२) मेरुचिराश्रया––सुमेरुपर्वत पर बहुत समय से स्थित। (३) **स्वस्थैः**––(१) अच्छी तरह स्थित, सावधान। (२) स्वर्ग में अवस्थित।

इस श्लोक में श्लिष्ट उपमा अलंकार है और अनुष्टुप् छन्द है ॥२४॥

चम्पू काव्य और हारलता को सब चाहते हैं––

उदात्तनायकोपेता गुणवद्वृत्तमुक्तका ।
चम्पूश्च हारयष्टिश्च केन न क्रियते हृदि ॥२५॥

अन्वय––उदात्तनायकोपेता गुणवद्वृत्तमुक्तका चम्पूः च हारयष्टिः च केन हृदि न क्रियते ॥२५॥

संस्कृत-व्याख्या——उदात्तनायकोपेता——उदात्तेन धीरोदात्तेन नायकेन नेत्रा उपेता युक्ता (हारलतापक्षे उदात्तेन महार्घेण नायकेन मध्यमणिना उपेता युक्ता), गुणवद्वृत्तमुक्तका——गुणाः प्रसादादयः सन्ति येषु तानि गुणवन्ति वृत्तानि पद्यानि मुक्तकानि गद्यानि च यस्यां तादृशी (हारलतापक्षे गुणवत्यः सूत्रप्रोता वृत्ता वर्तुला मुक्तका मुक्ताफलानि यस्यां तादृशी) चम्पूः——गद्यपद्यमयं काव्यं, च, हारयष्टिः—हारलता, च, केन——जनेन, हृदि—हृदये वक्षःस्थले च, न क्रियते——न धार्यते सर्वैर्धार्यत इति भावः ।।२५।।

हिन्दी अनुवाद——धीरोदात्त नायक से युक्त (हारलतापक्ष में बहुमूल्यक मध्यमणि (लाकिट) से युक्त तथा गुणों वाले पद्यों एवं गद्यों से युक्त) (हारलतापक्ष में सूत्र में पिरोई हुई गोलमटोल मोतियों से युक्त) चम्पू और हारलता को कौन हृदय में (हारलतापक्ष में वक्षःस्थल पर) धारण नहीं करता ?

टिप्पणी——(१) उदात्तनायकोपेता——(१) धीरोदात्त नायक से युक्त, (२) उत्कृष्ट मध्यमणि से युक्त । 'नायको नेतरि श्रेष्ठे हारमध्यमणावपि' इति विश्वः । उत् उच्चैः आदीयते उच्चार्यते इति उदात्तः । उदात्तश्चासौ नायकः उदात्तनायकः (कर्म० स०), तेन उपेता (तृ० त०) । (२) गुणवद्वृत्तमुक्तका——(१) प्रसाद आदि गुणों वाले पद्यों तथा गद्यों से युक्त, (२) तन्तु में पिरोई हुई वृत्ताकार मोतियों वाली । 'वृत्तगन्धोज्झितं गद्यं मुक्तकं वृत्तगन्धि च' इति कोषः । (३) चम्पूः——गद्यपद्यात्मक काव्य । 'गद्यपद्यमयी वाणी चम्पूरित्यभिधीयते ।' 'चम्पू' शब्द की सिद्धि पृषोदरादित्वात् होती है ।

इस श्लोक में दीपक अलंकार है और अनुष्टुप् छन्द है ।।२५।।

आर्यावर्तवर्णनम्

अस्ति समस्तविश्वम्भराभोगभास्वल्ललामलीलायमानः, समानः सेव्यतया नाकलोकस्य, ग्राम्यकविकथाबन्ध इव नीरसस्य मनोहरः, भीम इव भारतालङ्कारभूतः, कान्ताकुचमण्डलस्पर्श इवाग्रणीः सर्वविषयाणाम्, अनधीतव्याकरण इवादृष्टप्रकृतिनिपातोपसर्गलोपसवर्णविकारः, पशुपतिजटाबन्ध इव विकसितकनककमलकुवलयोच्छलितरजःपुञ्जपिञ्जरितहंसावतंसया प्रचुरचलच्चकोरचक्रवाककारण्डवमण्डली-

मण्डिततीरया भगीरथभूपालकीर्तिपताकया स्वर्गगमनसोपानवीथीयमानरिङ्गत्तरङ्गया गङ्गया पुण्यसलिलः प्लावितश्चन्द्रभागालंकृतैकदेशश्च, सारः सकलसंसारचक्रस्य, शरण्यः पुण्यकारिणाम् आरामो रामणीयककदलीवनस्य, धाम धर्मस्य, आस्पदं सम्पदाम्, आश्रयः श्रेयसाम्, आकरः साधुव्यवहाररत्नानाम्, आचार्यभवनमार्यमर्यादोपदेशानामार्यावर्तो नाम देशः ।

संस्कृत-व्याख्या—समस्तविश्वम्भराभोग०—समस्तायाः निखिलायाः विश्वम्भरायाः धरित्र्याः आभोगे शरीरे भास्वत् दीप्यमानं यत् ललामं तिलकं तस्य लीलां विलासम् आचरतीति तथाभूतः, सेव्यतया—भोग्यत्वेन, नाकलोकस्य —स्वर्गलोकस्य, समानः—सदृशः, ग्राम्यकविकथाबन्ध इव—ग्राम्यस्य ग्रामीणस्य कवेः काव्यरचयितुः कथाबन्ध इव कथाप्रबन्ध इव, नीरसस्यमनोहरः—नीरेण जलेन सस्येन धान्येन च मनोहरः सुन्दरः (पक्षे नीरसस्य—असहृदयस्य, मनोहरः) भीम इव—वृकोदर इव, भारतालङ्कारभूतः—भारतस्य भारतवर्षस्य अलङ्कारभूतः भूषणभूतः (पक्षे भारतस्य महाभारतस्य अलङ्कारभूतः), कान्ताकुचमण्डलस्पर्श इव—कान्तायाः रमण्याः कुचमण्डलं स्तनमण्डलं तस्य स्पर्शः आमर्शनम् इव, सर्वविषयाणां—निखिलदेशानाम्, अग्रणीः—प्रधानभूतः (पक्षे सकलकामोपभोगानां प्रधानभूतः), अनधीतव्याकरण इव—अपठितव्याकरणशास्त्र इव, अदृष्टप्रकृतिनिपातोपसर्गलोपवर्णविकारः—अदृष्टः अनवलोकितः प्रकृतीनां प्रजानां निपातः अधः पतनम् उपसर्गः उत्पातः उपद्रव इति यावत् लोपः चौर्यं वर्णविकारः वर्णेषु ब्राह्मणादिचातुर्वर्ण्येषु विकारः मर्यादाभंगः यत्र तादृशः (पक्षे अदृष्टाः न दृष्टाः प्रकृतयः धात्वादयः निपाताः चादयः उपसर्गाः प्रादयः लोपाः वर्णविनाशाः वर्णविकाराः अक्षरविकृतयः येन तादृशः), पशुपतिजटाबन्ध इव—शिवजटाजूट इव, विकसितकनककमलकुवलयोच्छलितरजःपुञ्जपिञ्जरितहंसावतंसया—विकसितानि प्रफुल्लानि यानि कनककमलानि स्वर्णपद्मानि कुवलयानि नीलोत्पलानि च तेभ्यः उच्छलितेन निर्गतेन रजः पुञ्जेन परागपटलेन पिञ्जरिताः पिङ्गलवर्णतां नीताः हंसाः मरालाः एव अवतंसाः कर्णाभूषणानि यस्याः तादृश्या, प्रचुरचलच्चकोर०—प्रचुरं भृशं चलन्तः इतस्ततो भ्रमन्तः ये चकोराः चन्द्रिकापायिनः पक्षिणःचक्रवाकाः चक्रांगाः कारण्डवाः हंसविशेषाः तेषां मण्डल्या चक्रेण मण्डितं शोभितं तीरं तटं यस्याः तादृश्या, भगीरथभूपालकीर्तिपताकया—

भगीरथाख्यभूपयशोवैजयन्त्या, स्वर्गगमनसोपानवीथीयमानरिङ्गत्तरङ्गया—स्वर्गे स्वर्गलोके गमनम् आरोहणम् तस्मै सोपानानि तेषां वीथी पदवी इव आचरन्तः रिङ्गन्तः चञ्चलाः तरङ्गाः ऊर्मयः यस्याः तादृश्या, गङ्गया—जाह्नव्या, पुण्यसलिलैः—पवित्रजलैः, प्लावितः—सिक्तः, चन्द्रभागालङ्कृतैकदेशश्च—चन्द्रभागया नद्या अलङ्कृतः विभूषितः एकदेशः एकभागः यस्य तादृशः (पक्षे चन्द्रभागेन हिमांशुकलया अलङ्कृतः एकदेशः एकभागो यस्य तादृशः), सकलसंसारचक्रस्य—सम्पूर्णजगन्मण्डलस्य, सारः—तत्त्वम् । पुण्यकारिणां—धर्माचरणशीलानां, शरण्यः—रक्षकः, रामणीयककदलीवनस्य—रामणीयकं सौन्दर्यम् एव कदलीवनं रम्भासमूहः तस्य, आरामः—उद्यानम्, धर्मस्य—पुण्यस्य, धाम—निवासस्थानम्, सम्पदां—सम्पत्तीनाम्, आस्पदं—पात्रम्, श्रेयसां—कल्याणानाम्, आश्रयः—आधारः, साधुव्यवहाररत्नानां—सद्व्यवहारमणीनाम्, आकरः—खनिः, आर्यमर्यादोपदेशानाम्—आर्याणां साधुपुरुषाणां मर्यादा धारणास्थितिरिति यावत् तस्याः उपदेशाः शिक्षाः तेषाम्, आचार्यभवनं—गुरुकुलमित्यर्थः, आर्यावर्तो नाम—आर्यावर्ताख्यः, देशः—राष्ट्रम्, अस्ति—विद्यते ।

हिन्दी अनुवाद—सम्पूर्ण पृथ्वी के शरीर पर चमकते हुए तिलक के विलास के समान, सेवनीयता के कारण स्वर्गलोक के समान, अरसिक जनों के लिए ग्राम्य कवियों की कथा-रचना के समान जल और धान्य से मनोहर, महाभारत के अलंकार-स्वरूप भीम के समान भारतवर्ष के अलंकार, रमणी के कुच-मण्डल के स्पर्श के समान सभी (भोग्य) विषयों में अग्रणी, व्याकरण का अध्ययन न करने वाले के समान प्रकृति-निपात(व्याकरण-पक्ष में धातु आदि तथा निपात संज्ञक वर्ण च आदि और आर्यावर्तपक्ष में प्रजा का पतन) उपसर्ग (व्या० पक्ष में प्र आदि और आर्या० पक्ष में उपद्रव), लोप (व्या० पक्ष में वर्णविनाश और आर्या० पक्ष में चोरी या वेदविहित कर्मों के अभाव) तथा वर्णविकार (व्या० पक्ष में अक्षरों की विकृति और आर्या० पक्ष में ब्राह्मण आदि चारों वर्णों में मर्यादाभंग) के दर्शन से रहित, शंकर के जटाजूट के समान गंगा के पवित्र जल से, जिसमें खिले हुए स्वर्णकमलों तथा नीलकमलों से झरते हुए परागपुञ्ज (पुष्पधूलि) से पिञ्जरित (लाल-पीले वर्ण वाले) हंस कर्णाभूषण हैं, जिसके तट अनेक चंचल चकोर, चक्रवाक तथा कारण्डवों (बत्तखों) की मंडलियों से मण्डित हैं, जो राजा भगीरथ की कीर्ति-पताका है और जिसकी चंचल तरंगें

स्वर्ग-गमन की सोपान-पंक्ति के समान प्रतीत होती हैं, नहलाया हुआ तथा एक भाग (दक्षिण) में चन्द्रभागा नदी (जटाजूट-पक्ष में चन्द्रखण्ड) से अलंकृत, सम्पूर्ण भू-मण्डल का तत्त्व, पवित्र कार्य करने वालों का रक्षक, सौन्दर्यरूपी कदलीवन का बगीचा, धर्म का स्थान, सम्पत्तियों का घर, मंगलों का आश्रय, सद्व्यवहार रूपी रत्नों की खान और आर्यों की मर्यादाओं की शिक्षाओं का गुरुकुल आर्यावर्त नाम का देश है।

टिप्पणी—आर्यावर्त—आर्यों की निवास-भूमि (मध्य और उत्तर भारत) जो पूर्व और पश्चिम में समुद्रों द्वारा और उत्तर तथा दक्षिण में हिमालय और विन्ध्यगिरि द्वारा सीमाबद्ध है—'आ समुद्रात्तु वै पूर्वादा समुद्राच्च पश्चिमात्। तयोरेवान्तरं गिर्योरार्यावर्तं विदुर्बुधाः ॥' (मनुस्मृति। आराद् यातः इति आर्यः अर्थात् 'आराद् दूरसमीपयोः' इत्यनेन आराद् असभ्यतादुराचारादिदोषेभ्यो दूरं गतश्च शिक्षासभ्यताविद्यादिभिः देवास्पदत्वं प्राप्तः इति आर्यः पृषोदरादित्वात् साधुत्वम्।' अर्थात् जो व्यक्ति असभ्यता, दुराचार आदि दोषों से अलग रहे और शिक्षा, सभ्यता, विद्या आदि गुणों से देव-तुल्य हो जाये, वह 'आर्य' है। अर्यन्ते गम्यन्ते आचारपूतत्वादाश्रीयन्ते इति आर्याः√ऋ+ण्यत् कर्मणि। आ समन्तात् आर्याः वर्तन्ते यत्र स आर्यावर्तः। आचार्यभवनम्—गुरुगृह अर्थात् गुरुकुल। आचार्य का लक्षण यह है—'आचिनोति हि शास्त्रार्थमाचारे स्थापयत्यपि। स्वयमाचरते यस्मादाचार्यस्तेन कथ्यते ॥' यहाँ के गद्य में 'ललामलीलायमानः' अंश में ललाम और आर्यावर्त के उपमान और उपमेयभाव का वर्णन होने से व्यङ्गता उपमा है। 'समानः सेव्यतया' में पूर्णोपमा है। 'ग्राम्यकवि'—यहाँ से लेकर 'चन्द्रभागालंकृतैकदेशश्च' तक में श्लेषानुप्राणित उपमाओं की संसृष्टि है। 'सारः सकल'—में रूपक है। 'आरामो रामणीयक' में, 'आकरः साधु'—में तथा 'आचार्यभवनम् आर्य'—में परम्परितरूपक है। फिर 'सारः सकल'—इत्यादि में रूपक तथा उल्लेख अलंकारों का संकर भी है।

यस्मिन्ननवरतधर्मकर्मोपदेशशान्तसमस्तव्याधिव्यतिकराः पुरुषायुषजीविन्यः सकलसंसारसुखभाजः प्रजाः। तथा हि, कुष्ठयोगो गान्धिकापणेषु, स्फोटप्रवादो वैयाकरणेषु, सन्निपातस्तालेषु, ग्रहसंक्रान्तिर्ज्योतिः शास्त्रेषु, भूतविकारवादः सांख्येषु, क्षयस्तिथिषु,

गुल्मवृद्धिर्वनभूमिषु, गलग्रहो मत्स्येषु, गण्डकोत्थानं पर्वतवनभूमिषु, शूलसम्बन्धश्चण्डिकायतनेषु दृश्यते न प्रजासु ।

संस्कृत-व्याख्या--यस्मिन्--आर्यावर्ते, प्रजाः--प्रकृतयः, अनवरतधर्म०--अनवरतं निरन्तरं धर्माणां पुण्यानां कर्मणां कर्तव्यकार्याणां च उपदेशः शिक्षणं तेन शान्ताः अपगताः समस्तव्याधीनां सकलरोगाणां व्यतिकराः सम्बन्धाः यासां तादृश्यः, पुरुषायुषजीविन्यः--पुरुषायुषपर्यन्तं वर्षशतमिति यावत् जीवनधारणकारिण्यः, सकलसंसारसुखभाजः--सकलं निखिलं संसारस्य जगतः सुखम् आनन्दम् भजन्ते सेवन्ते याः तादृश्यः (सन्ति) तथाहि--कुष्ठयोगः--कुष्ठस्य कुष्ठौषधस्य योगः सम्बन्धः, गान्धिकापणेषु--गान्धिकानां सुगन्धितैलादिविक्रेतृणाम् आपणेषु निषद्यासु, दृश्यते--अवलोक्यते, न, प्रजासु--प्रकृतिषु, कुष्ठयोगः--कुष्ठरोगसम्बन्धः, दृश्यते । स्फोटप्रवादः--स्फोटस्य नित्यशब्दात्मकस्य शब्दब्रह्मण इति यावत् प्रवादःवर्णनं, वैयाकरणेषु--व्याकरणाध्येतृषु व्याकरणवित्सु च, दृश्यते, न, प्रजासु, स्फोटप्रवादः--स्फोटस्य पिटकस्य प्रवादः प्रकथनं, दृश्यते । सन्निपातः--सम्यक् निपतनम्, तालेषु--करतलवादनेषु, दृश्यते, न, प्रजासु, सन्निपातः--सन्निपातज्वरो दृश्यते । ग्रहसंक्रान्तिः--ग्रहाणां सूर्यादीनां संक्रान्तिः मेषादिराशौ संक्रमणं, ज्योतिःशास्त्रेषु--ज्योतिषग्रन्थेषु, दृश्यते, न, प्रजासु, ग्रहसंक्रान्तिः--ग्रहस्य बन्धनस्य संक्रमणं दृश्यते । भूतविकारवादः--भूतं प्रधानं मूलप्रकृतिः ततो विकारस्य महदादिविकृतेः वादः सिद्धान्तः, सांख्येषु--सांख्यमतानुयायिषु, दृश्यते, न, प्रजासु, भूतविकारवादः--भूतानां प्रेतानां विकारस्य आवेशरूपस्य वादः वर्णनं दृश्यते । क्षयः--हानिः, तिथिषु--प्रतिपद्द्वितीयादिषु, दृश्यते, न प्रजासु, क्षयः--क्षयरोगः, दृश्यते । गुल्मवृद्धिः--गुल्मानां लतादिकुञ्जानां वृद्धिः वर्धनं, वनभूमिषु--अरण्यस्थलीषु, दृश्यते, न, प्रजासु, गुल्मवृद्धिः--प्लीहवर्धनं, दृश्यते । गलग्रहः--वडिशेन कण्ठग्रहणं, मत्स्येषु--मीनेषु, न, प्रजासु, गलग्रहः--पाशेन गलबन्धनं कण्ठरोगो वा, दृश्यते । गण्डकोत्थानं--गण्डकानां खड्गिनाम् उत्थानम् उत्थितिः, पर्वतवनभूमिषु--पर्वतानां गिरीणां वनभूमिषु अरण्यस्थलीषु, दृश्यते, न, प्रजासु गण्डकोत्थानं--गण्डकानां ह्रस्वस्फोटकानाम् उत्थानं, दृश्यते । शूलसम्बन्धः--शूलस्य त्रिशुलस्य सम्बन्धः योगः, चण्डिकायतनेषु--दुर्गामन्दिरेषु, दृश्यते, न, प्रजासु, शूलसम्बन्धः--शूलस्य उदररोगविशेषस्य सम्बन्धः शूलारोपणं वा, न, दृश्यते ।

हिन्दी अनुवाद––जिस (आर्यावर्त) में प्रजायें निरन्तर धर्मकर्मों के उपदेश से समस्त रोगों के सम्बन्ध को शान्त करने वाली पुरुष की आयु (सौ वर्ष तक) जीने वाली और संसार के समस्त सुखों का उपभोग करने वाली हैं। क्योंकि (वहाँ) गन्धद्रव्य बेचने वालों की दुकानों में कुष्ठ (कुष्ठ नामक औषध) दिखाई देता है न कि प्रजाओं में (कुष्ठ=कुष्ठरोग दिखाई देता है), स्फोटवाद (शब्दब्रह्म का निरूपण) वैयाकरणों में दिखाई देता है न कि प्रजाओं में (स्फोटवाद=फोड़े, फुन्सी या मतभेद की चर्चा है), सन्निपात (दोनों हाथों का मिलाना) तालो में (संगीत में ताल देते समय) दिखाई देता है न कि प्रजाओं में (सन्निपात=सन्निपात ज्वर दिखाई देता है), ग्रहों का संक्रमण ज्योतिष शास्त्र में दिखाई देता है न कि प्रजाओं में (ग्रहसंक्रमण=बन्धन या हथकड़ी का लगना दिखाई देता है), भूतविकारवाद (प्रकृति से महदादि की उत्पत्ति का सिद्धान्त) सांख्यग्रन्थों में दिखाई देता है न कि प्रजाओं में (भूत-विकारवाद=भूतावेश से उत्पन्न विकार की चर्चा है), क्षय (ह्रास) तिथियों में दिखाई देता है न कि प्रजाओं में (क्षय=क्षयरोग दिखाई देता है), गुल्मों (लता-वृक्षों) की वृद्धि वनस्थलियों में दिखाई देती है न कि प्रजाओं में (गुल्मवृद्धि=तिल्ली की वृद्धि दिखाई देती है), गले का पकड़ा जाना मछलियों में दिखाई देता है न कि प्रजाओं में, गण्डकों=गैंड़ों का उत्थान=उछलना-कूदना पहाड़ी वन-भूमियों में दिखाई देता है न कि प्रजाओं में (गण्डकों=फोड़े-फुंसियों का उत्थान देखा जाता है) और शूल (त्रिशूल) का सम्बन्ध दुर्गा के मन्दिरों में देखा जाता है न कि प्रजाओं में (शूलरोग या शूली पर चढ़ना देखा जाता है)।

टिप्पणी––**पुरुषायुषजीविन्यः**––पूरी पुरुष की आयु (सौ वर्ष) जीने वाली। क्योंकि श्रुति कहती है––'शतायुर्वै पुरुषः'। पुरुषस्य आयुः पुरुषायुषम् (ष० त०), 'अचतुरविचतुर'––इत्यादिसूत्रेण समासान्तः अच्प्रत्ययः। पुरुषायुषं जीवन्ति इति पुरुषायुषजीविन्यः पुरुषायुष√जीव्+णिनि+ङीप् (ई)। **वैया-करणेषु**––व्याकरण के अध्येता या ज्ञाता। व्याक्रियन्ते व्युत्पाद्यन्ते शब्दाः अनेन इति व्याकरणम् वि––आ√कृ+ल्युट्––अन। व्याकरणम् अधीयते विदन्ति वा इति वैयाकरणाः व्याकरण+अण्, ऐच् का आगम, तेषु। **भूतविका-रवादः**––भूतों के विकार का सिद्धान्त अर्थात् प्रधान मूलप्रकृति से महान्,

महान् से अहंकार, अहंकार से पञ्चतन्मात्रायें, उनसे ग्यारह इन्द्रियां और पांच महाभूत—कुल मिलाकर चौबीस तत्व और पचीसवां पुरुष—इनका कथन। यह सिद्धान्त सांख्यदर्शन का है। यहां के गद्य में 'कुण्ठयोग—' से लेकर सर्वत्र श्लेषानुप्राणित परिसंख्या अलंकार है।

यत्र चतुरगोपशोभिताः संग्रामा इव ग्रामाः, तुङ्गसकलभवनाः सर्वत्र नगा इव नगरप्रदेशाः, सदाचरणमण्डनानि नूपुराणीव पुराणि, सदानभोगाः प्रभञ्जना इव जनाः, प्रियालपनसाराणि यौवनानीव वनानि, विटपिहिताश्चेटिका इव वाटिकाः, निर्वृतिस्थानानि सुकलत्राणीवेक्षुक्षेत्रसत्राणि, जलाविलक्षणाः पशुपुरुषा इवाप्रमाणास्तडागभागाः, कुपितकपिकुलाकुलिता लङ्केश्वरकिंकरा इव भग्नकुम्भकर्णघनस्वापाः कूपाः, पीवरोधसः सरित इव गावः, सतीव्रतापदोषाः सूर्यद्युतय इव कुलस्त्रियः।

संस्कृत-व्याख्या—यत्र—आर्यावर्ते, ग्रामाः—आवसथाः, तुरगोपशोभिताः—तुरगैः घोटकैः उपशोभिताः राजिताः, संग्रामाः—रणाः, इव—यथा, चतुरगोपशोभिताः—चतुरैः निपुणैः गोपैः गोपालकैः उपशोभिताः (सन्ति)। सर्वत्र—सम्पूर्णेऽपि देशे, नगरप्रदेशाः—पुरोद्देशाः, तुङ्गसकलभवनाः—तुङ्गानां पुंनागवृक्षाणां सकलमानि गजशावकसहितानि वनानि अरण्यानि येषु तादृशाः, नगाः—पर्वताः, इव, तुङ्गसकलभवनाः—तुङ्गानि अत्युन्नतानि सकलानि निखिलानि भवनानि गृहाणि यत्र तादृशाः (सन्ति)। पुराणि—नगराणि, सदाचरणमण्डनानि—सदा सर्वदा चरणमण्डनानि पादभूषणानि, नूपुराणि—मञ्जीराणि, इव, सदाचरणमण्डनानि—सदाचरणं सदाचार एव मण्डनं भूषणं येषां तादृशानि (सन्ति)। जनाः—लोकाः, सदानभोगाः—सदा सर्वदा नभोगाः—नभसि आकाशे गच्छन्ति इति तादृशाः, प्रभञ्जनाः—वायवः, इव, सदानभोगाः—दानं त्यागः भोगः उपभोगश्च इति ताभ्यां सहिताः (सन्ति)। वनानि—काननानि, प्रियालपनसाराणि—प्रियया प्रियतमया सह आलपनं सकामोल्लापः एव सारस्तत्त्वं येषु तादृशानि, यौवनानि—तारुण्यानि, इव, प्रियालपनसाराणि—प्रियालान् राजादनानि पनसान् कण्टकिफलानि ऋच्छन्ति इति तादृशानि (सन्ति)। वाटिकाः—उद्यानानि, विटपिहिताः—विटैः धूर्तैः पिहिताः आलिंगिताः, चेटिकाः

—दास्यः, इव, विटपिहिताः—विटपिनो वृक्षाः तेभ्यः हिताः हितकराः (सन्ति)। इक्षुक्षेत्रसत्राणि—इक्षूणां रसालानां क्षेत्राणि स्थानानि तेषु सत्राणि दानशालाः निर्वृतिस्थानानि—सुखास्पदानि, सुकलत्राणि—सुभार्याः, इव, निर्वृतिस्थानानि निर्वृत्या वृतेरभावेन स्वच्छन्दं स्थीयते यत्र तथाविधानि (सन्ति)। तडागभागाः—जलाशयस्थलानि, जलाविलक्षणाः—जडा जडबुद्धयः विलक्षणाः लक्षणहीनाः असंस्कृता इति यावत्, अप्रमाणाः—आगमादिप्रमाण-रहिताः, पशुपुरुषाः—पशुसमानाः पुमांसः, इव, जडाविलक्षणाः—जलेन वारिणा आविलाः पङ्किलाः क्षणाः अवतारादितटप्रदेशाः येषां तादृशाः तथा अप्रमाणाः अपरिमिताः अगाधाः दीर्घाश्च (सन्ति)। कूपाः—अन्धवः, कुपितकपिकुला-कुलिताः—कुपिताः क्रुद्धाः कपयः वानराः तेषां कुलानि समूहाः तैः आकुलिताः उद्वेजिताः, (तथा) भग्नकुम्भकर्णघनस्वापाः—भग्नो विच्छिन्नः कुम्भकर्णस्य रावणानुजस्य घनः गाढः स्वापः निद्रा यः तादृशाः, लङ्केश्वरकिङ्करा इव—रावणसेवका इव, कुपितकपिकुलाकुलिताः—कुपितकपिकुलैः कूपस्य उपरिभाग-स्थितवृक्षोपविष्टैः क्रुद्धवानरवृन्दैः आकुलिताः पत्रादिपातनेन संक्षोभिताः, (तथा) भग्नकुम्भकर्णघनस्वापाः—भग्नाः विनाशिताः कुम्भानां कलशानां कर्णाः कण्ठाः येषु तादृशाः घनाः प्रचुराः स्वाः स्वकीयाः पातालमूलोत्थाः शोभना वा आपः जलानि येषु तादृशाः (सन्ति)। गावः—धेनवः, पीवरोधसः—पीवं विशालं रोधः तीरं यासां तथाभूताः, सरितः—नद्यः, इव, पीवरोधसः—पीवरं स्थूलम् ऊधः आपीनं यासां तथाभूताः (सन्ति)। कुलस्त्रियः—कुला-ङ्गनाः, सतीव्रतापदोषाः—तीव्रः तीक्ष्णः तापः आतपः एव दोषः तेन सहिताः, सूर्यद्युतयः—दिवाकरप्रभाः, इव, सतीव्रतापदोषाः—सतीनां पतिव्रतानां व्रतं नियमः तेन अपगताः नष्टाः दोषाः कलङ्काः यासां तथाभूताः (सन्ति)।

हिन्दी अनुवाद—जहाँ (आर्यावर्त में) गाँव अश्वों से सुशोभित संग्राम की तरह चतुर गोपालकों से शोभित हैं। नगर-प्रदेश पुंनागवृक्ष तथा हाथी के बच्चों से युक्त वन वाले पर्वत के समान सर्वत्र समस्त अत्युच्च भवनों से युक्त हैं। नगर सदा चरणों को अलंकृत करने वाले नूपुरों के समान उत्तम आचर-णरूप अलंकार से युक्त हैं। लोग सदा आकाश में गमन करने वाले पवनों के समान दान और भोग से युक्त हैं। वन प्रिया के साथ आलाप रूपी सार से

युक्त यौवन के समान प्रियाल (चिरौंजी) तथा कटहल के वृक्षों से युक्त हैं। वाटिकायें विटों (धूर्तों) से घिरी हुई चेटियों (दासियों) के समान वृक्षों के लिए हितकारक हैं। गन्ने के खेतों की दानशालायें सुख के स्थानभूत उत्तम पत्नियों के समान बाड़ से रहित होने के कारण स्वच्छन्दतापूर्वक रहने के योग्य है। तालाब जड़ एवं (शुभ) लक्षणशून्य तथा प्रमाण से रहित (अर्थात् शास्त्रादि प्रमाण को न मानने वाले) पशुतुल्य पुरुष के समान जल से पंकिल तट वाले तथा प्रमाणरहित (अर्थात् अगाध) हैं। कुएँ क्रुद्ध वानरों के समूह से व्याकुल किये गये तथा कुम्भकर्ण की घोर निद्रा को भंग करने वाले रावण के सेवकों के समान (कुएँ के आस-पास के वृक्षों पर बैठे) कुपित वानर-समूह के द्वारा (गिराये गये फूल-पत्तों से) क्षुब्ध तथा टूटे हुए घड़ों के कानों से युक्त और गहरे सुन्दर जल वाले हैं। गौएं विशाल तट वाली नदियों के समान मोटे थन वाली हैं। कुलांगनायें तीव्र ताप वाले दोष से युक्त सूर्य की आभा के समान सती-व्रत से नष्ट दोष वाली हैं।

टिप्पणी--तुरग--घोड़ा। तुरेण वेगेन गच्छति इति तुरगः तुर√गम्+ड। ग्राम--गांव। 'समौ संवसथग्रामौ' इत्यमरः। नग--पर्वत। न गच्छति इति नगः नञ्समासः 'नगोऽप्राणिष्वन्यतरस्याम्' इति सूत्रेण प्रकृतिभावः, अतो नकारस्य न लोपः। तडाग--तालाब। 'पद्माकरस्तडागोऽस्त्री' इत्यमरः। ऊधः--थन। 'ऊधः स्त्री क्लीबमापीनम्' इत्यमरः। यहाँ के गद्य में श्लिष्ट उपमा अलंकार है।

यत्र च मनोहारिसारसद्वन्द्वास्तत्पुरुषेण द्विगुना चाधिष्ठितः कादम्बरीगद्यबन्धा इव दृश्यमानबहुव्रीहयः केदाराः।

संस्कृत-व्याख्या--यत्र च--आर्यावर्ते, केदाराः--परिष्कृतक्षेत्राणि, मनोहारि सारसद्वन्द्वाः मनोहारिसाराः रमणीयार्थाः सद्वन्द्वाः द्वन्द्वसमाससहिताश्च' द्विगुना--द्विगुसमासेन च, अधिष्ठिताः--युक्ताः, दृश्यमानबहुव्रीहयः--दृश्यमानः अवलोक्यमानः बहुव्रीहिः बहुव्रीहिसमासः येषु तादृशाः, कादम्बरीगद्यबन्धाः--कादम्बरी बाणभट्टरचिता कथा तस्याः गद्यानि तेषां बन्धाः रचनाः, इव--यथा, मनोहारिसारसद्वन्द्वाः--मनोहारीणि सारसानां सारसपक्षिणां द्वन्द्वानि युगलानि येषु तादृशाः, द्विगुना--द्वौ गावौ वृषभौ यस्य तादृशेन, तत्पुरुषेण--

तत्स्वामिना, अधिष्ठिताः आश्रिताः, च--तथा, दृश्यमानबहुव्रीहयः--दृश्यमानाः बहवः व्रीहयः धान्यानि येषु तादृशाः (सन्ति) ।

हिन्दी अनुवाद--जहाँ (आर्यावर्त में) खेत रमणीय अर्थ वाली, द्वन्द्वसमास सहित, द्विगुसमास और तत्पुरुष समास से युक्त एवं दृश्यमान (दिखाई पड़ने वाले) बहुव्रीहि समास वाली कादम्बरी की गद्य-रचना के समान मनोहर सारस पक्षियों की जोड़ी से युक्त, दो बैलों वाले स्वामी से सनाथ और दिखाई पड़ने वाले धान्य से सम्पन्न हैं।

टिप्पणी--**केदाराः**--खेत। के जले शिरसि वा दारः यषां ते केदाराः अपवा केन जलेन दीर्यन्ते इति केदाराः। **कादम्बरी**--बाणभट्टरचित कादम्बरी नामक गद्यकाव्य। कदम्बे जातः कादम्बः कदम्ब+अण्। कादम्बं रातीति कादम्बरी कादम्ब√रा+क+ङीप्।

किं बहुना ।

नास्ति सा नगरी यत्र न वापी न पयोधरा ।
दृश्यते न च यत्र स्त्री नवा पीनपयोधरा ॥२६॥

अन्वय--यत्र सा नगरी नास्ति, यत्र न वापी न पयोधरा (भूमिः)। च यत्र नवा पीनपयोधरा स्त्री न दृश्यते ॥२६॥

संस्कृत-व्याख्या--यत्र--आर्यावर्ते, सा--तादृशी, नगरी--पुरी, नास्ति--न विद्यते, यत्र, वापी--दीर्घिका, न----नास्ति, पयोधरा--पयसां जलानां धरा धारयित्री जलवतीत्यर्थः (भूमिः), न--नास्ति। च--तथा, यत्र, नवा--नूतना, पीनपयोधरा--स्थूलकुचा, स्त्री--रमणी, न दृश्यते--नावलोक्यते ('नवापीनपयोधरा' इति पदं वापीपयोधरयोरपि विशेषणं भवितुमर्हति। तद्यथा नवा नूतना पीनपयोधरा प्रचुरजलयुक्ता च वापी। न वापीनपयोधरा--वापिनां वीजवप्तॄणां कर्षकाणाम् इनाः स्वामिनः पयोधरा मेघा यत्र सा वापीनपयोधरा देवमातृका तादृशी न किन्तु नद्यादिमातृका। प्रशस्तस्वामिपयस्का वापी प्रचुरजलवती भूमिः चेति भावः) ॥२६॥

हिन्दी अनुवाद--अधिक क्या कहें। जहाँ (आर्यावर्त में) ऐसी कोई नगरी नहीं है, जिसमें बावली न हो, जल-प्रचुर भूमि न हो और जहाँ नई एवं स्थूल

कुचों वाली रमणी न दिखाई दे ('नवापीनपयोधरा' को 'वापी' तथा 'पयोधर' का विशेषण मानने पर इसका अर्थ होगा—नूतन तथा प्रचुरजलयुक्त बावली और जहाँ किसानों के स्वामी केवल मेघ ही नहीं हैं, अपितु नदी, नहर आदि से भी सिंचाई की जाती है ऐसी जलप्रचुर भूमि ।) ॥२६॥

टिप्पणी—वापिन्+इन—बोने वालों के स्वामी। 'इनः सूर्ये प्रभौ' इत्यमरः। इस श्लोक में तुल्ययोगिता तथा यमक अलंकारों का संकर है। इसमें अनुष्टुप् छन्द है ॥२६॥

अपि च ।

भवन्ति फाल्गुने मासि वृक्षशाखा विपल्लवाः ।
जायन्ते न तु लोकस्य कदापि च विपल्लवाः ॥२७॥

अन्वय—फाल्गुने मासि वृक्षशाखाः विपल्लवाः भवन्ति, तु लोकस्य कदापि विपल्लवाः न च जायन्ते ॥२७॥

संस्कृत-व्याख्या—फाल्गुने मासि—तपस्ये मासि, वृक्षशाखाः—वृक्षाणां तरूणां शाखाः विटपाः, विपल्लवाः—विगताः नष्टाः पल्लवाः किसलयाः याभ्यः तादृश्यः, भवन्ति—जायन्ते, तु—किन्तु, लोकस्य—जनस्य, कदापि—जातुचित्, विपल्लवाः—विपदाम् आपत्तीनां लवाः लेशाः, न च—नैव, जायन्ते—भवन्ति ॥२७॥

हिन्दी अनुवाद—और भी (जहाँ) फाल्गुन मास में वृक्षों की शाखायें (पतझड़ होने के कारण) पत्ररहित हो जाती हैं, किन्तु लोगों पर कभी भी विपत्तियों के लेश भी नहीं आते (अर्थात् कोई विपत्तिग्रस्त नहीं होता) ॥२७॥

टिप्पणी—फाल्गुने—फलति निष्पादयति इति फलगुनः√फल्+उन्, गुगागम; फल्गुन एव फल्गुनः फाल्गुन+अण्, तस्मिन् ।

इस श्लोक में परिसंख्या एवं यमक का संकर है ॥२७॥

यत्र सौराज्यरञ्जितमनसः सकलसमृद्धिवर्धितमहोत्सवपरम्परारम्भनिर्भराः सततमकुलीनं कुलीनाः, प्राप्तविमानमप्राप्तविमानभङ्गाः, कतिपयवसुविराजितमनेकवसवः, समुपहसन्ति स्वर्गवासिनं जनं जनाः ।

संस्कृत-व्याख्या--यत्र--आर्यावर्ते, सौराज्यरञ्जितमनसः--सौराज्येन शोभनाधिपत्येन रञ्जितानि प्रसादितानि मनांसि चेतांसि येषां तथाभूताः, सकलसमृद्धि०--सकलसमृद्धिभिः सर्वैश्वर्यैः वर्धिता वृद्धिं नीता या महोत्सव-परम्परा प्रमोदोत्सवश्रेणिः तस्याः आरम्भे उपक्रमे निर्भराः संलग्नाः कुलीनाः--सत्कुलोत्पन्नाः, अप्राप्तविमानभङ्गाः--अप्राप्तः अलब्धः विमानेन अपमानेन भङ्गः पराजयः यैः तादृशाः, अनेकवसवः--अनेकानि असंख्यानि वसूनि धनानि येषां तादृशाः, जनाः--लोकाः, सततं--निरन्तरम्, अकुलीनं--कौ पृथिव्यां लीनः स्थितः इति कुलीनः न कुलीनः अकुलीनः तम् पृथिवीनिवासरहितमिति यावत्, प्राप्तविमानं--प्राप्तं विमानं व्योमयानं येन तादृशम्, कतिपयवसुविराजितं--कतिपयैः अष्टसंख्यकैः एव वसुभिः धनैः विराजितं शोभितं, स्वर्गवासिनं--देव-लोकनिवासिनं, जनं--प्राणिनं, समुपहसन्ति--अतिक्रामन्ति ।

हिन्दी अनुवाद--जहाँ (आर्यावर्त में) उत्तम राज्य से प्रसन्न चित्त वाले, समस्त समृद्धियों से वृद्धि को प्राप्त महोत्सवों की परम्परा का आरंभ करने में संलग्न, कुलीन, मान-भंग को न प्राप्त करने वाले तथा अनेक (प्रचुर) ऐश्वर्यों से शोभित लोग सतत अकुलीन (पृथिवी पर न रहने वाले) विमान (पुष्पकविमान) को प्राप्त करने वाले तथा कुछ ही (आठ) वसुओं (ऐश्वर्यों) से शोभित स्वर्गवासी जन (देवताओं) का उपहास करते हैं ।

टिप्पणी--वसु--वसु आठ माने गये हैं । उनके नाम ये हैं--'धरो ध्रुवश्च सोमश्च विष्णुश्चैवानिलोऽनलः । प्रत्यूषश्च प्रभासश्च वसवोऽष्टौ क्रमान्मताः ॥' यहाँ के गद्य में श्लेष के बल से उत्थापित व्यतिरेक अलंकार है ।

कथं चासौ स्वर्गान्न विशिष्यते । यत्र गृहे गृहे गौर्यः स्त्रियः, महेश्वरो लोकः, सश्रीका हरयः, पदे पदे धनदाः सन्ति लोक-पालाः । केवलं न सुराधिपो राजा । न च विनायकः कश्चित् ।

संस्कृत-व्याख्या--कथं च--कुतश्च, असौ--आर्यावर्त्तः, स्वर्गात्--नाक-लोकात्, न विशिष्यते--वैशिष्ट्ययुक्तो न भवति । यत्र--यस्मिन् आर्यावर्ते, गृहे गृहे--प्रतिगृहं, गौर्यः--गौरवर्णाः, स्त्रियः--महिलाः, (स्वर्गे तु एका एव गौरी--पार्वती) । लोकः--जनः, महेश्वरः महैश्वर्यसम्पन्नः, (स्वर्गे तु एक एव महेश्वरः--शिवः) । हरयः--अश्वाः, सश्रीकाः--शोभान्विताः (स्वर्गे तु एक

एव हरिः विष्णुः) । पदे पदे—स्थाने स्थाने, धनदाः—धनप्रदातारः, लोकपालः—नृपाः, सन्ति—विद्यन्ते (स्वर्गे तु एक एव धनदः) । केवलं, सुराधिपः—मद्यपः, राजा—नृपः, न—नास्ति (स्वर्गे तु सुराधिपः—देवेन्द्रः राजा (अस्ति)। न च—नापि, विनायकः—नायकरहितः, कश्चित् (स्वर्गे तु विनायकः—गणेशः वर्तत एव) ।

हिन्दी अनुवाद—वह (आर्यावर्त) स्वर्ग से विशेष (बढ़कर) क्यों न हो, जहाँ घर-घर में गौर वर्ण वाली स्त्रियाँ हैं (जब कि स्वर्ग में एक ही गौरी (पार्वती) हैं, लोग महेश्वर (महान् ऐश्वर्य-सम्पन्न) हैं (जब कि स्वर्ग में एक ही महेश्वर (शिव) हैं, हरि (घोड़े) श्री (शोभा) सहित हैं (जब कि स्वर्ग में एक ही हरि (विष्णु) श्री (लक्ष्मी) सहित हैं), पग-पग पर धन देने वाले लोकपाल (राजा) हैं (जब कि स्वर्ग में एक ही धनद (कुबेर) लोकपाल है) । आर्याव र्त में केवल सुराधिप (मद्यपायी) राजा नहीं है (जब कि स्वर्ग में सुराधिप (देवताओं के स्वामी इन्द्र हैं) । (आर्यावर्त में) कोई विनायक (नायकरहित) नहीं है (जब कि स्वर्ग में विनायक (गणेश) हैं) ।

टिप्पणी—'न च विनायकः कश्चित्' में व्यतिरेक अलंकार है और 'यत्र गृहे' से लेकर 'विनायकः कश्चित्' तक काव्यलिंग अलंकार है। दोनों अलंकारों में अंगांगिभाव संकर हैं।

यत्र च लतासम्बन्धः कलिकोपक्रमश्च पादपेषु दृश्यते, न च पुरुषेषु । यत्र चमरकवार्ता परमहिमोपघातश्च तुहिनाचलस्थलीषु श्रूयते, न प्रजासु ।

संस्कृत-व्याख्या—यत्र च—यस्मिन् च आर्यावर्ते, लतासम्बन्धः—लतानां वल्लीनां सम्बन्धः योगः, कलिकोपक्रमश्च—कलिकानां कोरकाणाम्, उपक्रमश्च प्रादुर्भावश्च, पादपेषु—वृक्षेषु, दृश्यते—अवलोक्यते, न च, पुरुषेषु—मनुष्येषु, (चलतासम्बन्धः—चाञ्चल्ययोगः, कलिकोपक्रमश्च—कलेः कलहस्य कोपस्य क्रोधस्य च क्रमः आविर्भावः च, दृश्यते) । यत्र, चमरकवार्ता—चमरकाणां चामरमृगाणां वार्ता वृत्तान्तः, परमहिमोपघातश्च—परमेण प्रचुरेण हिमेन तुहिनेन उपघातः उपद्रवः हानिरिति यावत् च, तुहिनाचलस्थलीषु—हिमालयप्रान्तेषु,

श्रूयते---श्राकर्ण्यंते, न प्रजासु---न जनेषु, (च, मरकवार्ता---मरकस्य मृत्योः श्रकालमृत्योरिति यावत् वार्ता वृत्तान्तः, परमहिमोपघातश्च---परस्य श्रन्यस्य महिम्नः माहात्म्यस्य प्रतिष्ठाया इत्यर्थः उपघातश्च विनाशश्च, श्रयते) ।

हिन्दी श्रनुवाद---जहाँ (श्रार्यावर्त में) लता का सम्बन्ध तथा कलियों का श्राविर्माव वृक्षों में ही देखा जाता है न कि मनुष्यों में (चंचलता, कलह एवं क्रोध का संचार देखा जाता है)। जहाँ चमरीमृगों (सुरागायों) की चर्चा तथा श्रत्यधिक बर्फ के गिरने से विनाश हिमालय की भूमियों में ही सुना जाता है न कि जनता में (श्रकालमृत्यु की बात तथा दूसरे की प्रतिष्ठा का हनन सुना जाता है) ।

टिप्पणी---च लतासम्बन्धः---इसको पक्षान्तर में 'चलतासम्बन्धः' श्रौर 'चमरकवार्ता' को पक्षान्तर में 'च मरकवार्ता' पढना चाहिए । यहाँ के गद्य में श्लेषानुप्राणित शाब्द परिसंख्या श्रलंकार है ।

यश्च नीतिमत्पुरुषाधिष्ठितोऽप्यनीतिः सवटोऽप्यवटसंकुलः, कारूपयुतोऽप्यगतरूपशोभः ।

संस्कृत-व्याख्या---यश्च---श्रार्यावर्तः, नीतिमत्पुरुषाधिष्ठितोऽपि---नीतिमद्भिः नयवद्भिः पुरुषैः जनैः श्रधिष्ठितोऽपि श्राश्रितोऽपि, श्रनीतिः---नीतिरहितः इति विरोधः तत्परिहारस्तु न विद्यन्ते ईतयः षडुपद्रवाः यस्मिन् तादृशः इति, सवटोऽपि ---वटेन न्यग्रोधेन सहितोऽपि, श्रवटसंकुलः---न वटैः न्यग्रोधवृक्षैः संकुलः व्याप्तः इति विरोधः तत्परिहारस्तु श्रवटैः कूपैः संकुलः इति । कारूपयुतोऽपि---कारूपेण कुत्सितरूपेण युतोऽपि युक्तोऽपि, श्रगतरूपशोभः---न गता न नष्टा रूपशोभा सौन्दर्यकान्तिः यस्य तादृशः इति विरोधः कारुभिः शिल्पिभिः उपयुतः सहितः श्रपि न गता रूपशोभा यस्य तादृशः इति तत्परिहारः ।

हिन्दी-श्रनुवाद---जो नीतिज्ञ पुरुषों से श्रधिष्ठित होने पर भी नीति-रहित है (विरोध । ईतियों=श्रवर्षण श्रादि छह उपद्रवों से रहित है---विरोध का परिहार), वटवृक्षों से युक्त होने पर भी वटवृक्षों से व्याप्त नहीं है (विरोध । श्रवटों=कूपों से व्याप्त है---विरोध का परिहार) और कुत्सित रूप से युक्त

होने पर भी रूप की शोभा से रहित नहीं है (विरोध । कारुओं=शिल्पियों से युक्त होने पर भी रूप की क्षोभा से रहित है--विरोध का परिहार)।

टिप्पणी--अनीति--(१)नीति से रहित, (२) ईतियों से रहित। ईतियाँ ये हैं--'अतिवृष्टिरनावृष्टिर्मूषकाः शलभाः शुकाः । प्रत्यासन्नाश्च राजानः षडेता ईतयः स्मृताः।।' अवट--कुआँ 'अवटः कूपविलयोः' इति हैमः । अगतरूपशोभः --जिसकी सौन्दर्यशोभा नहीं गई है अथवा अगों (पर्वतों) तथा तरुओं (वृक्षों) से जिसकी शोभा है। यहाँ के गद्य में श्लेषानुप्राणित विरोधाभास अलंकार है।

यत्र च गुरुव्यतिक्रमं नक्षत्रराशयः, मात्राकलहं लेखशालिकाः, मित्रोदयद्वेषमुलूकाः, अपत्यत्यागं कोकिलाः, बन्धुजीवविघातं ग्रीष्मदिवसाः कुर्वन्ति, न जनाः।

संस्कृत-व्याख्या--यत्र च--यस्मिन् आर्यावर्ते, नक्षत्रराशयः--नक्षत्राणि ताराः तेषां राशयः समूहाः मेषादयश्च, गुरुव्यतिक्रमं--गुरोः बृहस्पतेः व्यतिक्रमम् उल्लङ्घनं, कुर्वन्ति--विदधति, न जनाः (गुरुव्यतिक्रमम्--आचार्योल्लङ्घनं कुर्वन्ति), लेखशालिकाः--लेखनकर्मणि संलग्नाः (वनिताः), मात्राकलहं --मात्रासु वर्णगतह्रस्वदीर्घादिषु कलहं विवादं, कुर्वन्ति, न जनाः (मात्रा--जनन्या सह कलहं कुर्वन्ति), उलूकाः--कौशिकाः, मित्रोदयद्वेषं--सूर्योदयविरोधं, कुर्वन्ति, न जनाः (मित्रोदयद्वेषं--मित्राणाम् उदये अभ्युदये द्वेषं कुर्वन्ति),कोकिलाः --पिकाः, अपत्यत्यागं--सन्ततिपरित्यागं, कुर्वन्ति, न जनाः, ग्रीष्मदिवसाः--ग्रीष्मसमयस्य दिवसाः दिनानि, बन्धुजीवविघातं--बन्धुजीवाख्यपुष्पविनाशं, कुर्वन्ति, न जनाः (बन्धुजीवविघातं--बन्धूनां बान्धवानां जीवस्य जीवनस्य विघातं विनाशं कुर्वन्ति)।

हिन्दी अनुवाद--जहाँ (आर्यावर्त में) नक्षत्र-समूह या नक्षत्र और (मेष आदि) राशि ही गुरु (बृहस्पति) का उल्लंघन करते हैं न कि प्रजायें (गुरु=आचार्य का उल्लंघन करती हैं), लेखिकायें ही (ह्रस्व, दीर्घ आदि) मात्रा के विषय में विवाद करती हैं न कि प्रजायें (माता के साथ कलह=विवाद करती हैं), उल्लू पक्षी ही सूर्योदय से द्वेष करते हैं न कि प्रजायें मित्र की उन्नति से द्वेष करती हैं), कोयलें ही सन्तान का त्याग करती हैं न कि प्रजायें और

गरमी के दिन ही बन्धुजीव पुष्पों का विनाश करती न कि प्रजायें (बन्धुओं के जीवन का विनाश करती हैं) ।

टिप्पणी—**आशयः**—समूह या मेष आदि बारह राशियाँ । 'राशिः मेषादि-पुञ्जयोः' इति मेदिनी । **अपत्यत्यागम्**—सन्तान का त्याग । प्रसिद्धि है कि कोयलें अपने अंडे को कौओं के घोंसले में रखकर चली जाती हैं और कौए उस अंडे से उत्पन्न बच्चे का पालन करते हैं । इसीलिए कोयल को परभृत कहते हैं—'कोकिलः परभृतः' । यहाँ के गद्य में श्लेषानुप्राणित परिसंख्या अलंकार है ।

किं बहुना ।

देशः पुण्यतमोद्देशः कस्यासौ न प्रियो भवेत् ।
युक्तोऽनुक्रोशसम्पन्नैर्यो जनैरिव योजनैः ॥२८॥

अन्वयः—अनुक्रोशसम्पन्नैः जनैः इव योजनैः युक्तः पुण्यतमोद्देशः असौ देशः कस्य प्रियः न भवेत् ॥२८॥

संस्कृत-व्याख्या—अनुक्रोशसम्पन्नैः—अनुक्रोशेन अनुकम्पया सम्पन्नाः युक्ताः तादृशैः, जनैः इव—मनुष्यैः इव, अनुक्रोशसम्पन्नैः—अनुक्रोशम् प्रतिक्रोशं सम्पन्नैः समृद्धिशालिभिः, योजनैः—चतुष्क्रोशीभिः, युक्तः—समन्वितः, पुण्यतमोद्देशः—पुण्यतमाः पवित्रतमाः उद्देशाः प्रान्ताः यस्य तादृशः, असौ देशः—आर्यावर्तः, कस्य—जनस्य, प्रियः—अभीष्टः न भवेत्—न जायेत ॥२८॥

हिन्दी अनुवाद—बहुत क्या, दयायुक्त मनुष्यों की तरह प्रत्येक कोस पर धन-धान्य-सम्पन्न योजनों से युक्त वह देश (आर्यावर्त) भला किसे प्रिय नहीं होगा ? (अर्थात् सभी को प्रिय है) ॥२८॥

टिप्पणी—(१) **अनुक्रोशसम्पन्नैः**—(१) दया से युक्त । (२) प्रति कोस पर समृद्धिशाली । (२) **योजनैः**—योजनों से । चार कोस का एक योजन होता है । 'योजनं परमात्मनि । चतुष्क्रोश्यां च योगे च' इति मेदिनी ।

इस श्लोक में उत्तरार्ध का वाक्यार्थ पूर्वार्ध के वाक्यार्थ के निष्पादन में हेतु है, अतः काव्यलिंग अलंकार है और उत्तरार्ध में श्लिष्टोपमा भी है । फिर 'देशः देशः, योजनैः योजनैः' इस यमकालंकार से पूर्वोक्त दोनों अलंकारों का संकर हो जाता है । इसमें अनुष्टुप् छन्द है ॥२८॥

निषधापुरीवर्णनम्

तस्य विषयस्य मध्ये निषधो नामास्ति जनपदः प्रथितः ।
तत्र पुरी पुरुषोत्तमनिवासयोग्यास्ति निषधेति ॥२९॥

अन्वय—तस्य विषयस्य मध्ये निषधः नाम प्रथितः जनपदः अस्ति। तत्र पुरुषोत्तमनिवासयोग्या निषधा इति पुरी अस्ति ॥२९॥

संस्कृत-व्याख्या--तस्य—आर्यावर्तस्य, विषयस्य--देशस्य, मध्ये--अन्तरे, निषधः नाम--निषधनामधेयः, प्रथितः--प्रसिद्धः, जनपदः--मण्डलम्, अस्ति--विद्यते । तत्र--जनपदे, पुरुषोत्तमनिवासयोग्या--पुरुषोत्तमानां पुंश्रेष्ठानां पुरुषोत्तमस्य श्रीविष्णोर्वा निवासयोग्या वासोचिता, निषधा इति पुरी--निषधेति नाम्नी नगरी, अस्ति--विद्यते ॥२९॥

हिन्दी अनुवाद—उस (आर्यावर्त) देश के बीच में निषध नामक प्रसिद्ध जनपद है । वहाँ श्रेष्ठ पुरुषों या श्रीविष्णु के निवासयोग्य निषधा नामक नगरी है ॥२९॥

टिप्पणी—(१) जनपद—मण्डल । जनः=लोकः पदं=वस्तु यत्र स जनपदः (ब० स०)। (२) पुरुषोत्तमनिवासयोग्या--उत्तम पुरुषों के निवास योग्य । पुरुषाणां पुरुषेषु वा उत्तमः (ष० त० वा स० त०), तेषां निवासः, तस्य योग्या (ष० त०) । पुरुषोत्तम=भगवान् विष्णु के निवासयोग्य अर्थात् वैकुण्ठ के समान है, यह भी ध्वनि निकलती है ।

इस श्लोक में सम अलंकार है और आर्या छन्द है । आर्या का लक्षण--'यस्याः पादे प्रथमे द्वादश मात्रास्तथा तृतीयेऽपि । अष्टादश द्वितीये चतुर्थके पञ्चदश सार्या॥'२९॥

जननीतिमुदितमनसा सततं सुस्वामिना कृतानन्दा ।
सा नगरी नगतनया गौरीव मनोहरा भाति ॥३०॥

अन्वय--जननीतिमुदितमनसा सुस्वामिना कृतानन्दा सा नगरी नगतनया मनोहरा गौरी इव सततम् भाति ॥३०॥

संस्कृत-व्याख्या—जननीतिमुदितमनसा—जनानां लोकानां नीत्या नयेन मुदितमनसा हृष्टचेतसा, सुस्वामिना—शोमननृपेण, कृतानन्दा—दत्तहर्षा, सा—प्रसिद्धा, नगरी—निषधापुरी, जननीतिमुदितमनसा—जननी माता इति हेतोः मुदितं प्रसन्नं मनः चित्तं यस्य तादृशेन, सुस्वामिना—सुष्ठु शोमनेन स्वामिना कार्तिकेयेन, कृतानन्दा—दत्तहर्षा, नगतनया—पर्वतपुत्री, मनोहरा—सुन्दरी, गौरी इव—पार्वतीव, सततं—निरन्तरं, माति—शोमते ॥३०॥

हिन्दी अनुवाद—लोगों की नीति से प्रसन्न मन वाले तथा अच्छे राजा से हर्षित वह नगरी (निषधा) जननी के कारण प्रसन्न चित्त वाले सुस्वामी (कार्तिकेय या सुन्दर स्वामी शिव) से हर्षित मनोहर पार्वती के समान सतत शोभित होती है ॥३०॥

टिप्पणी—(१) जननीति—(१) लोगों की नीति से, (२) माता के कारण। जननी+इति। (२) सुस्वामिना—सुन्दर स्वामी=कार्तिकेय। क्योंकि कार्तिकेय का एक नाम स्वामी मी है। अथवा अच्छे पति=शिव। इस श्लोक में श्लिष्ट उपमा अलंकार है और आर्या छन्द है ॥३०॥

यस्यामभ्रंलिहेन्द्रनीलशालशिखरसहस्रनिभृतांशुजालबालशाद्वलाङ्कुराग्रग्रासलालसाः स्खलन्तः खे खेदयन्ति मध्येदिनं सादिनं रविरथतुरङ्गमाः ।

संस्कृत-व्याख्या—यस्यां—निषधापुर्याम्, अभ्रंलिहेन्द्रनीलशिखरसहस्र०—अभ्रंलिहानि गगनचुम्बीनी इन्द्रनीलशालानां मरकतमणिरचितभवनानां यानि शिखरसहस्राणि अनेकशृङ्गाणि तेषां निभृतानि निश्चलानि अंशूनां किरणानां जालानि समूहाः एव बालशाद्वलाङ्कुराग्राणि बालानि नूतनानि यानि शाद्वलाङ्कुराग्राणि हरितस्थलशष्पप्रान्तास्तेषां ग्रासे कवले लालसा स्पृहा येषां तादृशाः, (अतएव) खे—आकाशे, स्खलन्तः—पतन्तः, रविरथतुरङ्गमाः—सूर्यस्यन्दनघोटकाः, मध्येदिनं—मध्याह्नकाले, सादिनं—रथिनं, खे—आकाशे, खेदयन्ति—खिन्नतां नयन्ति ।

हिन्दी अनुवाद—जिस (निषधापुरी) में गगनचुम्बी इन्द्रनीलमणि (पन्ने) के बने हुए भवनों की हजारों चोटियों से उद्भूत निश्चल किरण-समूह रूपी

नई घास के अंकुरों के अग्रभाग को खाने की लालसा वाले और (अतएव) आकाश में स्खलित (मार्गच्युत) होते हुए सूर्य-रथ के घोड़े मध्याह्न में रथारोही (सवार) को खिन्न कर देते हैं।

टिप्पणी--शाद्वल--नवतृणबहुल स्थल। अंकुर-- अंखुआ, डाभ। सादिनम्--रथी (सवार) को। यहाँ इन्द्रनीलकिरणों में शाद्वलांकुर का वर्णन होने से भ्रान्तिमान् अलंकार है।

यस्यां च स्फटिकमणिशिलानिबद्धभवनप्राङ्गणगतासु सञ्चरद् गृहिणीचरणालक्तकपदपंक्तिषु पतन्ति निर्मलसलिलाभ्यन्तरतरतरुणारुणकमलकाङ्क्षया मुग्धमधुपपटलानि।

संस्कृत-व्याख्या—यस्यां—निषधायां, च, स्फटिकमणि०—स्फटिकस्य सितोपलस्य मणयः तेषां शिलाः पाषाणाः ताभिः निबद्धानि जटिलानि यानि भवनानां प्रासादानां प्राङ्गणानि चत्वराणि तेषु गताः प्रतिबिम्बिताः तासु, सञ्चरद्गृहिणी०--संचरन्त्यः विहरन्त्यः या गृहिण्यः नार्यः तासां चरणयोः पादयोः यद् अलक्तकं लाक्षारसः तस्य पदपंक्तिषु चरणचिह्नेषु, निर्मलसलिलाभ्यन्तर०--निर्मलस्य स्वच्छस्य सलिलस्य जलस्य अभ्यन्तरे मध्ये तरन्ति प्लवमानानि यानि तरुणानि नूतनानि अरुणकमलानि रक्तारविन्दानि तेषां काङ्क्षया इच्छया, मुग्धमधुपपटलानि—मुग्धा मोहं प्राप्ताः ये मधुपाः भ्रमराः तेषां पटलानि समूहाः पतन्ति निपन्ति समागच्छन्तीत्यर्थः।

हिन्दी अनुवाद--जिस (निषधा) में स्फटिकमणि की चट्टानों से बने हुए भवनों के आँगन में पड़ने वाली, चलती-फिरती हुई महिलाओं के चरणों में लगे महावर की पद-पंक्तियों पर, निर्मल जल के भीतर तैरते हुए नये लाल-कमल की अभिलाषा से मुग्ध भ्रमरों के झुंड आकर गिरते हैं।

टिप्पणी--अलक्तक--आलता, महावर। यहाँ भाव यह है कि स्फटिकमणि की शिला पर जब गृहिणियाँ चलती हैं तो उनके चरणों में लगे महावर से बनी पदपंक्तियाँ फर्श पर पड़ जाती हैं, जिन्हें लाल कमल समझकर भौंरे टूट पड़ते हैं। यहाँ भी भ्रान्तिमान् अलंकार है।

यस्यां च विविधमणिनिर्मितवासभवनभव्यभित्तिषु स्वच्छासु स्वां छायामवलोकयन्त्यः कृतापरस्त्रीशङ्का कथमपि प्रत्यानीयन्ते प्रियैः प्रियतमाः ।

संस्कृत-व्याख्या—यस्यां—निषधायां, स्वच्छासु—निर्मलासु, विविधमणिनिर्मितवासभवनभव्यभित्तिषु—विविधमणिभिः अनेकरत्नैः निर्मिताः रचिताः वासभवनस्य निवासप्रासादस्य याः भव्याः रमणीयाः भित्तयः कुड्यानि तासु, स्वां—स्वकीयां, छायां—प्रतिबिम्बम्, अवलोकयन्त्यः—पश्यन्त्यः, कृतापरस्त्रीशङ्काः कृता विहिता अपरस्त्रीशङ्का इतररमणीसन्देहो याभिः तादृश्यः, प्रियतमाः—भार्याः, कथमपि—केनापि प्रकारेण महता कष्टेनेत्यर्थः, प्रत्यानीयन्ते—प्रसाद्यन्ते ।

हिन्दी-अनुवाद—जिस (निषधा) में अनेक रत्नों से निर्मित निवास-भवनों की सुन्दर एवं स्वच्छ दीवारों में अपनी छाया को देखकर दूसरी स्त्री की शंका करने वाली प्रियतमायें प्रियतमों द्वारा बड़ी कठिनाई से मनाई जाती हैं ।

टिप्पणी—कृतापरस्त्रीशङ्काः—जिन्हें दूसरी स्त्री का सन्देह हो गया है। भाव यह है कि नायिकायें अपनी छाँह को देखकर अन्य स्त्री की आशंका से मान करके बैठ जाती हैं, जिन्हें नायक बड़ी कठिनाई से मना पाते हैं। यहाँ भवनों के विविधमणिनिर्मितत्व का वर्णन होने से उदात्त अलंकार है।

यस्यां च दिव्यदेवकुलालङ्कृताः स्वर्गा इव मार्गाः, सततमपांसुवसनाः सागरा इव नागराः, समत्तवारणानि वनानीव भवनानि, सुरसेनान्विताः स्वर्गभूपा इव कूपाः, अधिकन्धरोद्देशमुद्भासयन्तो हारा इव विहाराः ।

संस्कृत-व्याख्या—यस्यां—निषधायां, च, दिव्यदेवकुलालङ्कृताः—दिव्यानां स्वर्गीयाणां देवानाममराणां कुलानि समूहाः तैः अलङ्कृताः विभूषिताः स्वर्गाः इव—सुरालया इव, दिव्यदेवकुलालङ्कृताः—दिव्यैः रमणीयैः देवकुलैः देवगृहैः अलङ्कृताः, मार्गाः—पन्थानः (सन्ति) । सततं—निरन्तरम्, अपांसुवसनाः—अपां जलानां सुवसनाः शोभना धाराः, सागराः—समुद्राः, इव, अपांसुवसनाः—अपांसु रेणुरहितं वसनं वस्त्रं येषां तादृशाः, नागराः—नगरवासिनः (सन्ति) । समत्तवारणानि—मत्तैः मदोन्मत्तैः वारणैः गजैः सहितानि, वनानि—अरण्यानि,

इव, समत्तवारणानि—मत्तवारणेन अपाश्रयेण वरण्डेन इत्यर्थः सहितानि, भवनानि—गृहाः (सन्ति)। सुरसेनान्विताः—सुराणां देवानां सेना सैन्यं तया अन्विताः—युक्ताः, स्वर्गभूपा इव—स्वर्गस्य नाकस्य भूपाः नृपाः इव, सुरसेनान्विताः—सुरसेन मधुरनिर्मलजलेन अन्विताः युक्ताः, कूपाः—उदपानानि (सन्ति)। अधिकन्धरोद्देशम्—अधिग्रीवाप्रदेशम्, उद्भासयन्तः—शोभयन्तः, हाराः—मुक्तावल्यः, इव, अधिकम् अतिशयेन धरायाः पृथिव्याः उद्देशम् प्रान्तम् उद्भासयन्तः शोभयन्तः, विहाराः—बौद्धमठाः (सन्ति)।

हिन्दी-अनुवाद—जिस (निषधा) में स्वर्गीय देव-वंशों से अलंकृत स्वर्ग-लोक के समान दिव्य देव-मन्दिरों से विभूषित मार्ग हैं, सतत जल के आधार समुद्रों के समान सतत धूलिरहित वस्त्र वाले नागरिक हैं, मतवाले हाथियों समेत वनों के समान बरामदों से युक्त भवन हैं, देव-सेना से युक्त स्वर्ग के राजाओं के समान सुन्दर जल से युक्त कुएँ हैं और ग्रीवा-प्रदेश को शोभायमान करते हुए मोतियों के हारों के समान भू-प्रदेश को शोभित करते हुए विहार (बौद्ध मठ) हैं।

टिप्पणी—अपांसुवसनाः—(१) जल के आधार, (२) धूलि-रहित वस्त्र वाले। वसति अस्मिन् इति वसनम् आधारः। वस्यते आच्छाद्यते अनेन इति वसनम् वस्त्रम्। समत्तवारणानि—(१) मतवाले हाथियों से युक्त, (२) बराण्डों (बरामदों) से युक्त। इस गद्य में श्लेषानुप्राणित उपमा अलंकार है।

यस्यां च बहुलक्षणाः सुधावन्तो दृश्यन्तेऽन्तःप्रचुराः प्रासादा बहिश्च वारणेन्द्राः, सुशोभितरङ्गाः समालोक्यन्तेऽन्तः संगीतशाला बहिश्च क्रीडाकमलदीर्घिकाः, बहुधान्यनिरुद्धां कथमप्यभिगम्यन्तेऽन्तः-पण्यस्त्रियो बहिश्च क्षेत्रभूमयः, नानाशुकविभूषणाः शोभन्तेऽन्तः सभा बहिश्च सहकारवनराजयः, ससौगन्धिकप्रसारा विराजन्तेऽन्तर्विपणयो बहिश्च सलिलाशयाः।

संस्कृत-व्याख्या—यस्यां—निषधायां, च, अन्तः—अभ्यन्तरे भागे, बहुलक्षणाः—बहुला बहवः क्षणाः भूमिकाः येषु तादृशाः, सुधावन्तः—सुधा चूर्णलेपः अस्ति येषां तादृशाः, प्रचुराः—प्रभूताः, प्रासादाः—राजभवनानि, दृश्यन्ते—अवलोक्यन्ते, बहिश्च—बाह्यभागे, बहुलक्षणाः—बहूनि अनेकानि लक्षणानि प्रशस्तचि-

ल्लानि येषां तादृशाः, सुधावन्तः--सुष्ठु गच्छन्तः, प्रचुराः--अनेके, वारणेन्द्राः--गज-राजाः, दृश्यन्ते । अन्तः--अभ्यन्तरे, सुशोभितरङ्गाः--सुशोभितः अलङ्कृतः रङ्गः अभिनयस्थानं यासु तादृश्यः, संगीतशालाः--संगीतभवनानि, समालोक्यन्ते, बहिश्च--बहिर्मार्गे च, सुशोभितरङ्गाः--सुशोभिनः तरङ्गाः ऊर्मयः यासु तादृश्यः, क्रीडाकमलदीर्घिकाः--क्रीडाकमलानां लीलारविन्दानां दीर्घिकाः वाप्यः, समालोक्यन्ते । अन्तः, बहुधान्यनिरुद्धाः--बहुधा बहुप्रकारेण अन्यनिरुद्धाः अन्यैः इतरैः धूर्तपुरुषैरित्यर्थः निरुद्धाः आक्रान्ताः व्याप्ता इत्यर्थः, पण्यस्त्रियः--वार-वनिताः, कथमपि--महता काठिन्येन, अभिगम्यन्ते--लभ्यन्ते, बहिश्च, बहुधान्य-निरुद्धाः--बहुभिः प्रचुरैः धान्यैः सस्यैः निरुद्धाः संबाधाः, क्षेत्रभूमयः--क्षेत्रस्य केदारस्य भूमयः धरित्र्यः, कथमपि, अभिगम्यन्ते । अन्तः, नानाशुकविविभूषणाः--नाना अनेके आशुकवयः सत्वरकविताकारिणः भूषणमलङ्कारो यासां तादृश्यः, सभाः--संसदः, शोभन्ते--राजन्ते, बहिश्च, नानाशुकविभूषणाः नाना अनेके शुकाः कीराः विभूषणं यासां तादृश्यः, सहकारवनराजयः--आम्रोद्यानपंक्तयः, शोभन्ते । अन्तः, ससौगन्धिकप्रसाराः--सौगन्धिकानां वणिजां प्रसारः विक्रेय-वस्तुभिः सहिताः, विपणयः--पण्यवीथिकाः, विराजन्ते--शोभन्ते, बहिश्च, ससौ-गन्धिकप्रसाराः--सौगन्धिकानां श्वेतकमलानां प्रसारेण विस्तारेण सहिताः, सलि-लाशयाः--तडागाः विराजन्ते ।

हिन्दी अनुवाद--जिस (निषधा) में भीतर बहुत-सी मंजिलों वाले तथा सफेदी (चूने) से युक्त बहुत-से भवन दिखाई पड़ते हैं और बाहर अनेक शुभ लक्षण वाले तथा सुन्दर दौड़ने वाले हाथी दिखाई पड़ते हैं। भीतर सुन्दर रंगमंच वाली संगीतशालायें दीख पड़ती हैं और बाहर सुन्दर तरंग वाली तथा कमलयुक्त क्रीडा करने की बावलियां दीख पड़ती हैं। 'भीतर बहुधा दूसरों से रोकी गई वारांगनायें किसी तरह (कठिनाई से) प्राप्त की जा सकती हैं और बाहर बहुत धान्य से व्याप्त क्षेत्र-भूमियों पर चलना दुष्कर है। भीतर अनेक आशुकवियों से सुशोभित सभायें हैं और बाहर आम्रवृक्षों के वनों की पंक्तियां हैं। भीतर सुगन्धित द्रव्यों के विक्रेताओं की विक्रेय वस्तुओं से युक्त दुकानें शोभित हो रही हैं और बाहर श्वेतकमलों के प्रसार से युक्त जलाशय शोभित हो रहे हैं।

टिप्पणी--प्रासाद--भवन, महल। प्रसीदति मनः अस्मिन् इति प्रासादः। प्र√सद्+घञ्। सौगन्धिक--(१) सुगन्धित द्रव्यविक्रेता, गंधी। श्वेतकमल। 'सौगन्धिकं तु कह्लारम्' इत्यमरः। यहाँ सभी वाक्यखंडों में श्लेषानुप्राणित तुल्ययोगिता अलंकार है।

किं बहुना।

भूमयो बहिरन्तश्च नानारामोपशोभिताः।
कुर्वन्ति सर्वदा यत्र विचित्रवयसां मुदम् ॥३१॥

अन्वय--यत्र बहिः नानारामोपशोभिताः भूमयः सर्वदा विचित्रवयसां मुदं कुर्वन्ति अन्तश्च नानारामोपशोभिताः भूमयः सर्वदा विचित्रवयसां मुदं कुर्वन्ति ॥३१॥

संस्कृत-व्याख्या--यत्र--निषधायां बहिः--बाह्यभागेषु, नानारामोपशोभिताः--नाना बहुभिः आरामैः उद्यानैः उपशोभिताः विभूषिताः, भूमयः--धरित्र्यः, सर्वदा--सदा, विचित्रवयसां--विचित्राणि अनेकविधानि यानि वयांसि पक्षिणः तेषां, मुदम्--आनन्दं, कुर्वन्ति--विदधति, अन्तश्च--अभ्यन्तरे च, नानारामोपशोभिताः--नानारामाभिः अनेकाभिः सुन्दरीभिः उपशोभिताः, भूमयः--भूमिकाः अट्टालिकाः, सर्वदा, विचित्रवयसां--रम्यायुषां यूनामिति यावत्, मुदं, कुर्वन्ति ॥३१॥

हिन्दी अनुवाद--बहुत क्या, जहाँ (निषधापुरी) में बाहर अनेक उद्यानों से सुशोभित भूमियाँ तरह-तरह के पक्षियों को सदा आनन्द देती हैं और भीतर अनेक रमणियों से सुशोभित अट्टालिकायें रमणीय आयु वाले तरुणों को सदा आनन्द देती हैं॥३१॥

टिप्पणी--इस श्लोक में श्लेषानुप्राणित तुल्ययोगिता अलंकार है और अनुष्टुप् छन्द है॥३१॥

यस्यां च भक्तभाजो देवतायतनेषु देवताः सन्निधाना दृश्यन्ते हट्टेषु वणिग्जनाः, अक्षरसावधानाः कविगोष्ठीषु कवयो विलोक्यन्ते द्यूतस्थानेषु द्यूतकाराः, कान्तारागप्रियाः करिणो राजद्वारेषु संचरन्ति वेश्याङ्गणेषु भुजङ्गाः।

संस्कृत-व्याख्या—यस्यां—निषधायां, च, देवतायतनेषु—देवमन्दिरेषु भक्तभाजः—भक्तान् स्वोपासकान् भजन्ते स्वशरणे गृह्णन्तीति तादृश्यः, देवताः—देवाः, सन्निधानाः—सन्निकृष्टाः, दृश्यन्ते—विलोक्यन्ते, हट्टेषु—विपणिषु, च, वणिग्जनाः—सार्थवाहाः, सन्निकृष्टाः, दृश्यन्ते। कविगोष्ठीषु—कवीनां काव्यकर्तॄणां गोष्ठीषु समासु, अक्षरसावधानाः—अक्षरेषु वर्णेषु सावधानाः दत्तध्यानाः, कवयः, विलोक्यन्ते, द्यूतस्थानेषु—द्यूतालयेषु, अक्षरसावधानाः—अक्षरसे द्यूतक्रीडायाम् अवधानं ध्यानं येषां तादृशाः, द्यूतकाराः—सभिकाः, विलोक्यन्ते। राजद्वारेषु—राज्ञां नृपाणां द्वारेषु प्रतिहारेषु, कान्तारागप्रियाः—कान्तारे वने अगाः सल्लक्यादिवृक्षाः प्रियाः इष्टाः येषां तादृशाः, करिणः—गजाः, संचरन्ति—इतस्ततो गच्छन्ति, वेश्याङ्गणेषु—वारांगनाजिरेषु, कान्तारागप्रियाः—कान्तानां रमणीनां रागः अनुरागः प्रियः येषां तादृशाः, भुजङ्गाः—कामुका जनाः, संचरन्ति।

हिन्दी-अनुवाद—जिस (निषधा) में देवालयो में भक्तों पर अनुग्रह करने वाले देवता संनिहित दिखाई पड़ते हैं और बाजारों में अन्न बेचने वाले वनिये लोग (संनिहित दिखाई पड़ते हैं)। कवि-गोष्ठियों में अक्षरों के प्रति सावधान कवि दिखाई पड़ते हैं और जुआघरों में द्यूतरस (पाशा फेंकने) में ध्यान लगाये जुआरी (दिखाई पड़ते हैं)। राजद्वारों पर वन-वृक्षों (सल्लकी आदि) के प्रेमी हाथी विचरण करते हैं और वेश्याओं के आंगनों में सुन्दरियों के अनुराग के प्रेमी कामुक लोग (विचरण) करते हैं।)

टिप्पणी—देवता—देव एव देवता देव+तल् (स्वार्थे)+टाप् स्त्रियाम्। देवता शब्द स्त्रीलिंग है। सन्निधानाः—समीपवर्ती। सन्निधानम् अस्ति एषाम् इति सन्निधानाः सन्निधान+अच् अर्श आदित्वात्। कान्तार—दुर्गम वन। कान्तम् ऋच्छतीति कान्तारम् कान्त√ऋ+अण्। 'कान्तारं दुर्गमं वनम्' इत्यमरः। अंगण—आंगन। 'अङ्गणं चत्वराजिरे' इत्यमरः। 'अंगन' और 'अङ्गण' दोनों शब्द प्रचलित हैं। यहाँ के गद्य में भी श्लेषानुप्राणित तुल्ययोगिता अलंकार है।

यस्यां च चतुरुदधिवेलाविराजितसकलधराचक्रचूडामणौ, मणिकर्मनिर्मितरम्यहर्म्यतया सुरपतिपुरीपराभवकारिण्याम्, अव्ययभावो व्याकरणोपसर्गेषु न धनिनां धनेषु, दानविच्छित्तिरुन्माद्यत्करिक-

पोलमण्डलेषु न त्यागिहृदयेषु, भोगभङ्गो भुजङ्गेषु न विलासिलोकेषु, कूटप्रयोगो गीततानविशेषेषु न व्यवहारेषु, वृत्तिकलहो वैयाकरणच्छात्रेषु स्वामिभृत्येषु, स्थानकभेदश्चित्रकेषु न सत्पुरुषेषु ।

संस्कृत-व्याख्या——चतुरुदधि०——चतुरुदधीनां चतुः समुद्राणां वेलाभिः तटैः विराजितं शोभितं यत् सकलधराचक्रं निखिलभूमण्डलं तस्य चूडामणौ शिरोरत्ने, मणिकर्मनिर्मितरम्यहर्म्यतया——मणिकर्मभिः रत्नक्रियाभिः निर्मितहर्म्यतया निर्मितानि रचितानि रम्याणि मनोहराणि हर्म्याणि प्रासादाः यस्यां तस्याः भावः तत्ता तया, सुरपतिपुरीपराभवकारिण्यां——सुरपतिपुर्याः इन्द्रनगर्याः पराभवं तिरस्कारं करोतीति तच्छीलायाम्, यस्यां——निषधायाम्, अव्ययभावः——अव्ययत्वं, व्याकरणोपसर्गेषु——व्याकरणस्य व्याकरणशास्त्रस्य उपसर्गेषु प्रादिषु (वर्तते), न, धनिनां——वैभवशालिनां, धनेषु——वित्तेषु, अव्ययभावः——वित्तराहित्यं (वर्तते), दानविच्छित्तिः——मदजलशोभा, उन्माद्यत्करिकपोलमण्डलेषु——उन्माद्यन्तः उन्मत्तीभवन्तः ये करिणः गजाः तेषां कपोलाः गण्डाः तेषां मण्डलानि समूहाः तेषु (वर्तते), न, त्यागिहृदयेषु——त्यागिनां दानशालिनां हृदयेषु चित्तेषु दानविच्छित्तिः——त्यागविच्छेदः (वर्तते) । भोगभङ्गः——फणामर्दनं, भुजङ्गेषु——सर्पेषु (वर्तते), न, विलासिलोकेषु——भोगिजनेषु, भोगभङ्गः——सुखभोगविरामः (वर्तते)। स्नेहक्षयः——तैलसमाप्तिः, रजनीविरामविरमत्प्रदीपपात्रेषु——रजनीविरामे निशासमाप्तौ विरमन्ति निर्वाणं प्राप्नुवन्ति यानि प्रदीपपात्राणि तेषु (वर्तते), न, प्रतिपन्नजनहृदयेषु——प्रतिपन्नानां विश्वस्तानां जनानां लोकानां हृदयेषु चित्तेषु, स्नेहक्षयः——प्रेमह्रासः (वर्तते) । कूटप्रयोगः——कूटनामकतानविशेषस्य प्रयोगः, गीततानविशेषेषु——गीतानां संगीतानां तानविशेषेषु लयभेदेषु (वर्तते), न, व्यवहारेषु——आचरणेषु,कूटप्रयोगः——छलप्रयोगः (वर्तते) । वृत्तिकलहः——सूत्रार्थविषये विवादः, वैयाकरणच्छात्रेषु——वैयाकरणाः व्याकरणाध्येतारः ये छात्राः विद्यार्थिनः तेषु (वर्तते), न, स्वामिभृत्येषु——स्वामिनः प्रभवः भृत्याः सेवकाः तेषु (वर्तते) । स्थानकभेदः——स्थितिभेदः, चित्रकेषु——चित्रेषु (वर्तते), न, सत्पुरुषेषु——सज्जनेषु, स्थानकभेदः——स्थानकस्य रक्षणीयनगरादेः भेदनं (वर्तते) ।

हिन्दी-अनुवाद——चारों समुद्रों के तटों से शोभित सम्पूर्ण भूमण्डल की चूडामणि तथा मणियों के कार्य द्वारा बनाये गये सुन्दर भवनों से युक्त होने

के कारण इन्द्रपुरी को तिरस्कृत करने वाली जिस (निषधानगरी) में अव्यय-भाव (अव्ययत्व) व्याकरण शास्त्र के उपसर्गों (प्र आदि) में पाया जाता है न कि धनी लोगों के धनों में अव्ययभाव=व्यय न किया जाना पाया जाता है। मदजल की शोभा मतवाले हाथियों के गंडस्थलों में है न कि त्यागी पुरुषों के हृदयों में दान का विच्छेद (अभाव) है। भोगभंग (फण का कुचला जाना) सांपों में होता है न कि विलासी लोगों में भोगों का नाश होता है। स्नेहक्षय (तेल का चुकना) रात्रि की समाप्ति पर बुझते हुए दीप-पात्रों में होता है न कि विश्वस्त जनों के हृदयों में स्नेहक्षय=प्रेम का नाश होता है, कूट का प्रयोग संगीत के लय विशेषों में होता है न कि व्यवहारों में कूट (छल) का प्रयोग होता है। वृत्ति (सूत्रार्थ) के विषय में विवाद व्याकरण पढ़ने वाले छात्रों में होता है न कि स्वामी और भृत्यों में वृत्ति (वेतन) के लिए झगड़ा होता है। स्थानक (स्थिति, 'पोज') का भेद चित्रों में होता है न कि सत्पुरुषों में स्थानों का नाश (तोड़फोड़) होता है।

टिप्पणी—उदधि—समुद्र। उदकानि धीयन्ते अस्मिन् इति उदधिः। **मणिकर्म**—रत्नों के काम या कारीगरी। हर्म्य—धनी लोगों का गृह। 'हर्म्यादि धनिनां वासः प्रासादो देवभूभुजाम्' इत्यमरः। सुरपतिपुरी—अमरावती। **स्थानकभेद**—(१) किसी को सीधा, किसी को तिरछा या ऊपर-नीचे बनाना। यहाँ नगरी में चूडामणित्व का आरोप होने से रूपक अलंकार है। आगे शाब्द श्लिष्ट तथा परिसंख्या अलंकार हैं।

किं बहुना—

त्रिदिवपुरसमृद्धिस्पर्धया भान्ति यस्यां
सुरसदनशिखाग्रेष्वाग्रहग्रन्थिनद्धाः।
नभसि पवनवेल्लत्पल्लवैरुल्लसद्भिः
परममिह वहन्त्यो वैभवं वैजयन्त्यः ॥३२॥

अन्वय—यस्यां त्रिदिवपुरसमृद्धिस्पर्धया सुरसदनशिखाग्रेषु आग्रहग्रन्थिनद्धाः, नभसि उल्लसद्भिः पवनवेल्लतपल्लवैः इह परमं वैभवं वहन्त्यः वैजयन्त्यः भान्ति ॥३२॥

संस्कृत-व्याख्या—यस्यां—निषधायां, त्रिदिवपुरसमृद्धिस्पर्धया—त्रिदिवपुरस्य अमरावत्याः समृद्ध्या ऐश्वर्येण या स्पर्धा प्रतियोगिता तया, सुरसदनशिखाग्रेषु—देवमन्दिरशिखरेषु, आग्रहग्रन्थिनद्धाः—आग्रहाः वेणवः तेषु ये ग्रन्थयः पर्वाणि तैः नद्धाः बद्धाः, नभसि—आकाशे, उल्लसद्भिः—शोभमानैः, पवनवेल्लत्पल्लवैः—पवनेन वायुना वेल्लन्तः चलन्तः ये पल्लवाः किसलयानि तैः, इह—अत्र, परमम्—उत्कृष्टं, वैभवम्—ऐश्वर्यं, वहन्त्यः—धारयन्त्यः, वैजयन्त्यः—पताकाः, भान्ति—शोभन्ते ॥३२॥

हिन्दी अनुवाद—बहुत क्या, जिस (निषधा) में अमरावती की समृद्धि से स्पर्धा के कारण देव-मन्दिरों के शिखरों पर बाँस की ग्रन्थियों में बँधी हुई, आकाश में शोभायमान तथा वायु से हिलाये गये वस्त्र-प्रान्तों से यहाँ परम वैभव को धारण करती हुई पताकायें शोभित हो रही हैं ।

टिप्पणी—त्रिदिव—स्वर्ग । तिसृषु अपि अवस्थासु, त्रयो ब्रह्मविष्णुमहेश्वरा वा दीव्यन्ति यत्र स त्रिदिवः, यद्वा ब्राह्मवैष्णवरौद्रभेदेन सात्त्विकराजसतामसभेदेन वा त्रिविधो दीव्यति व्यवहरति प्रकाशते वा इति त्रिदिवः । इस श्लोक में उत्प्रेक्षा अलंकार है और मालिनी छन्द है । मालिनी का लक्षण—'ननमयययुतेयं मालिनी भोगिलोकैः' ॥३२॥

अपि च,

> चार्वी सदा सदाचारसज्जसज्जनसेविता ।
> नगरी न गरीयस्या सम्पदा सा विवर्जिता ॥३३॥

अन्वय—चार्वी सदा सदाचारसज्जसज्जनसेविता सा नगरी गरीयस्या सम्पदा विवर्जिता न ॥३३॥

संस्कृत-व्याख्या—चार्वी—मनोहरा, सदा—सर्वदा, सदाचारसज्जसज्जनसेविता—सदाचारे शुभाचरणे सज्जाः सन्नद्धाः ये सज्जनाः सत्पुरुषाः तैः सेविता आश्रिता, सा—प्रसिद्धा, नगरी—निषधा, गरीयस्या—महीयस्या, सम्पदा—ऐश्वर्येण, विवर्जिता—रहिता, न—नास्ति ॥३३॥

हिन्दी अनुवाद—और भी, सदा सदाचार पालन करने में संलग्न सज्जनों से सेवित वह (निषधा) नगरी विपुल सम्पदा से रहित नहीं है ॥३३॥

टिप्पणी--इस श्लोक में 'सदा--सदा, सज्ज--सज्ज, नगरी--नगरी' इन तीन यमकों की संसृष्टि है और अनुष्टुप् छन्द है ॥३३॥

अथ नलवर्णनम्

तस्यामासीन्निजभुजयुगलबलविदलितसकलवैरिवृन्दसुन्दरीनेत्रनीलोत्पलगलद्बहलवाष्पपूरप्लवमानप्रतापराजहंसः, सकलजलनिधिवेलावननिखातकीर्तिस्तम्भभूषितभुवनवलयः, विश्वम्भराभोग इव बहुधारणक्षमः, प्रासाद इव नवसुधाहारी, रविरिवानेकधामाश्रयः, दनुजलोक इव सदानवः स्त्रीजनस्य, वसिष्ठ इव विश्वामित्रत्रासजननः, जनमेजय इव परीक्षितनयः, परशुराम इव परशुभासितः, राघव इवालघुकोदण्डभङ्गरञ्जितजनकः, सुमेरुरिव जातरूपसम्पत्तिः, तुहिनाचल इव पुण्यभागीरथीसहितः, चिन्तामणिः प्रणयिनाम्, अग्रणीः सांग्रामिकाणाम्, उपाध्यायोऽध्ययनविदाम्, आदर्शो दर्शनानाम्, आचार्यः शौर्यशालिनाम्, उपदेशकः शस्त्रशास्त्रस्य, परिवृढो दृढप्रहारिणाम्, अग्रगण्यः पुण्यकारिणाम्, अपश्चिमो विपश्चिताम्, अपाश्चात्यस्त्यागवताम्, अचरमश्चातुर्याचार्याणाम्, अपर्यन्तभूभाराधारस्तम्भभूतभुजकाण्डकीलितशालभञ्जिकायमानविजयश्रीः, श्रीवीरसेनसूनुः, समस्तजगत्प्रासादशिरःशेखरीभूतकान्तकीर्तिध्वजो राजा राज्यलक्ष्मीकरेणुकाचापलसंयमनशृङ्खलः, खलवृन्दकन्दलदावानलो नलो नाम ।

संस्कृत-व्याख्या—तस्यां--निषधायां, निजभुज०—निजयोः स्वीययोः भुजयोः बाह्वोः युगलं युग्मं तस्य बलेन शक्त्या विदलितानि विदारितानि सकलानि समस्तानि यानि वैरिवृन्दानि शत्रुसमूहाः तेषां याः सुन्दर्यः तासां नेत्रनीलोत्पलेभ्यः नेत्राणि नयनानि एव नीलोत्पलानि नीलकमलानि तेभ्यः गलति स्रवति बहलवाष्पपूरे प्रचुराश्रुसमूहे प्लवमानः सन्तरन् प्रतापः प्रभावः एव राजहंसः कलहंसः यस्य तादृशः, सकलजलनिधि०—सकलाः निखिलाः जलनिधयः सागराः तेषां वेलावनेषु तटारण्येषु निखाताः स्थापिताः ये कीर्तिस्तम्भाः यशःस्थूणाः तैः भूषितम् अलंकृतं भुवनमेव वलयं येन तादृशः, विश्वम्भराभोग इव—पृथिव्या विस्तार इव, बहुधारणक्षमः—बहुधा अनेकशः रणे युद्धे क्षमः

समर्थः (पक्षे बहूनाम् अनेकवस्तूनां धारणे वहने क्षमः), प्रासाद इव––राजभवनमिव, न वसुधाहारी––वसुधां कस्यापि भूमिं हरति आच्छिनत्तीति तादृशो न (पक्षे नवसुधाहारी––नवया नूतनया सुधया श्वेतलेपनेन हारी रम्यः), रविरिव––सूर्य इव, अनेकधामाश्रयः––अनेकधा सप्ताङ्गत्वेन बहुधा मायाः लक्ष्म्याः आश्रयः स्थानम् (पक्षे अनेकस्य बहोः धाम्नः तेजसः आश्रयः स्थानम्), दनुजलोक इव––दैत्यवर्ग इव, स्त्रीजनस्य––रमणीलोकस्य, सदा––सर्वदा, नवः––नूतनः (पक्षे सदानवः––दानवैः राक्षसैः सहितः), वसिष्ठ इव––मैत्रावरुणिरिव, विश्वामित्रत्रासजननः––विश्वेषां सर्वेषाम् अमित्राणां शत्रूणां त्रासजननः भयोत्पादकः (पक्षे विश्वामित्रस्य कौशिकस्य मुनेः त्रासजननः), जनमेजय इव––तन्नामा नृपतिरिव, परीक्षितनयः––परीक्षितः समीक्षितः नयः नीतिः येनः तादृशः (पक्षे परीक्षितः अभिमन्युपुत्रस्य तनयः पुत्रः), परशुराम इव––जामदग्न्य इव, परशुभासितः––परेषाम् अन्येषां शुभे कल्याणे आसितः संलग्नः, (पक्षे परशुभासितः ––परशुना कुठारेण भासितः शोभितः), राघव इव––राम इव, अलघुकोदण्डभङ्गरञ्जितजनकः––अलघुकः गौरवार्हः दण्डभङ्गेन दण्डमुक्त्या रञ्जिता आनन्दिता जना येन तादृशः (पक्षे अलघुकोदण्ड०––अलघोर्विशालस्य कोदण्डस्य धनुषः भङ्गेन त्रोटनेन रञ्जितः आनन्दितः जनकः मैथिलः येन तादृशः), सुमेरुरिव––सुमेरुपर्वत इव, जातरूपसम्पत्तिः––जाता उत्पन्ना रूपसम्पत्तिः सौन्दर्यसम्पदा यस्य तादृशः (पक्षे जातरूपं सुवर्णमेव सम्पत्तिः यस्य तादृशः), तुहिनाचल इव––हिमालय इव, पुण्यभागीरथीसहितः––पुण्यं भजति तच्छीलः रथी रथवान् हितैः हितेच्छुभिः सहितः (पक्षे पुण्यभागीरथी पवित्रजाह्नवीतया-समेतः), प्रणयिनां––याचकानां, चिन्तामणिः––मनोवाञ्छितफलदाता, सांग्रामिकाणां––योद्धृणाम्, अग्रणीः––अग्रेसरः, अध्ययनविदाम्––अध्येतृणाम्, उपाध्यायः––अध्यापकः, दर्शनानां––दर्शनशास्त्राणाम्, आदर्शः––दर्पणः, शौर्यशालिनाम्––पराक्रमवताम्, आचार्यः––गुरुः, शस्त्रशास्त्रस्य––धनुर्वेदस्य, उपदेशकः ––शिक्षकः, दृढप्रहारिणां––दृढं प्रहर्तुं शीलं येषां ते दृढप्रहारिणस्तेषां, परिवृढः–– ––प्रभुः, पुण्यकारिणाम्––पुण्यात्मनाम्, अग्रगण्यः––धुरिकीर्तनीयः, विपश्चितां–– विदुषाम्, अपश्चिमः––प्रथमः, त्यागवतां––दानिनाम् अपाश्चात्यः––पूर्वः, चातुर्याचार्याणां––परमचतुराणाम्, अचरमः––प्रथमः, अपर्यन्तभूभाराधार०–– अपर्यन्तः असीमः यः भूभारः पृथ्वीभरः तस्य आधारः आश्रयः तस्य स्तम्भभूतं

स्थूणालक्षणं च तत् भुजकाण्डम् बाहुदण्डं तस्मिन् कीलिता बद्धा शालभञ्जिका काष्ठादिनिर्मितपुत्तलिका इव आचरन्ती विजयश्री: जयलक्ष्मी: यस्य तादृश:, श्रीवीरसेनसूनु:—श्रीवीरसेनभूपालस्य पुत्र:, समस्तजगत्प्रसाद०—समस्तं समग्रं जगत् संसार: एव प्रासाद: राजभवनं तस्य शिर: शेखरीभूत: शिरोभूषणायमान: कान्त: रम्य: कीर्तिध्वज: यशोवैजयन्ती यस्य तादृश:, राज्यलक्ष्मीकरेणुकाचापल० —राज्यलक्ष्मी: आधिपत्यश्री: एव करेणुका हस्तिनी तस्या: चापलं चाञ्चल्यं तस्य संयमने नियन्त्रणे शृङ्खल: निगड, खलवृन्दकन्दलदावानल:—खलवृन्दानि दुष्टसमूहा: एव कन्दला: नवाङ्कुरा: तेषां दावानल: वनवह्नि:, एवंभूत: नल: नाम—नलाभिधेय:, राजा—नृप:, आसीत्।

हिन्दी अनुवाद—जिस (निषधा नगरी) में, अपनी दोनों भुजाओं के बल से विनष्ट किये गये समस्त शत्रु-समूह की सुन्दरियों के नेत्र रूपी नीलकमलों से निकलते हुए प्रचुर अश्रु-प्रवाह में तैरते हुए प्रताप रूपी राजहंस वाला; सारे समुद्र-तटों के वनों में गाड़े गये कीर्तिस्तम्भों से भुवन-मण्डल को अलंकृत करने वाला; बहुतों को धारण करने में समर्थ पृथ्वी के विस्तार के समान अनेक प्रकार के युद्धों में समर्थ; नये चूने (की पुताई) से मनोहर महल के समान अवसुधाहारी=किसी की भूमि न छीनने वाला; अनेक तेजों के आश्रय सूर्य के समान अनेक प्रकार से लक्ष्मी का आश्रय; दानवों समेत दैत्यलोक के समान स्त्री-जनों के लिए सदा नवीन; विश्वामित्र को त्रस्त करने वाले वसिष्ठ के समान सकल शत्रुओं को त्रस्त करने वाला; परीक्षित के पुत्र जनमेजय के समान परीक्षित (जांची हुई) नीति वाला; परशु (फरसे) से शोभित परशुराम के समान दूसरे के शुभ में आसीन (अर्थात् सबका कल्याण करने वाला); विशाल धनुष को तोड़कर जनक को प्रसन्न करने वाले राम के समान महान् तथा दण्ड-मुक्ति के द्वारा लोगों का अनुरञ्जन करने वाला; सुवर्ण-सम्पदा वाले सुमेरुपर्वत के समान रूप-सम्पत्ति से युक्त; पवित्र गंगा से युक्त हिमालयपर्वत के समान पुण्यभागी, महारथी तथा हित सहित (परोपकारी); याचकों या स्नेही जनों का चिन्तामणि (अर्थात् चिन्तामणि के समान अभिलाषा-पूरक); योद्धाओं का अग्रणी; शिक्षाविदों का उपाध्याय (गुरु); दर्शनशास्त्रों का आदर्श (दर्पण); पराक्रमशालियों का आचार्य; धनुर्वेद का उपदेशक; दृढ़ता

से प्रहार करने वालों का प्रभु; पुण्य करने वालों में अग्रणी; विद्वानों में प्रथम; त्यागियों में सबसे आगे; चतुरता के आचार्यों में सबसे पहला; अपरिमित भू-भार के आधारस्तम्भभूत (अपने) भुजदण्ड पर कील से जड़ी हुई पुतली के समान विजयश्री वाला; श्रीवीरसेन का पुत्र; सम्पूर्ण जगत् रूपी राजभवन के शिरोभूषणरूप रमणीय यशः पताका वाला; राज्यलक्ष्मी रूपी हथिनी की चंचलता को रोकने में शृंखला (जंजीर के समान); तथा दुष्ट-समूहरूपी नवांकुरों के लिए दावाग्नि (के समान) नल नाम का राजा था।

टिप्पणी––**निजभुजयुगल . . ...राजहंसः**––में परम्परितरूपक अलंकार है। **भुवनवलयः**––यहाँ 'भुवनमेव वलयम्' इस रूपक में तथा 'भुवनं वलयम् इव' इस उपमा में साधक-बाधक का अभाव होने से सन्देहसंकर अलंकार है। **विश्वम्भरा.....पुण्यभागीरथीसहितः**––यहाँ श्लेषानुप्राणित उपमा अलंकार है। **विश्वामित्रत्रासजननः**––विश्वामित्र के लिए भय उत्पन्न करने वाले। रामायण (बा० का० स० ५५,५६) के अनुसार जब विश्वामित्र राजा थे तब एक बार वसिष्ठ ऋषि के आश्रम में गये थे। वहाँ कामधेनु की शक्ति से ऋषि ने राजा का अभूतपूर्व सत्कार किया। राजा ने ऋषि से कामधेनु माँगी। ऋषि के न देने पर राजा ने बलप्रयोग करना चाहा, किन्तु कामधेनु की शक्ति से उसको मुंह की खानी पड़ी। तब विश्वामित्र ने तपस्या से शिव को प्रसन्न करके दिव्य अस्त्र प्राप्त किये। किन्तु वसिष्ठ के ब्रह्मदण्ड से सामने विश्वामित्र की एक भी न चली और मन में त्रास उत्पन्न हुआ। **परिवृढ**—प्रभु। परि√वृह्+क्त 'प्रभौ परिवृढः' इति सूत्रेण निपातनात् सिद्धिः। **चिन्तामणिः**—यहाँ से रूपकानुप्राणित उल्लेख अलंकार है। **शालभञ्जिकायमान**––में व्यङ्गता उपमा है। **समस्त०**—यहाँ से परम्परितरूपक अलंकार है।

यस्येन्दुकुन्दकुमुदकान्तयः सकललोककर्णप्रियातिथयो गुणाः सततमेकब्रह्माण्डसंपुटकसंकीर्णनिवासव्यसनविषादिनः पुनरनेकब्रह्माण्डकोटिघटनामभ्यर्थयमाना इव भगवतो विश्वसृजः कमलसंभवस्य कर्णलग्नाः स्वर्गलोकमधिवसन्ति स्म।

संस्कृत-व्याख्या—यस्य—नलस्य, इन्दुकुन्दकुमुदकान्तयः––इन्दुः चन्द्रमाः कुन्दः माध्यकुसुमं कुमुदं कैरवं तद्वत् कान्तिः ओज्ज्वल्यं येषां तादृशाः, सकललोककर्ण-

प्रियातिथयः—सकलाः समस्ताः लोकाः जनाः तेषां कर्णाः श्रोत्राणि तेषां प्रियाः स्निग्धाः अतिथयः अभ्यागताः, गुणाः—शौर्यदयादाक्षिण्यादयः, सततं—निरन्तरम्, एकब्रह्माण्डसंपुटक०—एकस्मिन् ब्रह्माण्डसंपुटके भूमण्डलपिटके संकीर्णः संकुलः निवासः स्थितिरेव व्यसनं विपत् तेन विषादिनः निर्विण्णाः (सन्तः), पुनः—भूयः, अनेकब्रह्माण्डकोटिघटनाम्—अनेकाः बह्व्यः ब्रह्माण्डकोटयः जगत्कोटयः तासां घटनां रचनाम्, अभ्यर्थयमानाः—प्रार्थयमानाः, इव—यथा, भगवतः—माहात्म्यवतः, विश्वसृजः जगत्स्रष्टुः, कमलसंभवस्य—कमलयोनेर्ब्रह्मणः, कर्णलग्नाः—श्रोत्रसंसक्ताः, स्वर्गलोकं—सुरालयम्, अधिवसन्ति स्म—आश्रयन्ति स्म।

हिन्दी अनुवाद—जिस (राजा नल) के, चन्द्रमा, कुन्दपुष्प तथा कुमुदपुष्प की-सी (उज्ज्वल) कान्ति वाले और सभी लोगों के कानों के प्रिय अतिथि रूप गुण सतत एक ब्रह्माण्ड रूपी पेटी में संकीर्ण निवास की विपत्ति से दुःखी होकर मानों अनेक करोड़ ब्रह्माण्ड की रचना की प्रार्थना करते हुए भगवान् विश्वस्रष्टा ब्रह्मा के कर्णलग्न होकर स्वर्गलोक में रहते थे।

टिप्पणी—अतिथि—अभ्यागत अर्थात् सभी के कानों में पहुँचे हुए। 'प्राघुणस्त्वतिथिर्द्वयोः' इति त्रिकाण्डशेषः। सम्पुटक—पेटी, डिब्बा। 'समुद्गकः सम्पुटकः' रत्यमरः। यहाँ के गद्य में अतिशयोक्ति तथा हेतूत्प्रेक्षा अलंकार हैं।

यस्मिंश्च राजनि जनितजनानन्दे नन्दयति मेदिनीम्, गीतेषु जातिसंकराः, तालेषु नानालयभङ्गाः, नृत्येषु विषमकरणप्रयोगाः, वाद्येषु दण्डकरप्रहाराः, पुण्यकर्मारम्भेषु प्रबन्धाः, सारिद्यूतेषु पाशप्रयोगाः, पुष्पितकेतकीषु हस्तच्छेदाः, न्यग्रोधेषु पादकल्पनाः, कञ्चुकमण्डनेषु नेत्रविकर्तनानि आसन्, न प्रजासु।

संस्कृत-व्याख्या—जनितजनानन्दे—जनितः उत्पादितः जनानां लोकानाम् आनन्दः हर्षः येन तादृशे, यस्मिन्, राजनि—नृपे, मेदिनीं—पृथ्वीं, नन्दयति—आह्लादयति (सति), गीतेषु—गानेषु, जातिसंकराः—जातीनां नन्दयन्तीप्रभृतीनामष्टादशानां संकराः मिश्रप्रतीतयः, आसन्, न, प्रजासु—जनेषु, जातिसंकराः—वर्णसंकराः आसन्। तालेषु—तालवादनेषु, नानालयभङ्गाः—नानालयानां

द्रुतमध्यविलम्बितलक्षणानामनेकलयानां भङ्गाः तरङ्गाः, न, प्रजासु, नानालय-भङ्गाः—नाना आलयानाम् अनेकगृहाणाम् भङ्गाः चौरादिभिः क्रियमाणाः सन्धिच्छेदाः। नृत्येषु--नर्तनेषु, विषमकरणप्रयोगाः--विशमाणां वक्रीकृतानां करणानां हस्तपादाद्यङ्गानाम् अथवा तलपुष्पपटादीनामष्टोत्तरशतसंख्यानाम् प्रयोगाः प्रयुक्तयः, न, प्रजासु, विषमकरणप्रयोगाः--विषमकाणां भयंकराणां रणानां युद्धानां प्रयोगाः। वाद्येषु--डिण्डिमादिषु, दण्डकरप्रहाराः—दण्डैः कोणैः करैः हस्तैः प्रहाराः ताडनानि, आसन्, न, प्रजासु, दण्डकरप्रहाराः—दण्डैः शारीरिकार्थिकदण्डैः करैः राजदेयांशैः प्रहाराः पीडनानि, आसन्, प्रबन्धाः—सातत्यानि, पुण्यकर्मारम्भेषु--पुण्यजनककार्यारम्भेषु, आसन्, न, प्रजासु, प्रबन्धाः—प्रकृष्टबन्धनानि, आसन्। पाशप्रयोगाः--पाशक-प्रयुक्तयः, सारिद्यूतेषु—अक्षक्रीडासु, आसन्, न, प्रजासु, पाशप्रयोगाः—पाशस्य शरीरे रज्जुबन्धनस्य प्रयोगाः व्यापाराः, आसन्। हस्तच्छेदाः--शाखाकर्तनानि, पुष्पितकेतकीषु—कुसुमितकेतकीलतासु, आसन्, न, प्रजासु, हस्तच्छेदाः--पाणिकर्तनानि, आसन्। पादकल्पनाः—पादानां मूलानां कल्पनाः रचनाः, न्यग्रोधेषु--वटवृक्षेषु, आसन्, न, प्रजासु, पादकल्पनाः—चरणकर्तनानि, आसन्। नेत्रविकर्तनानि—नेत्राणां क्षौमवस्त्रशेषाणां विकर्तनानि शरीरप्रमाणानुसारं विच्छेदनानि नेत्राकारच्छिद्ररचना वा, कञ्चुकमण्डनेषु--कञ्चुकभूषासु, आसन्, न, प्रजासु, नेत्रविकर्तनानि—नेत्रभङ्गाः, आसन्।

हिन्दी अनुवाद—लोगों को आनन्द देने वाले जिस राजा (नल) के (द्वारा) पृथ्वी को आनन्दित करने पर गीतों में जातिसंकर (जातियों के मिश्रण) पाये जाते थे न कि प्रजाओं में वर्णसंकर होते थे। तालों में अनेक प्रकार के लय-भंग (स्वरों के उतार-चढ़ाव) होतें थे न कि प्रजाओं में अनेक गृहों के विनाश होते थे। नृत्यों में विषम करणों (टेढ़े किये गये हाथ-पैर आदि अंगों अथवा नृत्यशास्त्रप्रसिद्ध तल, पुष्प, पट आदि १०८ करणों) के प्रयोग होते थे, न कि प्रजाओं में भयंकर युद्ध के प्रयोग होते थे। वाद्यों में डंडों तथा हाथों से प्रहार किये जाते थे न कि प्रजाओं में दण्ड तथा कर (लगान) द्वारा उत्पीडन होते थे। प्रबन्ध पुण्यकार्यों के आरंभों में ही होते थे (अर्थात् यज्ञादि कार्य आरंभ करने पर ही प्रबन्ध (इन्तजाम) किये जाते थे) न कि प्रजाओं में कड़े

बन्धन (बेड़ी, शूली आदि के प्रयोग) होते थे। पासों के प्रयोग द्यूतक्रीडाओं में ही होते थे न कि प्रजाओं में फाँसी के प्रयोग होते थे। हस्त (शाखा) के छेदन खिले हुए केवड़ों में ही होते थे न कि प्रजाओं में हाथों के छेदन होते थे (अर्थात् प्रजाओं के हाथ नहीं काटे जाते थे)। पादों (मूलों) के प्रादुर्भाव वटवृक्षों में ही होते थे न कि प्रजाओं में पैरों के छेदन होते थे। नेत्र नामक रेशमी वस्त्र के कर्तन या नेत्राकार काज कञ्चुकों (चोली, अंगरखे आदि) के सजाने में होते थे न कि प्रजाओं में नेत्रों के कर्तन होते थे (आंखें नहीं फोड़ी जाती थीं।)

टिप्पणी--सारि--पासा। हस्त--(१) शाखा, (२) हाथ। न्यग्रोध--वटवृक्ष। पाद--(१) जड़, (२) पैर। कल्पना--(१) रचना, (२) काटना। नेत्र--(१) रेशमीवस्त्र या नेत्राकार छिद्ररचना (काज), २ आंख। यहाँ सब जगह श्लेषानुप्राणित शाब्द परिसंख्या अलंकार है।

यश्च कोऽप्यन्यादृश एव लोकपालः। तथाहि, अपूर्वो विबुधपतिः, अदण्डकरो धर्मराजः, अजघन्यः प्रचेताः, अनुत्तरो धनदः।

संस्कृत-व्याख्या--यश्च--राजा नलः, कोऽपि अन्यादृश एव--कश्चन विलक्षण एव, लोकपालः--जगत्पालकः (पक्षे प्रजापालकः)। तथा हि, अपूर्वो विबुधपतिः--पूर्वस्यां दिशि न स्थितोऽपि विबुधानां देवानां पतिः इन्द्रः (इति विलक्षणत्वम् इन्द्रस्य पूर्वदिक्स्थितत्वात्, पक्षे अपूर्वः--विलक्षणः, विबुधपतिः--विबुधानां विदुषां पतिः), अदण्डकरः धर्मराजः--न विद्यते दण्डः यष्टिः करे हस्ते यस्य तादृशोऽपि धर्मराजः यमराजः (इति विलक्षणत्वं यमस्य दण्डपाणित्वात्, पक्षे अदण्डकरः--नास्ति दण्डः वधादिः करः राजग्राह्योंऽशः यस्य तादृशः, धर्मराजः--धर्मप्रधानो राजा), अजघन्यः प्रचेताः--अजघन्योऽपश्चिमोऽपि प्रचेताः वरुणः (इति विलक्षणत्वं वरुणस्य पश्चिमदिगधीशत्वात्, पक्षे अजघन्यः--अकुत्सितः, प्रचेताः--प्रकृष्टं चेतो यस्य तादृशः महामना इति यावत्), अनुत्तरो धनदः--उत्तरस्यां दिशि न स्थितोऽपि धनदः कुबेरः (इति विलक्षणत्वं कुबेरस्य उत्तरदिग्वर्तित्वात् पक्षे अनुत्तरः--नास्ति उत्तरः उत्कृष्टतरः यस्मात् तादृशः, धनदः--धनप्रदाता)।

हिन्दी अनुवाद--जो (राजा नल) कोई भिन्न प्रकार का (विलक्षण ही) लोकपाल (जगत्पालक) था। क्योंकि--पूर्व दिशा में न रहते हुए भी इन्द्र था (वस्तुतः--लोकोत्तर विद्वत्पति था)। दण्डहस्त न होते हुए भी यम था (वस्तुतः--दण्ड (वध आदि का दण्ड) तथा (अन्य राजा को) कर न देने वाला धर्मप्रधान राजा था)। पश्चिम दिशा में न रहते हुए भी वरुण था (वस्तुतः--अकुत्सित एवं प्रकृष्ट चित्त वाला था)। उत्तर दिशा में न रहते हुए भी कुबेर था (वस्तुतः--उत्कृष्ट धनदाता था)।

टिप्पणी--अन्यादृश एव--विलक्षण ही। नल में विलक्षणता यह थी कि पूर्व आदि दिशाओं में न रहते हुए भी वह इन्द्र आदि था तथा हाथ में दण्ड न रखते हुए धर्मराज था। इन्द्र आदि पूर्व आदि दिशाओं के अधिपति माने जाते हैं, इसलिए उनका वहाँ रहना आवश्यक है, इसी तरह यमराज का दण्डपाणित्व पुराण आदि में प्रसिद्ध हैं। यहाँ नल में इन्द्र आदि का आरोप होने से रूपक अलंकार है। किन्तु कुवलयानन्द के मत से सर्वत्र न्यूनाभेद रूपक है, क्योंकि नल का पूर्व आदि दिशाओं में निवासाभाव प्रतिपादित हुआ हैं। श्लेष तो स्पष्ट ही है।

येन प्रचण्डदोर्दण्डमण्डलीविश्रान्तविजयश्रिया लवणोत्पलदलायमानमानिनीमानलुण्टाकलोचनेन पृथ्वी प्रिया च कामरूपधारिणी सातेन भुक्ता। यस्याः सकलजनमनोहारिविशेषकं पृथुललाटमण्डलम्, अभिलषणीयकान्तयः कुन्तलाः, श्लाघनीयो नासिक्यभागः, बहुलवलीकः सरोमालिकालंकारश्च मध्यदेशः, प्रकटितकामकोटिविलासः काञ्चीप्रदेशः। किं बहुना, यस्याः कृष्णागुरुचन्दनामोदबहुलकुचाभोगभूषणा नृत्यतीवाङ्गरङ्गे रमणीयतया निरुपमा नवा यौवनश्रीः।

संस्कृत-व्याख्या---प्रचण्डदोर्दण्डमण्डलीविश्रान्तविजयश्रिया---प्रचण्डायां तीव्रायां दोर्दण्डमण्डल्यां दोष्णी भुजो एव दण्डौ तयोः मण्डली समूहः तस्यां विश्रान्ता कृतविश्रामा विजयश्रीः जयलक्ष्मीः यस्य तादृशेन, श्रवणोत्पलदलायमान०---श्रवणयोः नेत्रयोः उत्पलं कमलं तस्य दलं पत्रमिव आचरतः इति तथाविधे मानिनीनां मानवतीनां मानस्य कोपस्य लुण्टाके अपहारके लोचने नेत्रे यस्य तथाविधेन, येन--नलेन, कामरूपधारिणी--कामरूपप्रदेशयुक्ता, पृथ्वी--

भूमि:, कामरूपधारिणी--मनोज्ञरूपयुक्ता, प्रिया च--कान्ता च, सातेन—सुखेन, मुक्ता--कृतोपभोगा। यस्या:—पृथिव्या: प्रियायाश्च, सकलजनमनोहारिविशेषकं—सकलजनानां समस्तप्रजानां मनोहारी चित्ताकर्षक: विशेषक: पुण्ड्रकदेशो यत्र तादृशम् (प्रियापक्षे—) सकलजनानां मनोहारी विशेषक: तिलक: यत्र तादृशम्), पृथुललाटमण्डलम्--पृथुलं विशालं लाटमण्डलं लाटाख्यो जनपद: (अस्ति) (प्रिया-पक्षे--)पृथु ललाटमण्डलं मस्तकचक्रवालम् (अस्ति), अभिलषणीयकान्तय:—अभिलषणीया स्पृहणीया कान्ति: शोभा येषां तथाविधा:, कुन्तला: कुन्तलाख्यदेशा: (सन्ति), (प्रियापक्षे–) अभिलषणीयकान्तय:, कुन्तला:--केशा: (सन्ति), श्लाघनीय:—प्रशंसनीय:, नासिक्यभाग:--नासिक्यप्रदेश: (अस्ति) (प्रियापक्षे--) नासिकाभवप्रदेश: (अस्ति), बहुलवलीक:--बह्व्य: बहुला: लवल्य: सुगन्धमूला: फलवृक्षविशेषा: यत्र तादृश: (प्रियापक्षे—)बहुला: वल्ल्य: उदररेखा: यत्र तादृश:, सरोमालिकालंकारश्च—सरोमालिका तडागपंक्ति: एव अलंकार: भूषणं यत्र तादृशश्च (प्रियापक्षे—) रोमालिका रोमपंक्ति: एव अलंकार: तेन सहितश्च, मध्यदेश।--मध्यप्रदेश: (अस्ति) (प्रियापक्षे—) उदरभाग: (अस्ति), प्रकटितकामकोटिविलास:--प्रकटित: प्रकाशित: कामकोट्या: कामकोटिदेव्या: विलास: विलसनं येन तादृश: (प्रियापक्षे--) प्रकटित: कामकोटिविलास: मदनोत्कर्षविभ्रम: येन तादृश:), काञ्चीप्रदेश:—काञ्चीनामा देशविशेष: (अस्ति) (प्रियापक्षे—) काञ्चीप्रदेश:—श्रोणीतटम् (अस्ति)। किं बहुना—किमधिकेन, यस्या:--पृथिव्या: प्रियायाश्च, कृष्णागुरुचन्दनामोदबहुलकुचाभोगभूषणा--कृष्णा पिप्पली अगुरु: वनद्रुम: चन्दन: मलयजद्रुम: तेषाम् आमोद: सौरभं स च बहूनाम् अनेकेषां लकुचानां लिकुचवृक्षाणाम् आभोग: विस्तारश्च तौ भूषणम् अलङ्कारो यस्या: तादृशी (प्रियापक्षे—) कृष्णागुरो: श्यामागरुद्रव्यस्य चन्दनस्य मलयजस्य चामोदेन सौरभेण बहुलो व्याप्त: कुचाभोग: स्तनविस्तार: एव भूषणम् आभरणं यस्या: तादृशी), वनश्री:--वनानाम् अरण्यानां श्री: [शोभा, निरुपमानवायौ—निरुपमान: उपमारहितश्चासौ वायु: पवन: तस्मिन् (प्रिया-पक्षे—) निरुपमा--अनुपमा, नवा—नूतना, यौवनश्री:—तारुण्यशोभा, रमणीयतया--रम्यतया, अङ्गरङ्गे--अङ्ग: अंगदेश: रङ्ग: रंगस्थलमिव तस्मिन्, (प्रियापक्षे—) अङ्गं शरीरमेव रङ्ग: रङ्गस्थलं तस्मिन् नृत्यति—नृत्यं करोति, इव।

हिन्दी-अनुवाद—प्रचण्ड भुजदण्ड-मण्डल पर विश्राम करती हुई विजय-लक्ष्मी वाले तथा कानों पर धारण किये गये कमलपत्र के समान एवं मानिनियों के मान को लूटने वाले नेत्रों से युक्त जिस (राजा नल) ने कामरूपदेश (आसाम के पश्चिमी भाग) को (अपने अन्दर) धारण करने वाली पृथ्वी का तथा सौन्दर्यातिशय धारण करने वाली कान्ता का उपभोग किया। (पृथ्वी-पक्ष में—) जिसका सभी लोगों के मन को हरने वाले पुण्ड्रक देश से युक्त विशाल लाट नामक जनपद था, अभिलषणीय शोभा वाला कुन्तल देश था, प्रशंसनीय नासिक्य प्रदेश था, बहुत-सी लवली लताओं से युक्त तथा सरोवर-मालाओं से अलंकृत मध्यप्रदेश था और कामकोटि देवी के विलास को प्रकट करने वाला काञ्चीप्रदेश था। अधिक क्या (कहें), अगर तथा चन्दन की सुगंध से एवं बहुत-से लकुच (बड़हर) वृक्षों के विस्तार से अलंकृत जिसकी वनश्री मानों अनुपम पवन में अंगदेश रूपी रंगमंच पर सुन्दरतापूर्वक नाचती थी।

(प्रिया-पक्ष में—) जिसका सभी लोगों के मन को हरने वाले तिलक से युक्त विशाल ललाट-मण्डल था, अभिलषणीय शोभा वाले केश थे, प्रशंसनीय नासिका-भाग था, बहुत-सी उदर-रेखाओं से युक्त एवं रोमावलि से अलंकृत मध्य भाग था और करोड़ों कामदेवों के विलास को प्रकट करने वाला जघन-भाग था। बहुत क्या (कहें), अगर तथा चन्दन के सौरभ और विशाल कुचों के विस्तार से अलंकृत अनुपम तथा नवीन यौवन-शोभा जिसके अंगरूपी रंगमंच पर मानो नाच रही थी।

टिप्पणी—प्रचण्डदोर्दण्ड······श्रिया—इसमें एकदेशविवर्तिरूपक अलंकार है। श्रवणोत्पलदलायमान—में व्यङ्गता उपमा है। पृथ्वी प्रिया च·· ·भुक्ता में तुल्ययोगिता अलंकार है। सातेन—सुख से। 'शर्मसात सुखानि च' इत्यमरः। विशेषक—(१) पुण्ड्रक देश, (२) तिलक। 'विशेषकस्तु पुण्ड्रके विशेषाधायकेऽपि वा' इत्यनेकार्थसंग्रहः। 'विशेषकः स्यात् तिलके' इति विश्वः। यहाँ 'सकलजन' से लेकर सर्वत्र श्लेषालंकार है, 'अङ्गरङ्ग' में रूपक तथा 'नृत्यतीव' में उत्प्रेक्षा अलंकार हैं।

किं चान्यत्। अन्य एव नवावतारः स कोऽपि पुरुषोत्तमो यो न मीनरूपदूषितः, नाङ्गीकृतविश्वविश्वम्भराभारोऽपि कूर्मीकृतात्मा, न

वराहवपुषा क्लेशेन पृथ्वीं बभार, न च नरसिंहः समुत्सन्नहिरण्यकशपुः, न बलिराजबन्धनविधौ वामनो दैन्यमकरोत्, नापि रामो लङ्केश्वरश्रियमपाहरत्, नापि बुद्धः कल्किकुलावतारी ।

संस्कृत-व्याख्या--किं चान्यत्--अपरं किम्। सः--नलः, अन्य एव--अपर एव विलक्षण एवेति यावत्, कोऽपि--अनिर्वचनीयः, नवावतारः--नूतनावतारः, पुरुषोत्तमः--विष्णुः, यः, न, मीनरूपदूषितः--मीनरूपेण मत्स्याकारेण दूषितः विकृतः, (इति विलक्षणत्वं विष्णोर्मीनरूपदूषितत्वात्। नल-पक्षे--पुरुषोत्तमः--नरश्रेष्ठः, यः--राजा नलः, अनमी--अरोगी, न रूपदूषितः--न रूपे आकृतौ दूषितः विकृतः), अङ्गीकृतविश्वविश्वम्भराभारोऽपि--अङ्गीकृतः स्वीकृतः विश्वविश्वम्भरायाः समग्रपृथिव्याः भारः भरः येन तादृशोऽपि, न, कूर्मीकृतात्मा--कूर्मीकृतः कच्छपीकृतः आत्मा देहः येन तादृशः (इति विलक्षणत्वं विष्णोर्भूभारधारणार्थं गृहीतकूर्मावतारत्वात्। नल-पक्षे--स्वीकृतराज्यपालनभारः अपि, न कूर्मीकृतात्मा--कूर्मीकृतः पीडयाऽऽकुञ्चितः आत्मा देहो येन तादृशः न, अर्थात् अनायासेनैव राज्यभारमुवाह), न वराहवपुषा--न धृतसूकररूपेण, अक्लेशेन--अनायासेन, पृथ्वीं--भुवम्, बभार--दध्रे (इति वैलक्षण्यम् विष्णोः पृथिवीरक्षणार्थं धृतसूकररूपत्वात्। नलपक्षे--वरं श्रेष्ठम् आहवं युद्धं पुष्णातीति तेन वराहवपुषा न क्लेशेन--न कष्टेन अपितु सुखेनैव राज्यं पालयामास), न च, नरसिंहः--नृसिंहावतारधरः, सन्नपि, समुत्सन्नहिरण्यकशिपुः--समुत्सन्नः उच्छिन्नः नाशित इत्यर्थः हिरण्यकशिपुः प्रह्लादपिता येन तादृशः (इति वैलक्षण्यं नरसिंहावतारे विष्णुना तथा कृतत्वात्। नलपक्षे--नरसिंहः--पुरुषश्रेष्ठः सन्नपि, न समुत्सन्नहिरण्यकशिपुः--न समुत्सन्नं समुच्छिन्नं हिरण्यं सुवर्णं कशिपु भोजनाच्छादनादि च येन तादृशः अर्थात् राज्ञा नलेन कस्यापि सुवर्णभोजनाच्छादनादिकं न विनाशितमित्यर्थः), न--नापि, वामनः--वामनावतारः सन्, बलिराजबन्धनविधौ--दैत्यराजस्य बलेः निगडनकर्मणि, दैन्यमकरोत्--दीनतां स्वीचकार (इति विलक्षणत्वं विष्णुना तथा कृतत्वात्। नलपक्षे--न वा, बलिनां शूरवीराणां राज्ञां नृपतीनां बन्धनविधौ संयमनकर्मणि, मनोदैन्यं--मानसिकदीनताम्, अकरोत्)। नापि, रामः--राघवेन्द्रः, लङ्केश्वरश्रियं--रावणलक्ष्मीम्, अपाहरत्--आच्छिन्नवान् (इति विलक्षणत्वं विष्णुना

तथा कृतत्वात् । नलपक्षे--अलम् अत्यर्थं कस्य ब्रह्मणः ईश्वरस्य शिवस्य च श्रियं लक्ष्मीं, न अपाहरत्--न आदत्तवान् देवस्वापहारी नासीदित्यर्थः), नापि, बुद्धः--सुगतः, कल्किकुलावतारी च--गृहीतकल्क्यवतारश्च (इति विलक्षणत्वं विष्णुः सन्नपि बुद्धावतारं कल्क्यवतारं च न गृहीतवान् इति विलक्षणत्वम् । नलपक्षे--बुद्धः--विद्वान् आसीत् परं कल्किकुलावतारी--कल्किनां पापिनां कुले अवतारी उत्पन्नः न आसीत्) ।

हिन्दी-अनुवाद--और क्या (कहें) । वह (राजा) कोई दूसरा ही विलक्षण) नवीन अवतार था, जो पुरुषोत्तम (विष्णु) होते हुए भी मत्स्य रूप (मत्स्यावतार) से दूषित नहीं था (द्वितीय अर्थ--जो (राजा) पुरुषों में श्रेष्ठ होते हुए भी नीरोग, अथवा शत्रुओं को नवाने वाला तथा रूप में दूषित नहीं था) । जिसने सम्पूर्ण पृथ्वी का भार स्वीकार कर लिया था फिर भी अपने को कच्छप नहीं बनाया था (द्वितीय अर्थ--जिस (राजा) ने समस्त पृथ्वी का राज्यभार स्वीकार करने पर भी अपने को पीडा से सकुचाया नहीं था) । शूकर का शरीर धारण करके (अर्थात् मत्स्यावतार लेकर भी अनायास पृथ्वी का धारण नहीं किया था (द्वितीय अर्थ--जो (राजा) बड़े-बड़े युद्धों को जन्म देने वाले क्लेश से पृथ्वी का धारण नहीं करता था अपितु अनायास धारण करता था) । जिसने नरसिंह (नृसिंहावतार) होकर भी हिरण्यकशिपु का विनाश नहीं किया था (द्वितीय अर्थ--जो (राजा) नरों में श्रेष्ठ होते हुए भी किसी के सुवर्ण एवं अन्न-वस्त्रादि को नष्ट नहीं करता था (अर्थात् नहीं छिनता था) । जिसने राजा बलि को बांधने के व्यापार में वामनरूप धारण करते हुए भी दीनता (याचना) नहीं प्रकट की थी (द्वितीय अर्थ--जो (राजा) बलवान् राजाओं के बन्धन-कार्य में मानसिक दीनता नहीं प्रकट करता था) । जिसने राम होते हुए भी रावण की श्री का अपहरण नहीं किया था (जिस (राजा) ने सुन्दर होते हुए भी ब्रह्मा और शिव की श्री का बिलकुल ही अपहरण नहीं किया था) । जो (विष्णु होते हुए भी) वुद्ध तथा कल्किकुल में अवतीर्ण नहीं था (द्वितीय अर्थ--जो विद्वान् था और पापी के कुल में उत्पन्न नहीं हुआ था) ।

टिप्पणी--कल्किकुलावतारी--(१) कल्की अवतार, (२) पापी कुल में उत्पन्न । इस अनुच्छेद में दशो अवतारों का वर्णन किया गया है और राजा नल

को समी अवतार से विलक्षण बताया गया है। यहाँ कुवलयानन्द के मत से नल में पुरुषोत्तमत्व का आरोप होने पर भी मीनरूपदूषितत्व आदि का वर्णन होने से न्यूनाभेदरूपक है अथवा विरोधाभास है। इन दोनों में अन्यतर साधक-बाधक का अभाव होने से सन्देहसंकर हो जाता है।

किं बहुना

> धन्यास्ते दिवसाः स येषु समभूद् भूपालचूडामणि-
> र्लोकालोकगिरीन्द्रमुद्रितमहीविश्रान्तकीर्तिर्नलः।
> लोकास्तेऽपि चिरन्तनाः सुकृतिनस्तद्वक्त्रपङ्केरुहे
> यैर्विस्तारितनेत्रपत्रपुटकैर्लावण्यमास्वादितम् ॥३४॥

अन्वय—ते दिवसाः धन्याः येषु सः भूपालचूडामणिः लोकालोकगिरीन्द्र-मुद्रितमहीविश्रान्तकीर्तिः नलः समभूत्। ते चिरन्तनाः सुकृतिनः लोकाः अपि (धन्याः आसन्) यैः विस्फारितनेत्रपत्रपुटकैः तद्वक्त्रपङ्केरुहे लावण्यम् आस्वा-दितम् ॥३४॥

संस्कृत-व्याख्या—ते—प्रसिद्धाः, दिवसाः—दिनानि, धन्याः—पुण्याः, येषु—दिवसेषु, सः—प्रसिद्धः, भूपालचूडामणिः—नृपमूर्धन्यः, लोकालोकगिरीन्द्र० लोकालोकगिरीन्द्राभ्यां लोकालोकपर्वतराजाभ्यां मुद्रिता समाच्छन्ना या मही पृथ्वी तस्यां विश्रान्ता स्थिता कीर्तिर्यशो यस्य तादृशः, नलः—नैषधः, समभूत्—समुत्पन्नः। ते—प्रसिद्धाः, चिरन्तनाः—पुरातनाः, सुकृतिनः—पुण्यात्मानः, लोकाः—जनाः, अपि (धन्याः आसन्), यैः, विस्फारितनेत्रपत्रपुटकैः—विस्फा-रितानि नेत्राणि नयनानि एव पत्रपुटकानि चषकाणि तैः, तद्वक्त्रपङ्केरुहे—तस्य नलस्य वक्त्रपङ्केरुहे मुखारविन्दे, लावण्यं—सौन्दर्यम्, आस्वादितम्—पीतम्॥

हिन्दी अनुवाद—बहुत क्या (कहें), वे दिन धन्य थे, जिनमें वे राजाओं के शिरोरत्न एवं लोका-लोक नामक पर्वतराजों से अंकित भूमि पर विश्रान्त (व्याप्त) कीर्ति वाले नल उत्पन्न हुए। वे पुराने पुण्यात्मा लोग भी धन्य थे, जिन्होंने अपने खिले हुए नेत्र रूपी पत्र-पुटों के द्वारा उनके मुखारविन्द के सौन्दर्य का पान किया था ॥३४॥

टिप्पणी—(१) धन्याः—धनं लब्धारः इति धन्याः धन+यत्। (२) भूपालचूडामणिः—राजाओं के सिरमौर। 'चूडामणिः शिरोरत्नम्' इत्यमरः। (३) लोकालोक—लोक और अलोक नामक पर्वत, सातों समुद्रों को परि-वेष्टित करने वाली पौराणिक पर्वतश्रेणी, चक्रवाल (बौद्ध)। लोक्यते असौ इति लोकः। न लोक्यते असौ इति अलोकः। लोकश्च अलोकश्च इति लोका-लोकौ (द्व० स०)।

इस श्लोक में नलोत्पत्ति के वर्णन द्वारा तत्सम्बन्धी दिवसों का माहा-त्म्य-कथन होने से उदात्त अलंकार है, 'भूपालचूडामणिरिव' में लुप्तोपमा है, 'वक्त्रमेव पङ्केरुहम्' में रूपक है, नेत्रों में पत्रपुटकत्व का आरोप शाब्द है और लावण्य में मधुरत्व का आरोप आर्थ है, अतः एकदेश-विवर्तिसांगरूपक अलंकार हुआ। इसमें शार्दूलविक्रीडित छन्द है। उसका लक्षण—'सूर्याश्वैर्यदि मः सजौ सततगाः शार्दूलविक्रीडितम्' ॥३४॥

अपि च।

ये कुन्दद्युतयः समस्तभुवनैः कर्णावतंसीकृता
यैः सर्वत्र शलाकयेव लिखितैर्दिग्भित्तयश्चित्रिताः।
यैर्वक्तुं हृदि कल्पितैरपि वयं हर्षेण रोमाञ्चिता-
स्तेषां पार्थिवपुंगवः स महतामेको गुणानां निधिः ॥३५॥

अन्वय—कुन्दद्युतयः ये समस्तभुवनैः कर्णावतंसीकृताः, यैः सर्वत्र शलाकया इव लिखितैः दिग्भित्तयः चित्रिताः, वक्तुं हृदि कल्पितैः अपि हर्षेण वयं रोमा-ञ्चिताः, तेषां महतां गुणानां सः पार्थिवपुंगवः एकः निधिः ॥३५॥

संस्कृत-व्याख्या—कुन्दद्युतयः—माघ्यपुष्पवद्धवलकान्तयः, ये—गुणाः, सम-स्तभुवनैः—अखिललोकैः, कर्णावतंसीकृताः—श्रोत्रभूषणीभूताः, यैः—गुणैः, सर्वत्र—सर्वेषु स्थानेषु, शलाकयेव—लोहलेखन्येव, लिखितैः—अंकितैः, दिग्भि-त्तयः—दिगन्तकुड्यानि, चित्रिताः—शोभिताः, यैः—गुणैः, वक्तुं—कथयितुं, हृदि—हृदये, कल्पितैः अपि—चिन्तितैः अपि, हर्षेण—आनन्देन, वयं—श्रोतारः, रोमाञ्चिताः—पुलकिताः, (भवामः), तेषां, महतां—विशालानां, गुणानां—दयादाक्षिण्यादीनां, सः—प्रसिद्धः, पार्थिवपुंगवः—नृपवरः, एकः—अद्वितीयः, निधिः—शेवधिः (आसीत्) ॥३५॥

हिन्दी अनुवाद—और भी, कुन्दपुष्प के समान (धवल) कान्ति वाले जिन गुणों को सभी लोकों ने अपने कानों के आभूषण बना डाले, जिन (गुणों) से मानो शलाका द्वारा लिखी गईं दिशा रूपी दीवारें चित्रित हो उठीं और जिनको कहने के लिए मन में विचार आते ही हम हर्ष से रोमांचित हो जाते हैं, उन महान् गुणों का वह नृपवर अद्वितीय खजाना था ॥३५॥

टिप्पणी—(१) कर्णावतंसीकृताः—कर्णभूषण या कर्णपूर बनाया। न कर्णावतंसाः अकर्णावतंसाः (न० त०), अकर्णावतंसाः कर्णावतंसाः सम्पद्यमानाः कृताः इति कर्णावतंसीकृताः कर्णावतंस+च्वि, ईत्व√कृ+क्त।

इस श्लोक में 'कुन्दद्युतयः' में समासगा लुप्तोपमा है, 'कर्णावतंसीकृताः' में रूपक है, 'दिग्भित्तयः' में भी रूपक है, 'शलाकयेव लिखितैः' में उत्प्रेक्षा और 'वक्तुं कल्पितैरपि' में कैमुतिकन्याय से अर्थसंसिद्धिरूप अर्थापत्ति अलंकार हैं। इसमें भी शार्दूलविक्रीडित छन्द है ॥३५॥

यस्य च युधिष्ठिरस्येव न क्वचिदपार्थो वचनक्रमः मरुमण्डलमिवापापं मानसम्, महानसमिव सूपकारसारं कर्म, कार्मुकमिव सत्कोटिगुणं दानम्, दानवकुलमिव दृष्टवृषपर्वोत्सवं राज्यम्, राजीवमिव भ्रमरहितं सर्वदा हृदयम्। यश्च परमहेलाभिरतोऽप्यपारदारिकः। शान्तनुतनयोऽपि न कुरूपयुक्तः।

संस्कृत व्याख्या—यस्य—नलस्य, च, वचनक्रमः—वचनस्य वचसः क्रमः परिपाटी, युधिष्ठिरस्येव—धर्मराजस्येव, क्वचित्—कुत्रापि, अपार्थः—अपगतः अर्थः सारः यस्मात् तादृशः निरर्थक इति यावत् (युधिष्ठिर-पक्षे—अपार्थः—पार्थोक्तिविरुद्धः युधिष्ठिरस्य पृथायाः कुन्त्याः अपत्यत्वात्), न—नासीदित्यर्थः। मानसं—मनः, मरुमण्डलमिव—मरुस्थलमिव, अपापं—पापरहितम् (मरु-पक्षे—अपापम्—अपगता आपो जलानि यस्मात् तादृशम्) आसीत्। कर्म—क्रियाकलापः, महानसमिव—पाकालय इव, सूपकारसारं—सुष्ठु उपकारः परार्थसाधनमेव सारो यत्र तादृशम् (महानसपक्षे—सूपकारसारं—सूपकाराः ओदनिकाः साराः श्रेष्ठांशाः यत्र तादृशम्) आसीत्। दानं—त्यागः, कार्मुकमिव—धनुरिव, सत्कोटिगुणं—सन्तः विद्यमानाः कोटिगुणाः कोटिसंख्यका लाभा यत्र तादृशम् (धनुः पक्षे—सत्कोटिगुणं—कोटी धनुषः अग्रभागौ गुणः मौर्वी च

इति सन्तः विद्यमानाः कोटिगुणाः यत्र तादृशम्) आसीत् । राज्यम्—आधिपत्यं शासितभूभाग इति यावत्, दानवकुलमिव—दैत्यवंश इव, दृष्टवृषपर्वोत्सवं—दृष्टः अवलोकितः वृषः धर्मः पर्व पौर्णमास्यादि उत्सवः पुत्रजन्मविवाहादिश्च यत्र तादृशम् (दानवकुलपक्षे—दृष्टः वृषपर्वणः उत्सवः आनन्दं यत्र तादृशम्) आसीत् । हृदयं—चेतः, राजीवमिव—कमलमिव, सर्वदा—सदा, भ्रमरहितं—भ्रमेण भ्रान्त्या रहितं शून्यं (राजीवपक्षे—भ्रमरहितं—भ्रमराणां मधुपानां हितं हितकरम्) आसीत् । यः—नलः, च, परमहेलाभिरतोऽपि—परेषाम् अन्येषां महेलाः नार्यः तासु अभिरतः आसक्तः अपि, अपारदारिकः—परेषां दारेषु नारीषु अनासक्तः (इति विरोधः, परिहारस्तु—परमा या हेला विलासक्रीड़ास्तासु अभिरतः संलग्नः) । शान्तनुतनयोऽपि—शान्तनोः तनय पुत्रः भीष्मः अपि, न कुरूपयुक्तः—कुरूणां धार्तराष्ट्राणाम् उपयुक्तः उपयोगी न (इति विरोधः, परिहारस्तु—शान्तः शान्तियुक्तः नुतः स्तुतः नयः नीतिः यस्य तादृशोऽपि, न कुरूपयुक्तः—कुत्सितेन रूपेण न युक्तः अपितु सर्वाङ्गसुन्दर एव) ।

हिन्दी अनुवाद—जिस (नल) का वचन-क्रम युधिष्ठिर की तरह कहीं निरर्थक (पक्ष में पार्थभिन्न=कुन्ती-पुत्र से भिन्न) नहीं होता था, मन मरुस्थल की भाँति पापरहित (पक्ष में जलरहित) था, क्रियाकलाप पाकालय के समान सुन्दर उपकार रूप सार से युक्त (पक्ष में रसोइये रूप सार से युक्त) था, दान धनुष के समान कोटिसंख्यक लाभ से युक्त (पक्ष में कोटियों (धनुष के अग्रभागों) तथा प्रत्यंचा से युक्त) था, राज्य दानववंश के समान धर्म, पर्व तथा उत्सव से युक्त (पक्ष में वृषपर्वा के उत्सव से युक्त था और हृदय कमल की भाँति सदा भ्रमरहित (पक्ष में भ्रमरों के लिए हितकर) था । जो (राजा नल) दूसरों की स्त्रियों में निरत रहने पर भी परस्त्री में अनुरक्त नहीं था (यह विरोध है, इसका परिहार—परम क्रीडा में संलग्न रहने पर भी परस्त्री में में आसक्त नहीं था) । शान्तनु का पुत्र भीष्म होते हुए भी कौरवों के लिए उपयुक्त नहीं था (यह विरोध है, इसका परिहार—जिसकी नीति शान्त एवं प्रशंसित थी और जिसका रूप भद्दा नहीं था) ।

टिप्पणी—अपारदारिकः—(१) दूसरे की स्त्रियों में अनासक्त, (२) अनन्त कन्याओं से युक्त—अपाराः दारिकाः यस्य सः (ब० स०) । इसके

अनुसार 'परमहेलाभिरत:' का अर्थ होगा--परम उत्सव वाली इला=पृथिवी में अनुरक्त है प्रजापालक है, (अत: इसकी अनन्त कन्यायें हैं अर्थात् सारी प्रजा नल की पुत्र-पुत्री हैं रक्षक होने से)। पर: उत्कृष्ट: मह: उत्सव: यस्यां सा चासौ इला पृथिवी तस्याम् अभिरत:। यस्य च...... ...हृदयम्--में श्लिष्टोपमा अलंकार है। यश्च परमहेला.........कुलपयुक्त:--में श्लेषानुप्राणित विरोधाभास अलंकार है।

किं बहुना ।
सदाहंसाकुलं बिभ्रन्मानसं प्रचलज्जलम्
भूभृन्नाथोऽपि नो याति यस्य साम्यं हिमाचल: ॥३६॥

अन्वय--सदा हंसाकुलं प्रचलज्जलम् मानसं बिभ्रत् भूभृन्नाथ: अपि हिमाचल: यस्य साम्यं नो याति ॥३६॥

संस्कृत-व्याख्या--सदा—सर्वदा, हंसाकुलं--हंसै: मरालै: आकुलं व्याप्तम्, प्रचलज्जलं--प्रचलत् तरङ्गितं जलं पानीयं यत्र तादृशं, मानसं--मानसाख्य-सरोवरं, बिभ्रत्—धारयन्, भूभृन्नाथ:--पर्वतराज:, अपि, हिमाचल:--हिमालय:, सदाहं--दाहेन सन्तापेन सहितं, साकुलं—व्याकुलं, प्रचलज्जलं--प्रचलत् भिया कम्पमानं, जलं--जडं, मानसं—चित्तं, बिभ्रत् इव, यस्य--नलस्य, साम्यं--समतां, नो याति--न प्राप्नोति ॥३६॥

हिन्दी अनुवाद--अधिक क्या (कहें), सदा हंसों से व्याप्त तथा तरंगित जल वाले मानसरोवर को धारण करता हुआ पर्वतराज हिमालय मानो सन्तापयुक्त:, व्याकुल, चंचल तथा जड़ मन को धारण करते हुए की तरह, जिस (नल) की समानता को प्राप्त नहीं कर पाता था (क्योंकि नल सन्तापयुक्त, व्याकुल, चंचल तथा जड़ मन को धारण नहीं करता था)।

टिप्पणी--भूभृन्नाथ:—(१) पर्वतों का स्वामी, (२) राजाओं का स्वामी। भुवं बिभर्ति इति भूभृत्, भूभृतां नाथ: भूभृन्नाथ:। यद्यपि भूभृन्नाथत्व नल और हिमाचल में समान है तो भी हिमालय नल की समता नहीं कर सकता है, क्योंकि नल में सदाह, साकुल, जड एवं चंचल मानस नहीं है।

इस श्लोक में नल का आधिक्य वर्णन होने से व्यतिरेक अलंकार है और 'बिभ्रदिव' में श्लेषमूला प्रतीयमाना उत्प्रेक्षा है अतएव इन दोनों का संकर है। इसमें अनुष्टुप् छन्द है ।।३६।।

अपि च ।

नक्षत्रभूः क्षत्रकुलप्रसूतेर्युक्तो नभोगैः खलु भोगभाजः ।
सुजातरूपोऽपि न याति यस्य समानतां कांचन काञ्चनाद्रिः ।।३७।।

अन्वय––सुजातरूपः अपि नक्षत्रभूः न भोगैर्युक्तः काञ्चनाद्रिः क्षत्रकुलप्रसूतेः भोगभाजः यस्य कांचन समानतां न याति ।।३७।।

संस्कृत-व्याख्या––सुजातरूपः अपि––शोभनं जातरूपं सुवर्णं यत्र तादृशः अपि (नलपक्षे––सुष्ठु जातम् उत्पन्नं रूपं सौन्दर्यं यस्य तादृशः), न क्षत्रभूः––न क्षत्रियोत्पन्नः अपि तु नक्षत्रभूः––नक्षत्राणां तारकाणां भूः स्थानं, न भोगैर्युक्तः अपि तु नभोगैः––देवैः युक्तः, काञ्चनाद्रिः––सुमेरुपर्वतः, क्षत्रकुल-प्रसूतेः––क्षत्रियवंशसमुत्पन्नस्य, भोगभाजः––भोगैर्युक्तस्य, यस्य––नलस्य, कांचन ––किमपि, समानतां––साम्यं, न याति––न प्राप्नोति ।।३७।।

हिन्दी अनुवाद––और भी, उत्तम सुवर्ण से युक्त होने पर भी (नलपक्ष में ––सुन्दर रूप से सम्पन्न) क्षत्रियोत्पन्न नहीं अपितु नक्षत्रों का विचरण-स्थान तथा भोगों से युक्त नहीं अपि तु देवों से युक्त सुमेरुपर्वत क्षत्रियकुल में उत्पन्न तथा भोगयुक्त जिस (नल) की कुछ भी समानता को प्राप्त नहीं करता था ।।३७।।

टिप्पणी––इस श्लोक में नक्षत्रभूः, नभोगैः, सुजातरूपः––ये शब्द श्लिष्ट हैं। काञ्चनाद्रि के सुजातरूप विशेषण का साभिप्राय होने से परिकर अलंकार है। फिर काव्यलिंग तथा व्यतिरेक का संकर भी है। इसमें उपजाति छन्द है। उपजाति का लक्षण––इन्द्रवज्रा और उपेन्द्रवज्रा के मेल से उपजाति छन्द होता है––अनन्तरोदीरितलक्ष्मभाजो पादौ यदीयावुपजातयस्ताः' ।।३७।।

महामन्त्रि-वर्णनम्

तस्य च महामहीपतेरस्ति स्म प्रशस्तिस्तम्भः सकलश्रुतिशास्त्रशासनाक्षरमालिकानाम्, न्यग्रोधपादपः पुण्यकर्मप्ररोहाणाम्, आकरः साधुव्यवहाररत्नानाम्, इन्दुःपार्थिवनीतिज्योत्स्नायाः, कन्दः सकलकलाङ्कुरकलापस्य, सागरः समस्तपुरुषगुणमणीनाम्, आलानस्तम्भश्चपलराज्यलक्ष्मीकरेणुकायाः, सकलभुवनव्यापारपारावारनौकर्णधारः, सुधाम्भोनिधिडिण्डीरपिण्डपाण्डुरयशः कुशेशयखण्डमण्डितसकलसंसारसराः, सरागीकृतसमस्तपार्थिवानुजीवी, जीवितसमः, प्राणसमः, हृदयसमः, शरीरमात्रभिन्नो द्वितीय इवात्मा, कुलक्रमागतः संक्रान्तिदर्पणः सुखदुःखयोः, स्वभावानुरक्तः, शुचिः, सत्यपूतवाक् कृतज्ञो ब्राह्मणः सालङ्कायनस्य सूनुः श्रुतशीलो नाम महामन्त्री ।

संस्कृत-व्याख्या—तस्य—प्रसिद्धस्य, च, महामहीपतेः—महाराजस्य, सकलश्रुतिशास्त्रशासनाक्षरमालिकानां—सकलानां निखिलानां श्रुतीनां वेदानां शास्त्राणां स्मृत्यादिग्रन्थानां च यानि शासनानि आदेशवाक्यानि तेषु या अक्षरमालिकाः वर्णपंक्तयस्तासां, प्रशस्तिस्तम्भः—प्रशस्तेः कीर्तेः स्तम्भः स्तूपविशेषः, पुण्यकर्मप्ररोहाणां—पुण्यकर्माणि धर्मकार्याणि एव प्ररोहाः मूलानि तेषां, न्यग्रोधपादपः—वटवृक्षः, साधुव्यवहाररत्नानां—साधवः शोभनाः च व्यवहाराः शिष्टाचाराः एव रत्नानि हीरकादयस्तेषाम्, आकरः—खनिः, पार्थिवनीतिज्योत्स्नायाः—पार्थिवनीतिः राजनीतिः एव ज्योत्स्ना चन्द्रिका तस्याः, इन्दुः—चन्द्रः, सकलकलाङ्कुरकलापस्य—सकलाः समस्ताः कलाः विद्याः एव अङ्कुरा प्ररोहाः तेषां कलापस्य समूहस्य, कन्दः—अङ्कुरमूलम्, समस्तपुरुषगुणमणीनां—समस्ताः निखिलाः ये पुरुषाणां मनुष्याणां गुणाः दयादाक्षिण्यादयः त एव मणयः रत्नानि तेषां, सागरः—समुद्रः, चपलराज्यलक्ष्मीकरेणुकायाः—चपला चञ्चला राज्यलक्ष्मीः राज्यश्रीः एव करेणुका हस्तिनी तस्याः, आलानस्तम्भः—बन्धनस्थूणा, सकलभुवन०—सकलानि निखिलानि भुवनानि लोकाः तेषां व्यापारः कार्यम् स एव पारावारः समुद्रः तस्मिन् या नौः नौका तस्याः कर्णधारः नाविकः, सुधाम्भोनिधिडिण्डीर०—सुधायाः अमृतस्य अम्भोनिधिः समुद्रः तस्य डिण्डीराः फेनाः, तेषां पिण्डानि पटलानि तद्वत् पाण्डुराः धवलाः ये यशःकुशेशयखण्डाः कीर्ति-

कमलसमूहा: तै: मण्डितं शोभितं सकलसंसार एव सम्पूर्णजगदेव सर: कासार: येन तादृश:, सरागीकृतसमस्तपार्थिवानुजीवी––सरागीकृता: अनुरागवन्तो विहिता: समस्ता: सकला: पार्थिवानुजीविनो राजाश्रिता जना येन तादृश:, जीवितसम:–– ––जीवितेन जीवनेन सम: तुल्य:, प्राणसम:––प्राणै: असुभि: सम: सदृक्ष:, हृदयसम:––हृदयेन चेतसा सम: समान:, शरीरमात्रभिन्न:––शरीरमात्रेण देहमात्रेण भिन्न: पृथग्भूत:, द्वितीय:––अपर:, इव––यथा, आत्मा––जीवात्मा, कुलक्रमागत:––वंशपरम्परया सम्प्राप्त:, सुखदु:खयो:––हर्षविषादयो:, संक्रान्ति-दर्पण:––संक्रमणादर्श:, स्वभावानुरक्त:––स्वभावेन प्रकृत्यैव अनुरक्त: अनुराग-वान्, शुचि:––पवित्र:, सत्यपूतवाक्––सत्येन सत्यभाषणेन पूता पवित्रा वाक् वाणी यस्य तादृश:, कृतज्ञ:––कृतमुपकारं बहु मन्यमान:, ब्राह्मण:––विप्र:, सालङ्कायनस्य सूनु:––सालङ्कायनपुत्र:, श्रुतशीलो नाम—श्रुतशीलाख्य:, महामन्त्री ––महासचिव:, अस्ति स्म––आसीत् ।

हिन्दी अनुवाद––उस महाराज (नल) का, समस्त वेदों तथा शास्त्रों के आदेशों की अक्षरमाला का कीर्ति-स्तम्भ, पुण्य कर्म रूपी जटा-प्ररोहों का वट-वृक्ष, सद्व्यवहार रूपी रत्नों की खान, राजनीति रूपी चाँदनी का चन्द्र, सम्पूर्ण (चौंसठ) कला रूपी अंकुरों के समूह का कन्द, मनुष्यों के सारे गुण रूपी रत्नों का समुद्र, चचल राज्यलक्ष्मी रूपी हथिनी के बांधने का खूँटा, सारे संसार के व्यापार रूपी समुद्र की नौका का नाविक, अमृत-सागर के फेन-पिण्डों के समान धवल यश रूपी कमलों के समूह से सम्पूर्ण संसार रूपी सरोवर को अलंकृत करने वाला, समस्त राजा के अनुगामी (भृत्य, सामन्त आदि) जनों को (अपने प्रति) अनुरक्त रखने वाला, (राजा नल के) जीवन के समान, प्राणों के समान, हृदय के समान, शरीर मात्र से भिन्न दूसरे आत्मा के समान, वंश-परम्परा से प्राप्त, (राजा के) सुख-दुःख का संक्रमण-दर्पण (अर्थात् ऐसा दर्पण जिसमें राजा का सुख-दुःख स्पष्ट दीखता था), स्वभाव से अनुरक्त, शुद्ध, सत्य से पवित्र वाणी वाला, कृतज्ञ, सालङ्कायन का पुत्र, श्रुतशील नामक ब्राह्मण महामन्त्री था ।

टिप्पणी––न्यग्रोधपादप:—वटवृक्ष । न्यक् रुणद्धि इति न्यग्रोध: । पादै: पिबति इति पादप: । न्यग्रोधश्चासौ पादप: न्यग्रोधपादप: (कर्म० स०) ।

कर्णधारः—नाविक, खिवैया। 'कर्णधारस्तु नाविकः' इत्यमरः। हिण्डीर—फेन। 'हिण्डीरः डिण्डीरोऽब्धिकफः फेनः' इत्यमरः। यहाँ के गद्य-खण्ड में परम्परितरूपक और उल्लेख अलंकारों का संकर है। 'द्वितीय इवात्मा' में उत्प्रेक्षा अलंकार है।

मित्रं च मन्त्री च सुहृत्प्रियश्च विद्यावयः शीलगुणैः समानः।
बभूव भूपस्य स तस्य विप्रो विश्वम्भराभारसहः सहायः ॥३८॥

अन्वय—विद्यावयःशीलगुणैः समानः सः विप्रः तस्य भूपस्य मित्रं च मन्त्री च सुहृत् प्रियः च विश्वम्भराभारसहः सहायः बभूव ॥३८॥

संस्कृत-व्याख्या—विद्यावयः शीलगुणैः—विद्या ज्ञानं वयः आयुः शीलं सदाचारः गुणाः दयादाक्षिण्यादयः तैः समानः तुल्यः, सः—पूर्वोक्तः, विप्रः—ब्राह्मणः, तस्य, प्रसिद्धस्य, भूपस्य—राज्ञः नलस्य, मित्रं—सखा, च, मन्त्री—अमात्यः, च, सुहृत्—बन्धुः, प्रियः—स्निग्धः, च, विश्वम्भराभारसहः—राज्य-भारवहनसमर्थः, सहायः—सहायकः बभूव—जातः ॥३८॥

हिन्दी अनुवाद—विद्या, अवस्था, स्वभाव तथा गुणों में समान वह ब्राह्मण (श्रुतशील) उस राजा (नल) का मित्र, मंत्री, सुहृद्, प्रिय एवं राज्यभार वहन करने में समर्थ सहायक था ॥३८॥

टिप्पणी—इस श्लोक में विद्या, वय आदि की समानता तथा विश्वम्भ-राभारसहत्व को राजा की मित्रता एवं बन्धुता की निष्पत्ति में हेतु बताया गया है, अतः काव्यलिंग अलंकार है। एक का अनेकधा उल्लेख होने से उल्लेख अलंकार भी है। फिर इन दोनों का संकर है। इसमें भी उपजाति छन्द है ॥३८॥

ब्रह्मण्योऽपि ब्रह्मवित्तापहारी स्त्रीयुक्तोऽपि प्रायशो विप्रयुक्तः।
सद्वेषोऽपि द्वेषनिर्मुक्तचेताः को वा तादृग्दृश्यते श्रूयते वा ॥३९॥

अन्वय—ब्रह्मण्यः अपि ब्रह्मवित्तापहारी स्त्रीयुक्तः अपि प्रायशः विप्रयुक्तः सद्वेषः अपि द्वेषनिर्मुक्तचेताः तादृक् कः वा दृश्यते श्रूयते वा ॥३९॥

संस्कृत-व्याख्या--ब्रह्मण्यः अपि--ब्राह्मणेभ्यो हितोऽपि, ब्रह्मवित्तापहारी--ब्रह्मणां ब्राह्मणानां वित्तं धनम् अपहरति आच्छिनत्ति इति तादृशः (इति विरोधः परिहारस्तु--ब्रह्मवित् ब्रह्मज्ञः तापहारी सन्तापहारकश्च), स्त्रीयुक्तः अपि--स्त्रिया पत्न्या युक्तः अपि समन्वितः अपि, प्रायशः--बाहुल्येन, विप्रयुक्तः--विश्लिष्टः (इति विरोधः, परिहारस्तु--विप्रैः ब्राह्मणैः युक्तः समन्वितः), सद्वेषः अपि--द्वेषेण विरोधेन सहितः अपि, द्वेषनिर्मुक्तचेताः--द्वेषेण विरोधेन निर्मुक्तं रहितं चेतः चित्तं यस्य तादृशः (इति विरोधः, परिहारस्तु--सन् शोभनः वेषः परिधानं यस्य तादृशः), तादृक्--तथाविधः, को वा--कोऽन्यः, दृश्यते--अवलोक्यते, श्रूयते--आकर्ण्यते वा ॥३९॥

हिन्दी अनुवाद--वह ब्राह्मणों का हितैषी होते हुए भी ब्राह्मण के धन का अपहरण करने वाला था (विरोध, परिहार--ब्रह्मचिन्तक होते हुए भी ब्रह्मवेत्ता तथा प्रजा के सन्ताप को हरने वाला था), स्त्री से युक्त होते हुए भी प्रायः वियोगी था (विरोध, परिहार--स्त्रीयुक्त होते हुए भी ब्राह्मणों से युक्त था) और द्वेष से रहित होते हुए भी द्वेष से मुक्त चित्त वाला था (विरोध, परिहार--सुन्दर वेष से युक्त होते हुए भी द्वेषमुक्तचित्त था)। वैसा अन्य कौन देखा या सुना जाता है ? ॥३९॥

टिप्पणी--इस श्लोक में विरोधाभास अलंकार है और शालिनी छन्द है। शालिनी का लक्षण--'मात्तौ गौ चेच्छालिनी वेदलोकैः' ॥३९॥

नृपविलासवर्णनम्

अथ स पार्थिवस्तस्मिन्नमात्ये परिजनपरिवृढे प्रौढप्रेमणि निगूढमन्त्रे मन्त्रिणि तृणीकृतस्त्रैणविषयरसे सौराज्यरागजनने जननीयमाने जनस्य, सर्वोपधाशुद्धबुद्धौ निधाय राज्यप्राज्यचिन्ताभारमभिनवयौवनारम्भरमणीये रम्यरमणीजननयनहृदयप्रिये प्रियङ्गुभासि जितमदनमहस्यपहसितसुरासुरसौभाग्ययशसि विस्मापितसमस्तजनमनसि लसल्लावण्यपुञ्जपराजितसकलसमुद्राम्भसि कान्तिकटाक्षितचन्द्रमसि वयसि वर्तमानो मानितमानिनीजनयौवनसर्वस्वः स्वयमनवरतं सकलसंसारसुखसन्दोहमन्वभूत् ।

संस्कृत-व्याख्या—अथ—अनन्तरम्, सः—प्रसिद्धः, पार्थिवः—राजा, परिजनपरिवृढे—परिजनेषु परिवृढः समर्थः तस्मिन्, प्रौढ़प्रेमणि—प्रौढम् उत्कटं प्रेम स्नेहो यस्य तादृशे, निगूढमन्त्रे—निगूढः सुगुप्तो मन्त्रो रहस्यं यत्र तादृशे, तृणीकृतस्त्रैणविषयरसे—तृणीकृतः तुच्छीकृतः स्त्रैणविषयरसः स्त्रीजनविलासस्य रसः स्वादो येन तादृशे, सौराज्यरागजनने—सौराज्ये प्रशस्तराजत्वे रागः प्रीतिः तं जनयतीति तादृशे, जनस्य—लोकस्य, जननीयमाने—जननीवाचरति, सर्वोपधाशुद्धबुद्धौ—सर्वाः च ताः उपधाः उत्कोचाः ताभ्यः शुद्धा स्वच्छा कपटरहिता इत्यर्थः बुद्धिः प्रज्ञा यस्य तादृशे, मन्त्रिणि—मन्त्रवति, तस्मिन्—पूर्वोक्ते, अमात्ये—मन्त्रिणि श्रुतशील इति यावत्, राज्यप्राज्यचिन्ताभारम्—राज्यस्य आधिपत्यस्य प्राज्यम् प्रचुरं चिन्तायाः आध्यानस्य भारं भरं, निधाय—संस्थाप्य, अभिनवयौवनारम्भरमणीये—अभिनवेन नूतनेन यौवनारम्भेण तारुण्योदयेन रमणीये मनोहरे, रम्यरमणीजननयनहृदयप्रिये—रम्यः मनोहरः यः रमणीजनः सुन्दरीजनः तस्य नयनानि नेत्राणि हृदयानि चेतांसि च तेषां प्रियः अभीष्टः तादृशे, प्रियङ्गुभासि—प्रियङ्गुवत् श्यामालतावत् भासते इति तादृशे, जितमदनमहसि—जितं परास्तं मदनस्य कन्दर्पस्य महस्तेजो येन तादृशे, अपहसितसुरासुरसौभाग्ययशसि—अपहसितं तिरस्कृतं सुरासुराणां देवदैत्यानां सौभाग्यस्य सौन्दर्यस्य यशः कीर्तिः येन तादृशे, विस्मापितसमस्तजनमनसि—विस्मापितानि चकितीकृतानि समस्तजनानां सकललोकानां मनांसि चेतांसि येन तादृशे, लसल्लावण्यपुञ्ज०—लसन् देदीप्यमानः यः लावण्यस्य सौन्दर्यस्य पुञ्जः समूहः तेन पराजितानि तिरस्कृतानि सकलानां निखिलानां समुद्राणां सागराणाम् अम्भांसि जलानि येन तादृशे (समुद्र-पक्षे—लसन् यो लावण्यस्य क्षारत्वस्य पुञ्जः तेन), कान्तिकटाक्षितचन्द्रमसि—कान्त्या कमनीयतया कटाक्षितः पराजितः चन्द्रमाः चन्द्रः येन तादृशे, वयसि—अवस्थायां, वर्तमानः—विद्यमानः, मानितमानिनीजनयौवनसर्वस्वः—मानितं सत्कृतं मानिनीजनानां मानवतीनां स्त्रीणां यौवनसर्वस्वं तारुण्यधनं येन तादृशः, स्वयम्—आत्मना, अनवरतं—निरन्तरं, सकलसंसारसुखसन्दोहं—सकलस्य सम्पूर्णस्य संसारस्य जगतः सुखसन्दोहम् आनन्दसमूहम्, अन्वभूत्—आस्वादितवान् ।

हिन्दी अनुवाद—अनन्तर वह राजा परिजनों में समर्थ, प्रगाढ़ प्रेम वाले, मंत्रणा को गुप्त रखने वाले, स्त्री-विलास के रस को तुच्छ समझने वाले, उत्तम

राज्य में अनुराग उत्पन्न करने वाले, प्रजा के प्रति माता के समान आचरण करने वाले, सारी उपधाओं--छल-कपट, घूस आदि--से रहित (निर्मल) बुद्धि वाले एवं मन्त्रणाशील उस मंत्री (श्रुतशील) पर राज्य विषयक प्रचुर चिन्ता का भार सौंपकर नूतन यौवन के प्रादुर्भाव से रमणीय, सुन्दर ललनाओं के नयन एवं हृदय को प्रिय, प्रियंगुलता के समान भासमान, कामदेव के सौन्दर्य को जीतने वाली, देवों और दानवों के सौभाग्य-यश को तिरस्कृत करने वाली, सभी लोगों के मन को विस्मित करने वाली, शोभायमान सौन्दर्यपुञ्ज (समुद्रजल-पक्ष में खारेपन) से सकल समुद्रों के जल को पराजित करने वाली और कान्ति से चन्द्रमा पर भी कटाक्ष करने वाली अवस्था में स्थित होकर सुन्दरियों के यौवनघन का सम्मान करता हुआ स्वयं निरन्तर समस्त सांसारिक सुखों के समूह का अनुभव करने लगा।

टिप्पणी--उपधा--छल-प्रपञ्च आदि। लावण्य--(१) सौन्दर्य, (२) खारेपन। लवणस्य भावः लावण्यम् लवण+ष्यञ्।

तथाहि, कदाचिदनुत्पन्नविषमरणो गरुड इवाहितापकारी हरिवाहनविलासमकरोत्। कदाचिच्चन्द्रमौलिरिव मदनबाणासनातिमुक्तशरसंछादितायां पर्वतभुवि विजहार। कदाचिदच्युत इव, शिशिरकमलाकरावगाहनोत्पन्नपुलककोरकिततनुरनन्तभोगभाक् सुखमन्वतिष्ठत्। कदाचिन्नलिनयोनिरिव राजसभावस्थितः प्रजाव्यापारमचिन्तयत्।

संस्कृत-व्याख्या--कदाचित्--कस्मिंश्चित्काले, गरुड इव--वैनतेय इव, अनुपन्नविषमरणः--अनुत्पन्नः न संजातः विषमः भयङ्करः रणः संग्रामः यस्य तादृशः, अहितापकारी--अहितानां शत्रूणाम् अपकारी अपकारपरायणः (सन्), हरिवाहनविलासं--हरेः अश्वस्य वाहनः रथः तेन विलासं विहारानन्दम्, अकरोत्--व्यदधात्। गरुडपक्षे--अनुत्पन्नविषमरणः--अनुत्पन्नं न संजातं विषेण गरलेन मरणं मृत्युः यस्य तादृशः, अहितापकारी--अहीनां सर्पाणां तापं तच्छीलः, हरिवाहनविलासं--हरेः विष्णोः वाहनविलासः यानलीला तम्, अकरोत्। कदाचित्, चन्द्रमौलिरिव--चन्द्रशेखरः शिव इव, मदनबाणासनातिमुक्त०--मदनः धत्तूरः बकुलो वा बाणः पुष्पविशेषः असनः अतिमुक्तः शरः मुञ्जः एतैः संछादितायां परिपूर्णायां पर्वतभुवि शैलभूमौ, विजहार--विहरणं कृतवान्। शिवपक्षे--

—मदनस्य कामस्य बाणासनेन धनुषा अतिमुक्ताः प्रक्षिप्ताः ये शराः बाणाः तैः संछादितायां व्याप्तायां, पर्वतभुवि—पार्वत्यां, विजहार । कदाचित्, अच्युत इव—विष्णुः इव, शिशिरकमलाकरावगाहन०—शिशिरः शीतलो यः कमलाकरः पद्माकरः तत्र अवगाहनेन स्नानेन उत्पन्नाः संजाताः ये पुलकाः रोमाञ्चाः तैः कोरकिता कुड्मलिता तनुः शरीरं यस्य तादृशः, अनन्तभोगभाक्—अनन्तान् असंख्यातान् भोगान् विलासान् भजति प्राप्नोति इति तादृशः, सुखम्—आनन्दम्, अन्वतिष्ठत्—अनुबभूव । अच्युतपक्षे—शिशिरः शीतलः यः कमलायाः लक्ष्म्याः करः पाणिः तस्य अवगाहनेन स्पर्शेन उत्पन्नाः संजाताः ये पुलकाः रोमाञ्चाः तैः कोरकिता कुड्मलिता तनुः शरीरं यस्य तादृशः, अनन्तस्य शेषनागस्य भोगं शरीरं भजतीति तादृशः, सुखम्, अन्वतिष्ठत् । कदाचित्, नलिनयोनिरिव—ब्रह्मा इव, राजसभावस्थितः—राजसभायां नृपसंसदि अवस्थितः विराजितः, प्रजाव्यापारम्—प्रकृतिकार्यम्, अचिन्तयत्—विचारयति स्म । ब्रह्मपक्षे—राजसभावस्थितः—राजसभावे रजोगुणमये भावे स्थितः वर्तमानः, प्रजाव्यापारं—प्रजोत्पत्तिरूपकार्यम्, अचिन्तयत् ।

हिन्दी-अनुवाद—जैसे कि, कभी गरुड की भाँति भयंकर युद्ध उत्पन्न न करने वाला तथा शत्रुओं का अपकार करने वाला वह (राजा) अश्व-रथ का आनन्द लेता था। गरुडपक्ष में—विष से मृत्यु को न प्राप्त करने वाला तथा साँपों को सन्ताप देने वाला गरुड विष्णु के वाहन की लीला को प्राप्त करता है। कभी शंकर की भाँति मदन, बाण, असन, अतिमुक्त तथा शर नामक वृक्षों से आच्छादित पर्वत-भूमि पर वह विहार करता था। शंकर-पक्ष में—कामदेव के धनुष-से छूटे हुए बाणों से पीडित पार्वती में विहार करते थे। कभी विष्णु के समान शीतल तथा कमलों से भरे तालाब में स्नान करने से उत्पन्न रोमाञ्च से कण्टकित शरीर वाला वह अनन्त भोगों का सेवन करता हुआ सुख प्राप्त करता था। विष्णु-पक्ष में—लक्ष्मी के हाथ से स्पर्श से उत्पन्न रोमाञ्च से पुलकित शरीर वाले होकर तथा अनन्त कणों वाले शेषनाग पर विराजमान होकर सुख प्राप्त करते थे। कभी ब्रह्मा के समान राजसभा में अवस्थित होकर वह प्रजा के कार्य का चिन्तन करता था। ब्रह्मा पक्ष में रजोगुण के भाव में स्थित होकर प्रजोत्पत्तिरूप कार्य करते थे।

टिप्पणी—गरुड:—गरुद्भिः पक्षैः डयते आकाशे गच्छति इति गरुडः। मदन—(१) मौलसिरी या धतूरा, (२) कामदेव। बाण—सरपत। असन—पीतसालवृक्ष। अतिमुक्त—माधवी लता या तिनिश वृक्ष या ताल। शर—सरकंडा या खस। यहाँ के गद्य में श्लिष्टोपमा अलंकार है।

कदाचिन्मयूर इव कान्तोन्नमत्पयोधरमण्डलिविलासेन हर्षमभजत्। कदाचिन्नक्षत्रराशिरिवाश्विन्या सेनया समन्वितो मृगानुसारी बहुशष्पवनमार्गं बभ्राम। कदाचिदाञ्जनेय इवाक्षविनोदमन्वतिष्ठत्। कदाचिद्वानरेश्वर इव सुग्रीवो वैदेहीति ब्रुवाणस्यालघुकाकुस्थस्यार्थिनः प्रार्थना क्रियतां सफलेति वानरपुंगवानादिदेश।

संस्कृत-व्याख्या—कदाचित्, मयूर इव—बर्हिण इव, कान्तोन्नमत्पयोधरमण्डलिविलासेन—कान्तायाः कामिन्याः उन्नमन्तौ उद्गच्छन्तौ यौ पयोधरौ कुचौ तत्र मण्डलिविलासः आलिंगनसुखं वक्रक्रीडा वा तेन हर्षम् आनन्दम्, अभजत्—प्राप्नोत्। मयूरपक्षे—कान्ता रम्या उन्नमन्त उद्गच्छन्तः ये पयोधराः मेघाः तैः यः मण्डलिविलासः मण्डलाकारनृत्यं तेन, हर्षम्, अभजत्। कदाचित्, नक्षत्रराशिरिव—नक्षत्राणां ताराणां राशिः समूहः इव, अश्विन्या—अश्वयुक्तया, सेनया—वाहिन्या, समन्वितः—समवेतः, मृगानुसारी—मृगान् पशून् अनुसरतीति तादृशः (सन्), बहुशष्पवनमार्गं—बहु प्रचुरं शष्पं घासः यस्मिन् तादृशं वनमार्गं विपिनपथं, बभ्राम—भ्रमति स्म। नक्षत्रराशिपक्षे—सेनया—इनेन सूर्येण सहिता सेना तया, अश्विन्या—अश्विनीनामकनक्षत्रेण समन्वितः—युक्तः, मृगानुसारी—मृगम्—मृगशीर्षं नक्षत्रम् अनुसरतीति तादृशः, बहुशः—प्रायेण, पवनस्य—वायोः, मार्गं—पथं, बभ्राम—भ्रमति स्म। कदाचित्, आञ्जनेय इव—हनूमान् इव, अक्षविनोदम्—अक्षैः पाशकैः विनोदं क्रीडाम्, अन्वतिष्ठत्—कृतवान्। आञ्जनेयपक्षे—अक्षविनोदम्—अक्षस्य रावणसुतस्य विनोदं वधम्, अन्वतिष्ठत्। कदाचित्, वानरेश्वरः—वानरराजः, सुग्रीव इव—बालिभ्रातेव, नरेश्वरः—नराधिपः, सुग्रीवः—शोभनग्रीवायुक्तः नलः, वै—ननं, देहि—प्रयच्छ, इति, ब्रुवाणस्य—प्रार्थयमानस्य, अलघुकाकुस्थस्य—अलघ्व्यां महत्यां काकौ भिन्नकण्ठध्वनौ तिष्ठतीति तस्य, अर्थिनः—याचकस्य, प्रार्थना—याचना, सफला—परिपूर्णा, क्रियतां—विधीयताम्, इति वा—एवं वा, नरपुंगवान्—

पुरुषश्रेष्ठान् प्रादिदेश--प्राज्ञापयामास। सुग्रीवपक्षे--वैदेही--प्रीता, इति ब्रुवाणस्य--वदतः, अलघुकाकुस्थस्य--अलघोः महतः काकुस्थस्य--रामस्य, अर्थिनः --प्रयोजनवतः, प्रार्थना, सफला, क्रियताम्, इति, वानरपुङ्गवान्--कपिश्रेष्ठान्, प्रादिदेश।

हिन्दी अनुवाद--जैसे मयूर सुन्दर उमड़ते हुए बादलों के समय गोलाकार में (चारों तरफ घूम-घूमकर) नाचता हुआ आनन्द का अनुभव करता है वैसे वह (राजा भी) किसी समय रमणियों के उत्तुंग स्तनों के विलास (आलिंगन, मर्दन आदि) से आनन्दानुभव करता था। जैसे नक्षत्रों का समूह सूर्य के साथ अश्विनी नक्षत्र से समन्वित होते हुए तथा मृगशिरा नक्षत्र का अनुसरण करते हुए बहुधा आकाश में भ्रमण करता है वैसे वह (भी) किसी समय घुड़सवार सेना से युक्त होकर मृगों का पीछा करते हुए अधिक घासों से युक्त वन-मार्ग में भ्रमण करता था। जैसे हनुमान् ने अक्षकुयमार का वध किया वैसे वह किसी समय पासों (द्यूत-क्रीडा) से विनोद करता था। जैसे वानरों के स्वामी सुग्रीव ने वैदेही (सीता) यह प्रलाप करते हुए प्रयोजनवान् राम का प्रयोजन सिद्ध किया जाय--यह आदेश वानर-श्रेष्ठों को दिया था वैसे नरेश्वर एवं सुन्दर गले वाला वह 'अवश्य दीजिए' इस प्रकार अत्यन्त नम्रता पूर्ण ध्वनि से बोलने वाले याचक की प्रार्थना सफल करो--ऐसा आदेश श्रेष्ठ पुरुषों (राजकर्मचारियों) को दिया।

टिप्पणी--सेनया--(१) सेना से, (२) सूर्य सहित। 'इनः सूर्य प्रभौ च' इत्यमरः। बहुशष्पवनमार्गम्--(१) बहुत घास वाले वन-मार्ग में, (२) बहुधा वायुमार्ग (आकाश) में। दूसरे अर्थ में 'बहुशः पवनमार्गम्' पाठ होगा। किन्तु इसमें रूपभेद होने पर भी श्रुति-साम्य के कारण कोई दोष नहीं है, ऐसा कवि-समय या कवि-सिद्धान्त है। जैसा कि चण्डदासकृत चण्डिकाचरित-महाकाव्य में श्लोक आया है--'पुष्पादपामिह सदाधिगमे समृद्ध्या पुष्पादपाः फलभराच्च विनम्रभावम्। पुष्पादपापि दधतो मुनिवत्सुजन्मा पुष्पादपाति मधु साधु मधुव्रतोघाः॥' यहाँ अयुक्पादों में षकार ही है और युक्पादों में विसर्जनीय या उपध्मानीय में से अन्यतर ही है षकार नहीं है परन्तु श्रुतिसाम्य के कारण कोई दोष नहीं है। 'शष्पं बालतृणं घासः' इत्यमरः। 'बहुशष्पवनमार्गम्' में 'अकर्म-

कधातुभिर्योगे देशः कालो भावो गन्तव्योऽऽवाच कर्मसंज्ञक इति वाच्यम्' इस वार्तिक से कर्मसंज्ञा–द्वितीया हुई ।

यहाँ के गद्य-खण्ड में श्लिष्टोपमा अलंकार है ।

कदाचिन्मकरकेतन इव सुमनसो मार्गणान् विधाय स्वगुणं कर्णपूरीचकार । कदाचिदम्भोनिधिरिवोच्चैः स्तननाभिरम्याः, कृतानिमेषनयनविभ्रमाः, सकन्दर्पाः सिषेवे वेलाविलासिनीः । कदाचिद्दशरथ इवायोध्यायां पुरि स्थितः सुमित्रोपेतो रममाणरामभरतप्रेक्षणेन क्षणमाह्लादमन्वभूत् । एवमस्य सकलजीवलोकसुखसन्तानमनुभवतो यान्ति दिनानि ।

संस्कृत-व्याख्या––कदाचित्, मकरकेतन इव––कामदेव इव, मार्गणान्––याचकान्, सुमनसः––मनोरथपूरणेन सौमनस्ययुक्तान्, विधाय––कृत्वा, स्वगुणं––स्वस्य गुणं त्यागरूपं, कर्णपूरीचकार––श्रोत्रावतंसीचकार । मकरकेतन-पक्षे––सुमनसः––पुष्पाणि, मार्गणान्––शरान्, विधाय, स्वगुणं––निजमौर्वीं, कर्णपूरीचकार––कर्णान्तिमाचकर्ष । कदाचित्, अम्भोनिधिरिव––जलधिरिव, उच्चैः स्तननाभिरम्याः––उच्चैः स्तनाभ्यां कुचाभ्यां नाभ्या––प्राण्यंगविशेषेण च रम्याः रमणीयाः, कृतानिमेषनयनविभ्रमाः––कृता विहिता अनिमेषाभ्यां––पक्ष्मपातशून्याभ्यां नयनाभ्यां––नेत्राभ्यां विभ्रमाः विलासाः याभिस्तादृश्यः, सकन्दर्पाः––सकामाः, वेलाविलासिनीः––वारस्त्रीः, सिषेवे––सेवितवान् । अम्भोनिधिपक्षे––उच्चैःस्तननाभिरम्याः––उच्चैः स्तननेन गर्जनेन अभिरम्याः रमणीयाः, कृतानिमेषनयनविभ्रमाः––कृतं विहितम् अनिमेषाणां मत्स्यानां नयनम् इतस्ततः प्रापणं यैः तादृशाः विभ्रमाः विविधाः भ्रमाः आवर्ताः यासु तादृश्यः, सकन्दर्पाः––कंजलं तस्य दर्पेण औद्धत्येन सहिताः, वेलाविलासिनीः––विलसन्त्यभीक्ष्णमिति विलासिन्यः ताः वेलाः अम्भोवृद्धीः, सेवते––सेवितवान् । कदाचित्, दशरथ इव––रामपिता इव, अयोध्यायां योद्धुमशक्यायां, पुरि––नगर्यां, स्थितः––विराजितः, सुमित्रोपेतः––शोभनसुहृद्भिः परिवृतः, रममाणराम-भरतप्रेक्षणेन––रममाणाः विलसन्त्यः रामाः सुन्दर्यः यत्र तादृशं यत् भरतं भरतनाट्यस्य प्रेक्षणेन अवलोकनेन, क्षणं––किञ्चित्कालं यावत्, आह्लादं––हर्षम्, अन्वभूत्––अनुबभूव । दशरथपक्षे––अयोध्यानाम्न्यां पुरि स्थितः, सुमि-

ऽपेतः--सुमित्रया लक्ष्मणमात्रा उपेतः युक्तः, रममाणरामभरतप्रेक्षणेन--रममाणः क्रीडन् यो रामः भरतश्च तयोः प्रेक्षणेन, क्षणम्, आह्लादम्, अन्वभूत् । एवम्—इत्थं, सकलजीवलोकसुखसन्तानं--सकलः निखिलः यः जीवलोकः संसारः तस्य यः सुखसन्तानः आनन्दविस्तारः तम्, अनुभवतः--प्राप्नुवतः, अस्य—नलस्य, दिनानि--दिवसाः, यान्ति--गच्छन्ति ।

हिन्दी अनुवाद--कभी जैसे कामदेव पुष्पों को बाण बनाकर अपने गुण (धनुष की प्रत्यञ्चा) को (अपने) कान का आभूषण बनाता है (अर्थात् कान तक खींचता है), वैसे वह (राजा नल भी) याचकों को प्रसन्न मन करके अपने (दान रूपी) गुण को (दूसरों के) कानों का आभूषण बनाता है (अर्थात् अपने गुणों को सबके कानों तक पहुँचाता है)। कभी जैसे समुद्र ऊँचे गर्जन से रमणीय, मछलियों को इधर-उधर पहुँचा देने वाले भँवरों को उत्पन्न करने वाली, जल के दर्प (औद्धत्य) से युक्त और शोभायमान जल-वृद्धियों का सेवन करता है वैसे वह भी उन्नत कुचों एवं नाभि से रमणीय, अपलक नेत्रों से विलास प्रकट करने वाली और कामवासना से युक्त वारांगनाओं का सेवन करता था। कभी जैसे सुमित्रा से युक्त दशरथ अयोध्यापुरी में रहते हुए क्रीडा-रत राम और भरत के देखने से क्षणभर आनन्दित होते थे, वैसे वह भी युद्ध द्वारा अजेय नगरी में रहते हुए सुन्दर मित्रों से समन्वित होकर क्रीडारत सुन्दरियों के भरतनाट्य देखने से क्षणभर आनन्दित होता था। इस प्रकार सम्पूर्ण जीवलोक की सुखपरम्परा का अनुभव करते हुए उसके दिन बीत रहे थे।

टिप्पणी—कमरकेतनः--मीन पताका वाला, कामदेव । मङ्कते इति मकम्, मकं राति ददातीति मकरः । मार्गण--(१) बाण, (२) याचक। 'मार्गणं याचनेऽन्वेषे मार्गणस्तु शरेऽर्थिनि' इति हैमः । सकन्दर्पाः--(१) सकाम, (२) जल के औद्धत्य (ज्वार) से युक्त । कम्=कुत्सितः दर्पः यस्य स कन्दर्पः, तेन सहिताः । कं=जलं, तस्य दर्पेण सहिताः । यहाँ सर्वत्र श्लिष्टोपमा अलंकार है।

अथ वर्षावर्णनम्

अथ कदाचिदुन्नतपयोधरान्तरपतद्धारावलीविराजिताः, कमलदलकान्तनयनाः, सुरचापचक्रवक्रभ्रुवः, विद्युन्मणिमेखलालंकारधारिण्यः,

शिञ्जानामुक्तकलहंसकाः, प्रौढकरेणुसंचारहारिण्यः, कम्रकन्धराः, तिरस्कृतशशाङ्ककान्तिकलापोच्चमुखमण्डलाः सकलजगज्जेगीयमान-गुणमिममनुपमरूपलावण्यराशिराजितं राजानमवलोकयितुमिवावत-रन्ति स्म वर्षाः ।

संस्कृत-व्याख्या—अथ—अनन्तरम्, कदाचित्, उन्नमत्पयोधरान्तरपतद्धारा-वलीविराजिताः—उन्नमताम् उद्गच्छतां पयोधराणां मेघानाम् अन्तरात् मध्यात् पतन्त्यः वर्षन्त्यः या धारावल्यः धाराश्रेणयः ताभिः विराजिताः सुशोभिताः, नायिका-पक्षे—उन्नमन्तौ उद्गच्छन्तौ यौ पयोधरौ कुचौ तयोः अन्तरे मध्ये पतन्ती लम्बमाना या हारावली मणिस्रक् तया विराजिताः अथवा अन्तरे मध्ये पतन्तः लम्बमानाः अतिसंहृतत्वादप्रविशन्तः इत्यर्थः हाराः मुक्तावल्यः यासां ताः तथा वलीभिः उदररेखाभिः विराजिताः, कमलदलकान्तनयनाः—कमलदलानां पद्मपत्राणां कान्तम् इष्टम् नयनम् आगमनम् प्रतिवाहनं यासां तादृश्यः, नायि-कापक्षे—कमलदलवत् पद्मपत्रवत् कान्तानि सुन्दराणि नयनानि नेत्राणि यासां तादृश्यः, सुरचापचक्रवक्रभ्रुवः—सुरचापचक्रम् इन्द्रधनुर्वलयमेव वक्र कुटिले भ्रुवौ यासां तादृश्यः, नायिका-पक्षे—सुरचापचक्रवत् वक्रे भ्रुवौ यासां तादृश्यः, विद्युन्मणिमेखलालंकारधारिण्यः—विद्युतः सौदामिन्यः एव मणिमेखलालङ्काराः रत्नकाञ्चीभूषणानि तद्धारिण्यः, नायिकापक्षे—विद्युत इव मणिमेखलालङ्काराः तेषां धारिण्यः, शिञ्जानामुक्तकलहंसकाः—शिञ्जानाः अव्यक्तशब्दं कुर्वाणाः तथा मुक्ताः मानसं प्रति प्रस्थापिताः कलहंसकाः कादम्बाः याभिः तादृश्यः, नायिकापक्षे—शिञ्जानौ शब्दायमानौ आमुक्तौ बद्धौ कलहंसकौ नूपुरौ यासां तादृश्यः, प्रौढकरेणुसंचारहारिण्यः—प्रौढेन प्रवृद्धेन केन जलेन रेणूनां धूलीनां सञ्चारम् उत्पतनं हरन्ति निवारयन्ति तच्छीलाः, नायिकापक्षे—प्रौढायाः विशालायाः करेण्वाः हस्तिन्याः संचारं गतिं हरन्तीति तादृश्यः गजगामिन्य इत्यर्थः, कम्रकन्धराः—कम्राः कमनीयाः कन्धराः मेघाः यासु तादृश्यः, (नायिका-पक्षे—कम्राः कमनीयाः कन्धराः ग्रीवाः यासां तादृश्यः, तिरस्कृतश-शाङ्ककान्तिकलापोच्चमुखमण्डलाः—तिरस्कृताः आच्छादिताः शशाङ्ककान्तयः चन्द्रिकाः यासु ताः कलापेषु वर्षागीतेषु उच्चानि ऊर्ध्वानि मुखमण्डलानि (गायि-कानां) वदनचक्रवालानि यासु ताश्च, नायिकापक्षे—तिरस्कृतः शशाङ्कस्य

चन्द्रस्य कान्तेः ज्योत्स्नायाः कलापः समूहः येन तत् तथाभूतम् उच्चम् उत्कृष्टम् उन्नतकपोलं वा मुखमण्डलम् वदनबिम्बं यासां ताः, वर्षाः——वर्षर्तुः नायिकाश्च, सकलजगज्जेगीयमानगुणं——सकलजगता सम्पूर्णसंसारेण जेगीयमानाः भूयोभूयः प्रशस्यमानाः गुणाः दयादाक्षिण्यादयः यस्य तादृशम्, अनुपमरूपलावण्यराशिराजितम्——अनुपमस्य अप्रतिमस्य रूपस्य सौन्दर्यस्य लावण्यस्य कान्तेश्च राशिना पुञ्जेन राजितं शोभितम्, इमम्——अमुम्, राजानं——नृपं नलमिति यावत्, अवलोकयितुं——द्रष्टुम्, इव, अवतरन्ति स्म——आगच्छन्ति स्म ।

हिन्दी-अनुवाद——अनन्तर कभी उमड़ते हुए बादलों के मध्य से गिरती हुई धारा के समूह से शोभित (नायिका-पक्ष में उन्नत स्तनों के बीच लटकती हुई हार-पंक्ति से शोभित), कमल-पत्रों के लिए अभीष्ट गमन वाली (नायिका-पक्ष में कमल-पत्र के समान नेत्रों वाली), चक्राकार इन्द्रधनुष रूपी टेढ़ी भौंहों वाली (नायिका-पक्ष में चन्द्राकार इन्द्रधनुष के समान वक्र भौंहों वाली, बिजली रूपी मणिनिर्मित करधनी धारण करने वाली (नायिका-पक्ष में बिजली की तरह (चमकीली) मणिनिर्मित करधनी धारण करने वाली), (रिमझिम या गड़गड़ाहट) शब्द करने वाली और कलहंसों को (मानसरोवर की ओर) छोड़ने या भेजने वाली, (नायिका-पक्ष में) मधुर अस्फुट शब्द करने वाले नूपुरों को पहने हुई), प्रचुर जल से धूल की उड़ान को रोकने वाली, (नायिका-पक्ष में प्रौढ हथिनी की चाल को हरने वाली (अर्थात् गजगामिनी), कमनीय जलधरों से युक्त (नायिका-पक्ष में सुन्दर ग्रीवा से युक्त) और चन्द्रमा की कान्ति को ढक देने वाली तथा वर्षागीतों में (मेघदर्शन के लिए लोगों के) मुख-मण्डलों को ऊपर की ओर करने वाली, (नायिका-पक्ष में चन्द्रमा के कान्तिकलाप को तिरस्कृत करने वाले उच्च मुखमण्डल से युक्त) वर्षायें (वर्षा ऋतु) सम्पूर्ण संसार के द्वारा अतिशयतापूर्वक गाये जाने वाले गुणों से युक्त तथा अनुपम रूप-लावण्य की राशि से शोभित उस राजा (नल) को देखने के लिए अवतीर्ण हुईं ।

टिप्पणी——इस अनुच्छेद में सभी स्त्रीलिंग विशेषण वर्षा और नायिका दोनों पक्षों में घटते हैं । मानो वर्षा रूप नायिका नल को देखने के लिए उतरी थी । यहाँ प्रस्तुत वर्षा में अप्रस्तुत नायिका के व्यवहार का समारोप होने से

समासोक्ति अलंकार है, उपमा और रूपक समासोक्ति का अंग हैं और 'अवलोकयितुमिव' में हेतूत्प्रेक्षा है।

यत्र च ।

आकर्ण्य स्मरयौवराज्यपटहं जीमूतनूत्नध्वनिं
नृत्यत्केकिकुटुम्बकस्य दधतं मन्द्रां मृदङ्गक्रियाम् ।
उन्मीलन्नवनीलकन्दलदलव्याजेन रोमाञ्चिता
हर्षेणेव समुच्छ्रिता वसुमती दध्रे शिलीन्ध्रध्वजान् ॥४०॥

अन्वय—नृत्यत्केकिकुटुम्बकस्य मन्द्रां मृदङ्गक्रियां दधतं स्मरयौवराज्यपटहं जीमूतनूत्नध्वनिम् आकर्ण्य उन्मीलन्नवनीलकन्दलदलव्याजेन रोमाञ्चिता हर्षेण इव समुच्छ्रिता वसुमती शिलीन्ध्रध्वजान् दध्रे ॥४०॥

संस्कृत-व्याख्या—नृत्यत्केकिकुटुम्बकस्य—नृत्यतः नृत्यं कुर्वतः केकिकुटुम्बकस्य मयूरमण्डलस्य, मन्द्रां—गम्भीरां, मृदङ्गक्रियां—मुरजव्यापारं, दधतं—धारयन्तं, स्मरयौवराज्यपटहं—स्मरस्य कन्दर्पस्य यौवराज्यं युवराजत्वं तस्य पटहम् आनकमूतं, जीमूतनूत्नध्वनिं—जीमूतानां मेघानां नूत्नध्वनिं नवीनगर्जितम्, आकर्ण्य—श्रुत्वा, उन्मीलन्नवनीलकन्दलदलव्याजेन—उन्मीलन्ति विकसन्ति यानि नवानि नूतनानि नीलानि हरितानि कन्दलानां नवाङ्कुराणां दलानि पत्राणि तेषां व्याजः छलं तेन, रोमाञ्चिता—पुलकिता, हर्षेण इव—प्रमोदेन इव, समुच्छ्रिता—प्रवृद्धा, वसुमती—पृथ्वी, शिलीन्ध्रध्वजान्—शिलीन्ध्रं गोमयच्छत्रिका एव ध्वजाः पताकाः तान्, दध्रे—धृतवती ॥४०॥

हिन्दी अनुवाद—और जहाँ (वर्षाकाल में), नाचती हुई मयूरमण्डली के लिए गंभीर मृदंग (की बोल) का काम करती हुई तथा कामदेव के युवराज-पद (पर अभिषेक के समय) का नगाड़ा बनी हुई मेघों की नवीन ध्वनि को सुनकर निकलते हुए नये एवं हरे अंकुरों के बहाने रोमाञ्चित हुई पृथिवी मानो हर्ष से परिपूर्ण होकर शिलीन्ध्रपुष्प (गोबरछत्ते) रूपी ध्वजाओं को धारण कर रही थी ॥४०॥

टिप्पणी—इस श्लोक का भाव यह है कि वर्षाकाल में कामदेव का यौवराज्याभिषेक हो रहा है, जिसमें मोरो की मण्डली नाच रही है, उसके लिए बादलों की नवीन ध्वनि मृदंग का काम दे रही है और बादलों का ही गर्जन

यौवराज्य के नगाड़े का कार्य पूर्ण कर रहा है, नवीन अंकुरों के बहाने वसुन्धरा रोमाञ्च व्यक्त कर रही है तथा प्रसन्नता के मारे शिलीन्ध्रध्वजों को धारण कर रही है।

यहाँ जीमूतध्वनि में पटहत्व का तथा शिलीन्ध्र में ध्वजत्व का आरोप होने से रूपक है, 'कन्दलव्याजेन' में अपह्नुति है, 'हर्षेणेव' में उत्प्रेक्षा है और मेघ के शब्द में मृदंग की क्रिया संभव नहीं है, इसलिए असंभव वस्तु के वर्णन द्वारा बिम्बप्रतिबिम्बभाव होने पर निदर्शना अलंकार भी है। इसमें शार्दूलविक्रीडित छन्द है। छन्द का लक्षण—'सूर्याश्वैर्यदि मः सजो सततगाः शार्दूलविक्रीडितम्' ॥४०॥

अपि च।

> **पर्णैः कर्णपुटायितैर्नवरसप्राग्भारविस्फारितैः**
> **शृण्वन्तो मधुरं द्युमण्डलमिलन्मेघावलीगर्जितम्।**
> **शाखाग्रग्रथमानसौरभभरभ्रान्तालिपालिध्वजा-**
> **स्तोषेणेव वहन्ति पुष्पपुलकं धाराकदम्बद्रुमाः ॥४१॥**

अन्वय—नवरसप्राग्भारविस्फारितैः कर्णपुटायितैः पर्णैः मधुरं द्युमण्डलमिलन्मेघावलीगर्जितं शृण्वन्तः शाखाग्रग्रथमानसौरभभरभ्रान्तालिपालिध्वजाः धाराकदम्बद्रुमाः तोषेण इव पुष्पपुलकं वहन्ति ॥४१॥

संस्कृत-व्याख्या—नवरसप्राग्भारविस्फारितैः—नवरसस्य नूतनवृष्टिजलस्य प्राग्भारः प्राचुर्यम् तेन विस्फारितानि विस्तारितानि तैः, कर्णपुटायितैः—श्रोत्रपुटवदाचरद्भिः, पर्णैः—दलैः, मधुरं—सरसं, द्युमण्डलमिलन्मेघावलीगर्जितं—द्युमण्डले आकाशमण्डले मिलन्ती संगच्छन्ती या मेघावली जलधरपङ्क्तिः तस्याः गर्जितं शब्दं, शृण्वन्तः—आकर्णयन्तः, शाखाग्रग्रथमान०—शाखाग्रेषु विटपाग्रभागेषु ग्रथमानाः मिलन्त्यः सौरभभरेण सौरभस्य सौगन्ध्यस्य भरेण भारेण भ्रान्ताः संचलिताः अलिपालयः भ्रमरपंक्तयः एव ध्वजाः पताकाः येषां तादृशाः, धाराकदम्बद्रुमाः—धाराख्यनीपवृक्षाः, तोषेण इव—प्रीत्या इव, पुष्पपुलकं—कुसुमरोमाञ्चं, वहन्ति—धारयन्ति ॥४१॥

हिन्दी अनुवाद—नूतन वर्षाजल के प्रचुर भार से फैले हुए पत्र रूप कर्णपुटों से आकाश-मण्डल में मिलती हुई मेघमाला के मधुर गर्जन को सुनते हुए,

डालियों के अग्रभाग में संलग्न सुगन्ध की प्रचुरता के कारण (ऊपर) मँडराती हुई भौंरों की पंक्तिरूप ध्वजा वाले धाराकदम्ब मानो प्रसन्नता से पुष्प रूपी रोमांच को धारण कर रहे थे ॥४१॥

टिप्पणी—इस श्लोक का भाव यह है कि वर्षाकाल में धारा कदम्ब के पत्ते सरस हो गये हैं और वे आकाश में मेघों की गर्जना को अपने पत्ते रूपी कानों से सुनते हैं। शाखाओं के अग्रभाग में परागपूर्ण पुष्पों पर भौंरे मँडरा रहे हैं। उन भौंरों की पंक्ति ध्वज की तरह प्रतीत होती है और वे धाराकदम्ब पुष्पित क्या हुए मानों प्रसन्नता से रोमांचित हो रहे हैं। वसन्त में खिलने वाले कदम्ब को धूलीकदम्ब और वर्षाकाल में खिलने वाले को धाराकदम्ब कहते हैं।

इस श्लोक में पर्णों में कर्णपुटत्व का और पुष्पों में पुलकत्व का आरोप होने से रूपकालंकार है और 'तोषेणेव' में उत्प्रेक्षा अलंकार है। इसमें भी शार्दूलविक्रीडित छन्द है ॥४१॥

अथ क्रमेण,

नीरं नीरजनिर्मुक्तं नीरजस्कं भुवस्तलम् ।
जातं जातिलतापुष्पगन्धान्धमधुपं वनम् ॥४२॥

अन्वय—नीरं नीरजनिर्मुक्तं, भुवः तलं नीरजस्कम्, वनं जातिलतापुष्पगन्धान्धमधुपं जातम् ॥४२॥

संस्कृत-व्याख्या—नीरं—जलं, नीरजनिर्मुक्तम्—नीरजैः कमलैः निर्मुक्तं रहितम्, जातम्—अभवत्, भुवः—पृथिव्याः, तलं—पृष्ठम्, नीरजस्कं—धूलिरहितम्, वनम्—अरण्यं, जातिलतापुष्पगन्धान्धमधुपं—जातीनां मालतीनां लता व्रततिः तस्याः पुष्पाणि कुसुमानि तेषां गन्धः सौरभं तेन अन्धाः उन्मत्ताः मधुपाः भ्रमराः यत्र तादृशं, जातम् ॥४२॥

हिन्दी अनुवाद—अनन्तर क्रमशः, जल कमलों से रहित, पृथ्वी का तल धूलि से शून्य और वन मालती लता के पुष्पों की सुगंध से मस्त भ्रमरों वाला हो गया ॥४२॥

टिप्पणी—नीरम्—जल। निर्गतः रः अग्निः यस्मात् तत् अथवा नयति प्रापयति स्थानात् स्थानान्तरम् इति नीरम्। नीरजम्—कमल। नीरे जातम्

नीरजम् । नीरजस्कम्—धूलिरहित । निः नास्ति रजः धूलिः परागो वा यत्र तत् ।

इस श्लोक में यमक, छेकानुप्रास तथा तुल्ययोगिता अलंकारों का संकर है । इसमें अनुष्टुप् छन्द है ।

अपि च ।

धुतकदम्बकदम्बकनिष्पतन्नवपरागपरागममन्थराः ।
हृततुषारतुषा रतिरागिणां प्रियतमा मरुतो मरुतो ववुः ।।४३।।

अन्वय—धुतकदम्बकदम्बकनिष्पतन्नवपरागपरागममन्थराः हृततुषारतुषाः रतिरागिणां प्रियतमाः मरुतः मरुतः ववुः ।।४३।।

संस्कृत-व्याख्या—धुतकदम्ब०—धुतानि कम्पितानि यानि कदम्बकदम्बकानि नीपवृक्षसमूहाः तेभ्यः निष्पततां निर्गच्छतां नवपरागाणां नूतनमकरन्दानां परागमेन सम्पर्केण मन्थराः मन्दगामिनः, हृततुषारतुषाः—हृताः अपहृताः तुषारस्य हिमस्य तुषाः कणाः यैः तादृशाः, रतिरागिणां—रतौ सम्भोगे रागिणः रागवन्तः तेषाम्, प्रियतमाः—दयिततमाः, मरुतः—पवनाः, मरुतः—पर्वतात्, ववुः—वान्ति स्म ।।४३।।

हिन्दी-अनुवाद—और भी, कम्पित कदम्ब-समूह से झरते हुए नवीन परागों के सम्पर्क से मन्दगामी, तुषार के कणों को लिये हुए और रति-अनुरागियों (कामुकों) के अत्यन्त प्रिय पवन पर्वत से बहने लगे ।।४३।।

टिप्पणी—मरुतः—पर्वत से । 'मरुर्ना धन्वधराधरौ' इति मेदिनी । इस पद्य में यमक अलंकार है और द्रुतविलम्बित छन्द है । इसका लक्षण—द्रुतविलम्बतमाह नभौ भरौ' ।।४३।।

ततश्च तिरस्कृततरणित्विषि, विगलद्वारिविप्रुषि, शान्तचातकतृषि, निर्वाणवारणवपुषि, मानिनीमानग्रहग्रन्थिमुषि, जनितजवासकशुषि, विधववधूविद्विषि, वर्धितमण्डूकहृषि, मुद्रितचन्द्रमसि, विद्राणपङ्कजसरसि, स्वाधीनप्रियप्रेयसि, प्रोषितकलहंसवयसि, नष्टनक्षत्रमण्डलमहसि, मेचकितनभसि, निष्पतन्नीपरजसि, स्फुटकुटजरजःपुञ्जपिञ्जरिताष्टदिग्भासि, भासुरसुरचापचक्रभृति, मयूरमदकृति, महिष-

शेषहृति, विस्तरत्सरिति, विद्योतमानविद्युति, वहन्मन्दमेघंकरमरुति, हृष्यत्कृषाणयोषिति, पुष्प्यत्केतकीगन्धपानमत्तमधुकृति, प्रोद्भूतभूरुहि, दरिद्रनिद्राद्रुहि, सगर्वगोदुहि, कदम्बस्तम्बालम्बिमधुलिहि, मुदितमद-नाट्टहासायमानघननादमुचि, पच्यमानजम्बूफलश्यामलितवनान्तररुचि, रचितपान्थसार्थशुचि, श्रूयमाणमदमधुरमयूरवाचि, विनिद्रकोशातकी-शालिनि, यूथिकाजालिनि, नवमालिकामालिनि, कन्दलभाजि, पच्य-मानजम्बूतरुवनराजिभ्राजि, भिक्षाक्षणक्षपितपरिव्राजि, शान्तसार-ङ्गरुजि, नीडनिर्माणाकुलबलिभुजि, सान्द्रेन्द्रगोपयुजि, श्च्योतत्तमाल-धारागृहसदृशि, श्यामायमानदशदिशि, दिवापि श्रूयमाणरजनिशङ्का-कुलचक्रवाकचक्रक्रुशि, शकटसंचाररुधि, पल्लवितवीरुधि, विश्रान्त-जिष्णुक्ष्मापालयुधि, क्षीणोक्षक्षुधि, क्षीरसमुद्रनिद्राणबाणबाहुच्छिदि, सिन्धुरोधोभिदि, दवदहननुदि, विरहिमनस्तुदि, जनितजनमुदि, तापिच्छच्छायानुच्छेदिनि, छन्नकुटीमध्यबध्यमानवाजिनि, विकसित-बकुलवनविराजिनि, सीरसीमन्तितग्रामसीमनि, विजयमानमनोजन्मनि, जाते जगज्जीविनि जीमूतसमये कदाचिदम्भसि दिवसे मृगयावन-पालकः प्रविश्य राजानं विज्ञापयामास ।

संस्कृत-व्याख्या—ततश्च—तदनन्तरं च, तिरस्कृततरणित्विषि—तिरस्कृताः मन्दीकृताः तरणेः सूर्यस्य: त्विषः कान्तः येन तादृशि, विगलद्वारिविप्रुषि—विगलन्त्यः पतन्त्यः वारीणां पयसां विप्रुषः बिन्दवः यत्र तादृशि, शान्तचातकतृषि—शान्ता अपगताश्चातकानां स्तोककानां तृषः पिपासाः यत्र तादृशि, निर्वाणवारणवपुषि—निर्वाणानि निर्वृत्तानि आनन्दितानीति यावत् वारणानां हस्तिनां वपूंषि शरीराणि यत्र तादृशे, मानिनीमानग्रहग्रन्थिमुषि—मानिनीनां मानवतीनां मानग्रहस्य मानस्वीकारस्य ग्रन्थिं दाढ्यं मुष्णाति अपहरतीति तादृशि, जनितजवासकशुषि—जनिता उत्पादिता जवासकानां बहुकण्टकानां शुट् शोषः येन तादृशे, विधव-वधूविद्विषि—विधवानां मृतपतिकानां वधूनां स्त्रीणां विद्विषि शत्रुभूते, वर्धित-मण्डूकहृषि—वर्धिता वृद्धिं नीता मण्डूकानां मेकानां हृट् हर्षो येन तादृशे, मुद्रितचन्द्रमसि—मुद्रितः मेघैः आच्छादितः चन्द्रमाः इन्दुः येन तादृशे—विद्राणपङ्कजसरसि—विद्राणानि म्लानानि पङ्कजसरांसि कमलसरोवराः यत्र तादृशे, स्वाधीनप्रियप्रेयसि—स्वाधीनाः निजवशे स्थिताः प्रियाः पतयः यासां

तासां प्रेयान् प्रियतरः तस्मिन्, प्रोषितकलहंसवयसि—प्रोषितानि कृतप्रवासानि मानसं प्रति गतानीत्यर्थः कलहंसवयांसि कादम्बपक्षिणो यत्र तादृशे, नष्टनक्षत्रमण्डलमहसि—नष्टम् अपगतं नक्षत्रमण्डलस्य तारागणस्य महः तेजो यत्र तादृशे, मेचकितनभसि—मेचकितं कृष्णीभूतं नभः आकाशः यत्र तादृशे, निष्पतन्नीपरजसि—निष्पतन्ति निर्गच्छन्ति नीपानां कदम्बानां रजांसि परागाः यत्र तादृशे, स्फुटकुटजरजःपुञ्जपिञ्जरिताष्टदिग्भासि—स्फुटानां विकसितानां कुटजानां गिरिमल्लिकानां रजसां परागाणां पुञ्जः राशिः तेन पिञ्जरिताः पीतवर्णमापादिताः याः अष्टौ दिशः ककुभः ताभिः भासते दीप्यते यः तादृशे, भासुरसूरचापचक्रभृति—भासुरं कान्तिमत् सुरचापचक्रम् इन्द्रधनुर्वलयं बिभर्ति धारयति इति तादृशे, मयूरमदकृति—मयूराणां बर्हिणां मदकृति हर्षजनके, महिषशोषहृति—महिषाणां सैरिभाणां शोषहृति कृशतानाशके, विस्तरत्सरिति—विस्तरन्त्यः विस्तारं गच्छन्त्यः सरितः नद्यः यस्मिन् तादृशे, वहन्मन्दमेघङ्करमरुति—वहन्तः संचरन्तः मन्दं यथा स्यात् तथा मेघङ्कराः घनोत्पादकाः मरुतः पवनाः यस्मिन् तादृशे, हृष्यत्कृषाणयोषिति—हृष्यन्तः प्रसीदन्त्यः कृषाणयोषितः कर्षकवनिताः यत्र तादृशे, पुष्यत्केतकीगन्धपानमत्तमधुकृति—पुष्यन्तीनां विकसन्तीनां केतकीनां क्रकचच्छदानां सूचिकापुष्पाणामित्यर्थः गन्धः आमोदः तस्य पानम् आस्वादः तेन मत्ताः उन्मत्ताः मधुकृतः भ्रमराः यस्मिन् तादृशे, प्रोद्भूतभूरुहि—प्रोद्भूताः उत्पन्नाः भूरुहाः वृक्षाः यत्र तादृशे, दरिद्रनिद्राद्रुहि—दरिद्राणां निर्धनानां निद्रायै स्वापाय द्रुह्यति द्वेष्टीति तादृशे, सगर्वगोदुहि—सगर्वाः गर्वयुक्ताः गोदुहः गोपालाः यस्मिन् तादृशे कदम्बस्तम्बालम्बिमधुलिहि—कदम्बानां नीपानां स्तम्बाः गुच्छाः तेषु आलम्बिनः आश्रिताः मधुलिहः भ्रमराः यस्मिन् तादृशे, मुदितमदनाट्टहासायमानघननादमुचि—मुदितस्य हृष्टस्य मदनस्य कन्दर्पस्य अट्टहासायमानः उच्चैर्हास्यवदाचरन् यो घननादः मेघगर्जितं तं मुञ्चतीति तादृशे, पच्यमानजम्बूफलश्यामलितवनान्तररुचि—पच्यमानैः परिपाकं प्राप्नुवद्भिः जम्बूफलैः जाम्बवैः श्यामलिता मेचकिता वनान्तरस्य अरण्यभागस्य रुक् कान्तिः यस्मिन् तादृशे, रचितपान्थसार्थशुचि—रचिता समुत्पादिता पान्थसार्थस्य पथिकसमूहस्य शुक् (प्रियतमावियोगजन्यः) शोको येन तादृशे, श्रूयमाणमदमधुरमयूरवाचि—श्रूयमाणा आकर्ण्यमाना मदेन आनन्देन मधुरा मनोहरा मयूराणां बर्हिणां वाक् वाणी यत्र तादृशे, विनिद्रकोशातकीशालिनि—विनिद्राः विकसिताः या कोशातक्यः

तोरीफलानि ताभिः शालते शोभते इति तादृशे, यूथिकाजालिनि—यूथिकानां मागधीलतानां जालं समूहः अस्यास्तीति तादृशे, नवमालिकामालिनि—नवमालिकानां मालिनि—नवमालिकानां सप्तलालतानां माला पंक्तिः अस्ति अस्येति तादृशे, कन्दलभाजि—कन्दलानि नवपलाशाङ्कुरान् भजते इति तादृशे, पच्यमानजम्बूतरुवनराजिभ्राजि—पच्यमानानां परिपाकं प्राप्नुवतां जम्बूतरूणां जाम्बववृक्षाणां वनराजिभिः काननश्रेणिभिः भ्राजते शोभते इति तादृशे, भिक्षाक्षणक्षपितपरिव्राजि—भिक्षायाः भैक्ष्यस्य क्षणम् अवसरः तस्मिन् क्षपिताः खेदिताः परिव्राजः संन्यासिनः येन तादृशे, शान्तसारङ्गरुचि—शान्ता अपगता सारङ्गाणां हरिणानां रुक् रोगः यस्मिन् तादृशे, नीडनिर्माणाकुलबलिभुजि—नीडनिर्माणे कुलायरचने आकुलाः व्याकुलाः बलिभुजः काकाः यस्मिन् तादृशे, सान्द्रेन्द्रगोपयुजि—सान्द्रैः बहुलैः इन्द्रगोपैः शक्रगोपैः युज्यते युक्तो भवति इति तादृशे, श्च्योतत्तमालधारागृहसदृशि—श्च्योतन्तः क्षरन्तः तमालाः तापिच्छाः एव धारागृहसदृशः धारायन्त्रतुल्याः यत्र तादृशे, श्यामायमानदशदिशि—श्यामायमानाः कृष्णायमानाः दश दशसंख्याकाः दिशः ककुभः यत्र तादृशे, दिवापि—दिनेऽपि, श्रूयमाणरजनिशङ्काकुलचक्रवाकचक्रक्रुशि—श्रूयमाणाः आकर्ण्यमानाः रजनिशङ्कया निशाभ्रमेण आकुलस्य व्यग्रस्य चक्रवाकचक्रस्य कोकसमूहस्य क्रुशः विलापाः यत्र तादृशे, शकटसंचाररुधि—शकटानाम् अनसां संचारं गमनं रुणद्धि निवारयतीति तादृशे, पल्लवितवीरुधि—पल्लविताः संजातकिसलयाः वीरुधः लताः यत्र तादृशे, विश्रान्तजिष्णुक्ष्मापालयुधि—विश्रान्ताः शान्ताः जिष्णूनां जयशीलानां क्ष्मापालानां भूपालानां युधः युद्धानि यत्र तादृशे, क्षीणोक्षक्षुधि—क्षीणा न्यूनतां गता उक्ष्णां बलीवर्दानां क्षुद् बुभुक्षा यत्र तादृशे, क्षीरसमुद्रनिद्राणबाणबाहुच्छिदि—क्षीरसमुद्रे दुग्धसागरे निद्राणः शयानः बाणबाहुच्छिद् बाणासुरभुजच्छेत्ता (विष्णुः) यत्र तादृशे, सिन्धुरोधोभिदि—सिन्धूनां सरितां रोधांसि तटानि भिनत्ति विदारयति इति तादृशे, दवदहननुदि—दवदहनः दावाग्निः तं नुदति निवारयतीति तादृशे, विरहिमनस्तुदि—विरहिणां वियोगिनां मनांसि चेतांसि तुदति व्यथयतीति तादृशे, जनितजनमुदि—जनिता उत्पादिता जनानां लोकानां मुत् हर्षः येन तादृशे, तापिच्छच्छायानुच्छेदिनि—तापिच्छानां तमालानां छाया अनातपः तस्याः अनुच्छेदः सातत्यमस्ति यत्र तादृशे, छन्नकुटीमध्यबध्यमानवाजिनि—छन्नानाम् आच्छादितानां कुटीनां कुटीराणां मध्ये

अभ्यन्तरे बध्यमाना: संयम्यमानाः वाजिनः घोटकाः यत्र तादृशे, विकसितबकुल-वनविराजिनि--विकसितानि प्रफुल्लानि यानि बकुलवनानि केसरसमूहाः तैः विराजते शोभते इति तादृशे, सीरसीमन्तितग्रामसीमनि--सीरेण लाङ्गलेन सीमन्तिता सीमया निर्धारिताः ग्रामसीमानः आवसथमर्यादाः येन तादृशे, विजय-मानमनोजन्मनि--विजयमानः उत्कर्षं लभमानः मनोजन्मा कामः यत्र तादृशे, जगज्जीविनि--जगत् संसारं जीवयति प्राणयति इति तादृशे, जीमूतसमये--वर्षाकाले, जाते--सम्भूते सति, कदाचित्--जातुचित्, अम्भसि--जलमये, दिवसे--दिने, मृगयावनपालकः--आखेटवनरक्षकः, प्रविश्य--अभ्यन्तरागत्य, राजानं--नृपं, विज्ञापयामास--निवेदितवान् ।

हिन्दी अनुवाद--तदनन्तर सूर्य की किरणों को आच्छादित करने वाले, जल की बूँदों को गिराने वाले, पपीहे की प्यास को बुझाने वाले, हाथियों के शरीर को शान्त करने वाले, मानिनियों के मानग्रहणरूप गाँठ को चुरा लेने या खोल देने वाले, जवासे को सुखा देने वाले, विधवा वधुओं के शत्रु, मेंढकों का आनन्द बढ़ाने वाले चन्द्रमा को आच्छादित करने वाले, मुरझाये हुए कमलों से युक्त तालाब वाले, स्वाधीन पतिवाली स्त्रियों के अत्यन्त प्रिय, कलहंस पक्षियों को प्रवास (मानसरोवर) में भेजने वाले, नक्षत्रमण्डल के तेज को नष्ट करने वाले, आकाश को काला कर देने वाले, झरते हुए कदम्ब के पराग वाले, खिले हुए कुटज-पुष्पों के पराग-पुञ्ज से आठो दिशाओं की आभा को पीली कर देने वाले, चमचमाते इन्द्रधनुष को धारण करने वाले, मयूरों को मतवाला करने वाले, भैंसों के शोष (दुर्बलता) का हरण करने वाले, नदियों को विस्तृत करने वाले, चमकती हुई बिजलियों वाले, मन्द मन्द बहते हुए मेघोत्पादक वायु वाले, किसानों की स्त्रियों को हर्षित करने वाले, खिले हुए केवड़े की गंध का पान करने से भौंरों को मदमस्त बनाने वाले, वृक्षों को उगाने वाले, दरिद्रों की निद्रा से द्रोह करने वाले (या गरीबों की नींद हराम करने वाले), ग्वालों को गर्वयुक्त करने वाले, कदम्ब के गुच्छों से लटकते हुए भौंरों वाले, मुदित कामदेव के अट्टहास के समान मेघों की ध्वनि को व्यक्त करने वाले, पकते हुए जामुन के फलों की कान्ति से वन की आभ्यन्तरिक कान्ति को श्यामल बना देने वाले, पथिक-समूह को शोक में डाल देने वाले, सुनाई पड़ती हुई मद से मधुर

मयूर-वाणी वाले, खिली हुई कोशातकी (तोरियों) से सुशोभित, यूथिका (जूही) लता के समूह वाले, नवमालिका की पंक्ति वाले, अंकुरों से युक्त, पकते हुए जामुन के वृक्षों की कतारों से सुशोभित, भिक्षा के (लिए निकलने के) समय संन्यासियों को खिन्न बनाने वाले, मृगों के रोगों को शान्त करने वाले, कौओं को घोंसले बनाने में व्यस्त करने वाले, इन्द्रगोप नामक कीड़ों (बीरबहूटियों) के आधिक्य से युक्त, धारागृह (फव्वारों) के समान चूते हुए तमाल वृक्षों वाले, दसो दिशाओं को श्यामल बना देने वाले, दिन में भी रात्रि की आशंका से व्याकुल चकवा पक्षियों के सुने जाते हुए विलाप वाले, बैल-गाड़ियों के आवागमन को रोक देने वाले, लताओं को पल्लवित करने वाले, विजय की अभिलाषा वाले राजाओं के युद्ध को रोक देने वाले, बैलों की भूख को क्षीण करने वाले, बाणासुर की बाहुओं का उच्छेद करने वाले विष्णु को क्षीरसागर में सुलाने वाले, नदियों के तटों को ढाहने वाले, दावाग्नि को बुझाने वाले, विरहियों के मन को व्यथित करने वाले, लोगों को आनन्दित करने वाले, तमाल वृक्षों की छाया को घनी करने वाले, छाई हुई छप्परों के भीतर बँधते हुए घोड़ों वाले, खिली हुई मौलसिरी के वन से सुशोभित, हल से ग्राम की सीमाओं को विभक्त करने वाले, कामदेव को विजयी बनाने वाले और संसार को जीवन देने वाले वर्षाकाल के आ जाने पर कभी जलमय दिन में आखेट वन के रक्षक ने प्रविष्ट होकर राजा से निवेदन किया।

टिप्पणी—दरिद्रनिद्राद्रुहि—दरिद्रों की नींद से द्वेष करने वाले, क्योंकि वर्षाऋतु में दरिद्रों की झोपड़ियाँ चूती रहती है, जिससे उनकी नींद में खलल पड़ता है। भिक्षाक्षणक्षपितपरिव्राजि—भिक्षा के समय संन्यासियों को दुःखी करने वाले। क्योंकि चतुर्मास में संन्यासी लोग एक ही स्थान में रहते हैं, अतः विभिन्न प्रकार के भोजन नहीं मिल पाते हैं अथवा भिक्ष-समय वर्षा होने से भिक्षा भी दुर्लभ हो जाती है, जिससे दुःखी होना स्वाभाविक है।

शूकरोत्पातवर्णनम्

देव,

किं स्यादञ्जनपर्वतः स्फटिकयोर्द्वन्द्वं दधद्दीर्घयो-
रम्भोमेदुरमेघ एष किमुत श्लिष्यद्बलाकाद्वयः ॥

शून्यः किं नु करेण कुञ्जर इति भ्रान्तिं समुत्पादयन्
दंष्ट्राद्वन्द्वकरालकालवदनः कोलः कुतोऽप्यागतः ।।४४।।

अन्वय—किम् एषः दीर्घयोः स्फटिकयोः द्वन्द्वं दधत् अञ्जन-पर्वतः स्यात् उत किं श्लिष्यद्बलाकाद्वयः अम्भोमेदुरमेघः स्यात्, किं नु करेण शून्यः कुञ्जरः स्यात् इति भ्रान्तिं समुत्पादयन् दंष्ट्राद्वन्द्वकरालकालवदनः कोलः कुतः अपि आगतः ।।४४।।

संस्कृत-व्याख्या—किम् एषः—अप्ययं, दीर्घयोः—विशालयोः, स्फटिकयोः—श्वेतप्रस्तरयोः, द्वन्द्वं—युग्मं, दधत्—धारयन्, अञ्जनपर्वतः—कज्जलगिरिः, स्यात्—भवेत्, उत—अथवा, किं, श्लिष्यद्बलाकाद्वयः—श्लिष्यत् संमिलत् बलाकाद्वयं बिसकण्ठिकायुगलं यत्र तादृशः, अम्भोमेदुरमेघः—अम्भसा सलिलेन मेदुरः सान्द्रस्निग्धः मेघो वारिदः स्यात्, किं नु, करेण—शुण्डादण्डेन, शून्यः—रहितः, कुञ्जरः—गजः, स्यात्, इति—एवं प्रकारेण, भ्रान्ति—सन्देहं, समुत्पादयन्—जनयन्, दंष्ट्राद्वन्द्वकरालकालवदनः—दंष्ट्रयोः दन्तविशेषयोः द्वन्द्वं युगलं तेन करालं भीषणं कालं कृष्णं वदनं मुखं यस्य तादृशः, कोलः—शूकरः, कुतः अपि—कस्मादपि स्थानात्, आगतः—सम्प्राप्तः ।।४४।।

हिन्दी अनुवाद—महाराज, क्या यह दो श्वेत पत्थरों को धारण किये हुए अंजन का पहाड़ है ? अथवा क्या यह दो बलाकाओं को साथ लिये हुए जल से भरा चिकना बादल है ? क्या सूंड़ से रहित हाथी है ? ऐसा भ्रम उत्पन्न करता हुआ दोनों बड़े दांतों से भीषण काले मुख वाला शूकर कहीं से आ गया है ।।४४।।

टिप्पणी—इस श्लोक में दो बड़े दांतों वाले एक जंगली शूकर का वर्णन करते हुए कवि कहता है कि उस शूकर को देखकर लोगों को सन्देह होने लगता है कि वह दो बड़े स्फटिकों को धारण करता हुआ अंजन-पर्वत या बलाकाओं से युक्त काला मेघ है, या सूंड़ से रहित हाथी है। मेघ, अञ्जन-पर्वत और हाथी शूकर-शरीर के उपमान हैं तथा स्फटिक, बलाका और हाथी के दांत सूकर के दांतों के उपमान हैं ।

इसमें सन्देहसंकर अलंकार है और शार्दूलविक्रीडित छन्द है ।।४४।।

ततश्चासौ,

भिन्दन् कन्दकसेरुकन्दलभृतः स्निग्धप्रदेशान् भुवो
भञ्जन्नञ्जनशैलशृङ्गसदृशः फुल्लल्लतामण्डपान् ।
मन्दं मन्दरलीलयाब्धिसदृशं मथ्नंश्च लीलासरः
क्रोडः क्रीडति भाययन्निव भवत्क्रीडावने रक्षकान् ॥४५॥

अन्वय——कन्दकसेरुकन्दलभृतः भुवः स्निग्धप्रदेशान् भिन्दन्, फुल्लल्लतामण्डपान् भञ्जन्, लीलासरः अब्धिसदृशं मन्दरलीलया मन्दं मथ्नन् च, अञ्जनशैलशृङ्गसदृशः क्रोडः भवत्क्रीडावने रक्षकान् भाययन् इव क्रीडति ॥४५॥

संस्कृत व्याख्या——कन्दकसेरुकन्दलभृतः——कन्दान् शूरणान् कसेरून् तृणकन्दान् कन्दलानि नवाङ्कुरान् बिभ्रति धारयन्तीति तादृशान्, भुवः पृथिव्याः, स्निग्धप्रदेशान्——रम्यस्थलानि, भिन्दन्——विदारयन्, फुल्लल्लतामण्डपान्——फुल्लन्त्यः विकसन्त्यः याः लताः व्रतत्यः तासां मण्डपाः निकुञ्जाः तान्, भञ्जन्——मर्दयन् त्रोटयन्नित्यर्थः, लीलासरः——लीलार्थं क्रीडार्थं सरः तडागः तत्, अब्धिसदृशं——सागरतुल्यं, मन्दरलीलया——मन्दराचलक्रीडया, मन्दं——शनैः शनैः, मथ्नन् च——आलोडयन् च, अञ्जनशैलशृङ्गसदृशः——कज्जल पर्वतशिखरतुल्यः, क्रोडः——शूकरः, भवत्क्रीडावने——भवदीयक्रीडोद्याने, रक्षकान्——वनपालान्, भाययन्——भीतियुक्तान् कारयन् इव——यथा, क्रीडति——खेलति ॥४५॥

हिन्दी अनुवाद——तदनन्तर कन्दों, कसेरुओं तथा नये कोमल अंकुरों को धारण करने वाले चिकने भू-प्रदेशों को खोदता हुआ, खिले हुए लता-मण्डपों को तोड़ता हुआ, लीला-सरोवर को समुद्र के समान मन्दराचल की लीला से धीरे-धीरे मथता हुआ अञ्जनपर्वत की चोटी जैसा वह शूकर आपके क्रीडावन में रक्षकों को डराता हुआ खेल रहा है ॥४५॥

टिप्पणी——इस श्लोक में 'शृङ्गसदृशम्' में उपमा, 'मन्दर लीलया' में निदर्शना, 'भाययन्निव' में उत्प्रेक्षा अलंकार हैं। फिर ये सब स्वभावोक्ति के अंग हैं, अतः संकर है। इसमें भी शार्दूलविक्रीडित छन्द है ॥४५॥

मृगया-विहार-निश्चयः

राजा तु तदाकर्ण्य चिन्तितवान्—

'अच्छाच्छैः शुकपिच्छगुच्छहरितैश्छन्ना वनान्तास्तृणैः
सेव्याः सम्प्रति सान्द्रचन्द्रकिकुलैरुत्ताण्डवैर्मण्डिताः ।
येषु क्षीरविपाण्डुपल्वलपयः कल्लोलयन्तो मनाग्
वाता वान्ति विनिद्रकेतकवनस्कन्धे लुठन्तः शनैः ।।४६।।

अन्वय—अच्छाच्छैः शुकपिच्छगुच्छहरितैः तृणैः छन्नाः उत्ताण्डवैः सान्द्रचन्द्रकिकुलैः मण्डिताः वनान्ताः सम्प्रति सेव्याः, येषु क्षीरविपाण्डुपल्वलपयः मनाक् कल्लोलयन्तः, विनिद्रकेतकवनस्कन्धे लुठन्तः वाताः शनैः वान्ति ।।४६।।

संस्कृत-व्याख्या—अच्छाच्छैः—अतिशयनिर्मलैः, शुकपिच्छगुच्छहरितैः—शुकानां कीराणां पिच्छगुच्छवत् पक्षसमूहवत् हरितैः हरितवर्णैः, तृणैः—शष्पैः, छन्नाः—आच्छादिताः, उत्ताण्डवैः—नृत्यद्भिः, सान्द्रचन्द्रकिकुलैः—सान्द्राः घनीभूताः ये चन्द्रकिणः मयूराः तेषां कुलानि समूहाः तैः, मण्डिताः—शोभिताः, वनान्ताः—वनोद्देशाः, सम्प्रति—अधुना, सेव्याः—सेवनीयाः (सन्ति), येषु—वनान्तेषु, क्षीरविपाण्डुपल्वलपयः—क्षीरवत् दुग्धवत् विपाण्डु धवलं पल्वलपयः तडागसलिलं, मनाक्—ईषत्, कल्लोलयन्तः—तरंगयन्तः, विनिद्रकेतकवनस्कन्धे—विनिद्राणि विकसितानि च तानि केतकवनानि केतकीपुष्पविपिनानि तेषां स्कन्धे प्रकाण्डे समूहे वा लुठन्तः—सञ्चरन्तः, वाताः—वायवः, शनैः—मन्दं मन्दं, वान्ति—प्रवहन्ति ।।४६।।

हिन्दी अनुवाद—वह सुनकर राजा सोचने लगा—'अत्यन्त स्वच्छ तथा तोतों के पंखों के गुच्छों के समान हरे तृणों से ढके हुए और उद्धत नृत्य करने वाले घने मयूरों के झुंड से शोभित वनप्रान्त इस समय सेवनीय हैं, जिनमें दूध के समान धवल छोटे सरोवर के जल को थोड़ा-सा तरंगित करते हुए एवं खिले हुए केवड़े के वन-समूह पर लोटते हुए वायु धीरे-धीरे बह रहे हैं ।।४६।।

टिप्पणी—इस श्लोक में 'शुकपिच्छगुच्छहरितैः तथा 'क्षीरविपाण्डु' इन दो उपमाओं की संसृष्टि है तथा अनुप्रास अलंकार भी है । इसमें शार्दूलविक्रीडित छन्द है ।।४६।।

माद्यन्ति च तेषु सम्प्रति प्रोथिनः तद्युज्यते विहर्तुम्' ।

इत्यवधारयन्नाहूय बाहुकनामानं सेनापतिमादिदेश—'भद्र, द्रुतमनुष्ठीयताम्, समादिश्यन्तां कृतवैरिविपत्तयः, पत्तयः, पर्याण्यन्तां मनस्तुरगास्तुरगाः, सज्जीक्रियन्तां निजवेगनिर्जितमातरिश्वानः श्वानः, समारोप्यन्तामपनीताहितायूंषि धनूंषि, गृह्यन्तां निर्मथितप्रोथियूथपाशाः पाशाः' इति ।

संस्कृत व्याख्या—तेषु च—वनान्तेषु, सम्प्रति—अधुना, प्रोथिनः—शूकरः, माद्यन्ति—मत्ता जायन्ते, तत्—तस्मात्, विहर्तुं—मृगयाविहारं कर्तुं, युज्यते—युक्तमस्ति ।

इत्यवधारयन्—इत्थं निश्चिन्वन्, बाहुकनामानं—बाहुकसंज्ञकं, सेनापतिं—चमूपतिम्, आहूय—आकार्य, आदिदेश—आज्ञापयामास । भद्र—कल्याणिन्, द्रुतं—त्वरितम्, अनुष्ठीयतां—क्रियतां, कृतवैरिविपत्तयः—कृता विहिता वैरिणां शत्रूणां विपत्तयः आपदः यैः तादृशाः, पत्तयः—पदातयः, समादिश्यन्ताम्—आज्ञाप्यन्ताम्, मनस्तुरगाः—मनः चित्तम् इव तुरं त्वरितं गच्छन्ति इति तादृशाः, तुरगाः—अश्वाः, पर्याण्यन्ताम्—पल्ययनैः योज्यन्ताम्, निजवेगनिर्जितमातरिश्वानः—निजवेगेन स्वकीयजवेन निर्जितः विजितः मातरिश्वा पवनः यैः तादृशाः, श्वानः—कुक्कुराः, सज्जीक्रियन्तां—संनद्धा विधीयन्ताम्, अपनीताहितायूंषि—अपनीतानि नाशितानि अहितानां शत्रूणाम् आयूंषि वयांसि यैः तादृशानि, धनूंषि—कार्मुकाणि, समारोप्यन्तां—समारोपितज्यानि अधिज्यानीत्यर्थः क्रियन्ताम्, निर्मथितप्रोथियूथपाशाः—निर्मथिता उन्मूलिताः प्रोथियूथपानां शूकरसमूहरक्षकाणाम् आशाः मनोरथाः यैः तादृशाः, पाशाः—जालानि, गृह्यन्ताम्—आदीयन्ताम् ।

हिन्दी अनुवाद—उन (वनप्रान्तों) में इस समय सूकर उन्मत्त हो रहे हैं, अतः शिकार खेलना ठीक है ।'

ऐसा निश्चय करके बाहुक नाम के सेनापति को बुलाकर आदेश दिया—'भद्र ! शीघ्रता करो, वैरियों पर विपत्ति लाने वाले पैदल सैनिकों को आज्ञा दे दो, मन के समान वेग वाले घोड़ों पर जीन कस दो, अपने वेग से वायु को

जीत लेने वाले कुत्तों को तैयार कर लो, शत्रुओं की आयु को हरने वाले धनुषों पर डोरी चढ़ा दो और शूकरराजों की आशा को मथ डालने वाले जालों को ले लो' ।

टिप्पणी—पर्याण्यन्ताम्—जीन या काठी कस दो । परितो यान्ति गच्छन्ति अनेन इति पर्याणम्, तत् करोति इति पर्याणयति पर्याणवत्+णिच्, मतुपो लोपः, ततः कर्मणि लोट्, यक्=पर्याण्यन्ताम् । यहाँ 'मनस्तुरगाः' में उपमा, अनेक क्रियाओं में एक ही कारक का प्रयोग होने से दीपक तथा 'पत्तयः—पत्तयः, तुरगाः—तुरगाः' इत्यादि में यमक अलंकार हैं ।

अथ मौलिमिलन्मुकुलितकरकमलयुगलेन सेनापतिना 'यदाज्ञापयति देवः' इत्यभिधाय त्वरया तथा कृते सति स्वयमपि,

निर्मांसं मुखमण्डले परिमितं मध्ये लघु कर्णयोः
स्कन्धे बन्धरमप्रमाणमुरसि स्निग्धं च रोमोद्गमे ।
पीनं पश्चिमपार्श्वयोः पृथुतरं पृष्ठे प्रधानं जवे
राजा वाजिनमारुरोह सकलैर्युक्तं प्रशस्तैर्गुणैः ॥४७॥

अन्वय—राजा मुखमण्डले निर्मांसम्, मध्ये परिमितम्, कर्णयोः लघुम्, स्कन्धे बन्धुरम्, उरसि अप्रमाणम्, रोमोद्गमे स्निग्धं, च पश्चिमपार्श्वयोः पीनम्, पृष्ठे पृथुतरम्, जवे प्रधानम्, सकलैः प्रशस्तैः गुणैः युक्तं वाजिनम् आरुरोह ॥४७॥

संस्कृत-व्याख्या—अथ—तदनन्तरं, मौलिमिलन्मुकुलितकरकमलयुगलेन—मौलौ मस्तके मिलत् संगच्छमानं मुकुलितं बद्धं सम्पुटितमित्यर्थः करकमलयुगलं हस्तारविन्दद्वयं यस्य तथाभूतेन, सेनापतिना, 'देवः—महाराजः, यत् आज्ञापयति —आदिशति, इति, अभिधाय—उक्त्वा, त्वरया—शैघ्र्येण, तथा कृते सति—तथैवानुष्ठिते सति, स्वयमपि—साक्षादपि,

राजा—भूपतिः, मुखमण्डले—आननचक्रवाले, निर्मांसम्—मांसरहितम्, मध्ये—मध्यभागे, परिमितं—स्वल्पप्रमाणं, कर्णयोः—श्रोत्रयोः, लघुं—ह्रस्वं, स्कन्धे—अंसे, बन्धुरम्—उन्नतोन्नतम्, उरसि—वक्षःस्थले, अप्रमाणं—विशालं, रोमोद्गमे—लोमोदये, स्निग्धं—चिक्कणं, च—तथा, पश्चिमपार्श्वयोः

—पश्चाद्भागयोः, पीनं—स्थूलं, पृष्ठे—पृष्ठभागे, पृथुतरं—विस्तृततरं, जवे—वेगे, प्रधानं—मुख्यं, सकलैः—समग्रैः, प्रशस्तैः—श्लाघ्यैः, गुणैः—अश्वोचित-वैशिष्ट्यैः, युक्तं—समन्वितं, वाजिनं—हयम्, आरुरोह—प्रारोहत् ॥४७॥

हिन्दी अनुवाद—अनन्तर सम्पुटित किये हुए (अपने) दोनों करकमलों को मस्तक से मिलाते हुए सेनापति ने 'महाराज की जो आज्ञा' यह कहकर शीघ्र वैसा ही किया और स्वयं भी—

राजा (नल) मुख-मण्डल पर मांस रहित, मध्यभाग में कृश, छोटे-छोटे कानों वाले, मनोहर कंधे वाले, विशाल वक्षः स्थल वाले, चिकने रोमों वाले, पिछले पार्श्वों में स्थूल, पृष्ठभाग में अत्यन्त विस्तृत, वेग में प्रधान तथा समस्त प्रशंसनीय गुणों से युक्त अश्व पर सवार हो गये ॥४७॥

टिप्पणी—इस श्लोक में स्वभावोक्ति अलंकार है और शार्दूलविक्रीडित छन्द है ॥४७॥

मृगयावर्णनम्

आरुह्य च क्रमेण कार्दमिककर्पटावनद्धमूर्धजैर्दण्डखण्डपाणिभिः क्रूरकर्मोचिताकारैर्वागुरावाहिभिरनन्तैः कृतान्तदूतैरिव पाशहस्तैः पार्पद्धिकैरनुगम्यमानः, दूरादुन्नमितकन्धरैस्तथोर्ध्वकर्णसंपुटैरकाण्डोड्डीनप्राणैरिव वनप्राणिभिराकर्ण्यमानहर्षितहयहेषारवः, पवनकम्पिततरुशाखाग्रपल्लवव्याजेन दूरादेवोत्क्षिप्तहस्ताभिरुड्डीयमानशकुनिकुलकोलाहलच्छलेन भयान्निवार्यमाण इव वनदेवताभिः अभिमुखागतैरुन्मिषत्तरुपुष्पप्रकरमकरन्दबिन्दुवर्षवाहिभिर्वनविनाशशङ्कितैरर्घ्यमिवोपपादयद्भिरुपरुध्यमान इव वनमारुतैः, उन्निद्रसान्द्रकुसुमकेसराङ्कुरजालजटिलाभिर्भयादुद्गतरोमाञ्चप्रपञ्चाभिरिवोद्भ्रान्तभृङ्गरवगद्गदरुदितेन निषिध्यमान इव वनवीरुद्भिः, उद्भिन्नभास्वदमन्दकन्दलावलोकनेनानन्द्यमानः श्वानुगतोऽप्यश्वानुगतः सगजमप्यगजं तद्वनमासमाद ।

संस्कृत-व्याख्या—आरुह्य—आरोहणं कृत्वा, क्रमेण—क्रमशः, कार्दमिककर्पटावनद्धमूर्धजैः—कार्दमिकेन कृष्णवर्णेन कर्पटेन वस्त्रेण अवनद्धाः संयमिताः

मूर्धजाः केशाः यैः तादृशैः, दण्डखण्डपाणिभिः--दण्डस्य खण्डः लगुडः पाणौ हस्ते येषां तादृशैः, क्रूरकर्मोचिताकारैः—क्रूरकर्मोचितः नृशंसकार्ययोग्यः आकारः आकृतिर्येषां तादृशैः, वागुरावाहिभिः--वागुरां मृगबन्धनीं वहन्ति धारयन्ति इति तथोक्तैः, अनन्तैः--असंख्यकैः, कृतान्तदूतैः--यमराजसन्देशहरैः, इव--यथा, पाशहस्तैः--जालपाणिभिः, पापर्द्धिकैः--मृगयालुभिः, अनुगम्यमानः--अनुस्त्रियमाणः, दूरात्—विप्रकृष्टस्थानादेव, उन्नमितकन्धरैः--उन्नमिता ऊर्ध्वीकृता कन्धरा ग्रीवा यैः तादृशैः, तथा--तेनैव प्रकारेण, ऊर्ध्वकर्णसम्पुटैः--ऊर्ध्वौ उद्गतौ कर्णयोः श्रोत्रयोः सम्पुटौ सम्पुटकौ येषां तादृशैः, अकाण्डोड्डीनप्राणरिव --अकाण्डे अनवसरे उड्डीना उत्पतिताः प्राणाः असवो येषां तादृशैरिव, वनप्राणिभिः--अरण्यजीवधारिभिः, आकर्ण्यमानहर्षितहयहेषारवः--आकर्ण्यमानः श्रूयमाणः हर्षितानां प्रसन्नानां हयानां घोटकानां हेषारवः हेषायाः ह्रेषायाः रवः शब्दः यस्य तादृशः, पवनकम्पिततरुशाखाग्रपल्लवव्याजेन—पवनेन वायुना कम्पिताः तरुशाखाग्रपल्लवाः वृक्षविटपाग्रकिसलयाः तेषां व्याजेन मिषेण, दूरादेव --विप्रकृष्टादेव, उत्क्षिप्तहस्ताभिः--उत्क्षिप्ताः उपरिकृताः हस्ताः कराः याभिः तादृशीभिः, वनदेवताभिः—अरण्यदेवीभिः, उड्डीयमानशकुनिकुलकोलाहलच्छलेन—उड्डीयमानानाम् उत्पततां शकुनिकुलानां पक्षिसमूहानां कोलाहलस्य कलकलस्य छलेन व्याजेन, भयात्—भीतेः, निवार्यमाण इव—निरुध्यमान इव, अभिमुखागतैः—अभिमुखं सम्मुखम् आगतैः प्राप्तैः, उन्मिषत्तरुपुष्पप्रकरमकरन्दबिन्दुवर्षवाहिभिः—उन्मिषन्ति विकसन्ति यानि तरुणां वृक्षाणां पुष्पाणि कुसुमानि तेषां प्रकराः समूहाः तेषां ये मकरन्दबिन्दवः परागकणास्तेषां वर्षं वृष्टिं वहन्ति धारयन्ति इति तादृशैः, वनविनाशशङ्कितैः—वनविनाशस्य विपिनध्वंसस्य शंका सन्देहः संजातो येषां तादृशैः, अर्घ्यमिव—पूजनसामग्रीमिव, उपपादयद्भिः— उपहरद्भिः, वनमारुतैः—अरण्यपवनैः, उपरुध्यमान इव—प्रार्थ्यमाण इव, उन्निद्रसान्द्रकुसुमकेसराङ्कुरजालजटिलाभिः—उन्निद्राणाम् उद्गतानां सान्द्राणां घनानां कुसुमकेसराङ्कुराणां पुष्पकिञ्जल्कनवोद्भिदानां जालेन समूहेन जटिलाभिः परिपूर्णाभिः, भयात्—साध्वसात् उद्गतरोमाञ्चप्रपञ्चाभिः--उद्गतः प्रकटीभूतः रोमाञ्चानां रोमोद्गमानां प्रपञ्चः समूहः यासां तादृशीभिः, इव, वनवीरुद्भिः—अरण्यलताभिः, उद्भ्रान्तभृङ्गरवगद्गदरुदितेन—उद्भ्रान्तानाम्

उच्चलितानां भृङ्गाणां द्विरेफाणां रवः शब्दः एव गद्गदरुदितम् अस्पष्टध्वनिविलपितं तेन, निषिध्यमान इव—निवार्यमाण इव, उद्भिन्नभास्वदमन्दकन्दलावलोकनेन—उद्भिन्नानि प्रस्फुटितानि भास्वन्ति प्रस्फुरन्ति अमन्दानि तीव्राणि यानि कन्दलानि नवशाखाङ्कुराः शिलीन्ध्रपुष्पाणि वा तेषां विलोकनेन दर्शनेन, आनन्द्यमानः—आह्लाद्यमानः, श्वानुगतः अपि—श्वभिः कुक्कुरैः अनुगतः अनुसृतः अपि, अश्वानुगतः—न श्वभिः कुक्कुरैः अनुगतः इति विरोधः अश्वैः हयैः अनुगतः इति तत्परिहारः, सगजमपि—गजैः हस्तिभिः सहितमपि, अगजं—हस्तिरहितमिति विरोधः अगः सर्वतः तत्र जातम् इति तत्परिहारः, तद्वनं—तदरण्यम्. आससाद—प्राप्तवान् ।

हिन्दी अनुवाद—घोड़े पर चढ़कर क्रमशः, काले या नीले कपड़े से बंधे हुए बालों वाले, डंडे हाथ में लिये, क्रूर कर्म के अनुरूप आकृति वाले, जाल लिये हुए तथा असंख्य यमराज के दूतों की तरह हाथ में पाश लिये हुए शिकारियों से अनुसरण किया जाता हुआ; गर्दन उठाये हुए तथा कर्ण-संपुट को ऊँचे किये हुए वन के प्राणियों द्वारा, जिनके प्राण मानो असमय में ही उड़ चले हों, दूर से ही सुनी जाती हुई हर्षित घोड़े की हिनहिनाहट वाला; वायु से कम्पित तरुशाखाग्रों के पत्तों के बहाने दूर से ही हाथ उठाये हुए वनदेवताओं के द्वारा उड़ते हुए पक्षि-समूह के कोलाहल के छल से मानो भय के मारे रोका जाता हुआ; सामने से आते हुए, खिलते तरुपुष्पों के पराग-बिन्दुओं की वर्षा को ढोते हुए तथा वन-विनाश से सशंकित होकर मानो अर्घ्य चढ़ाते हुए वन-वायुओं के द्वारा घेरा जाता हुआ; विकसित घने पुष्पों के परागांकुर-समूह से जटिल तथा भयवश मानो रोमांचित-सी वन-लताओं के द्वारा घबराये हुए भौंरों की भनभनाहट रूपी गद्गद रोदन से मानो मना किया जाता हुआ; खिले हुए और चमकते हुए शिलीन्ध्र-पुष्पों के दर्शन से आनन्दित होता हुआ और श्वानुगत होता हुआ भी अश्वानुगत (कुत्तों से अनुसृत होने पर भी कुत्तों से अनुसृत नहीं—यह विरोध और कुत्तों से अनुसृत होने पर भी अश्वों से अनुसृत—यह उसका परिहार) राजा सगज होते हुए भी अगज (हाथियों से युक्त होने पर भी हाथियों से रहित—यह विरोध और हाथियों से युक्त होने पर भी पर्वतजन्य या पर्वत की तलहटी में विद्यमान—यह उसका परिहार) वन में पहुँच गया ।

टिप्पणी--अगजम्--(१) गज से रहित, (२) अग=पर्वत से उत्पन्न। इस गद्य-खण्ड के अन्त में विरोधाभास तथा अन्यत्र उत्प्रेक्षा, अपह्नुति आदि अलंकार हैं।

ततश्च केचिदुद्यत्परश्वधा गणपतयः, केऽपि दृष्टसिंहिकासुतविक्रमाः शशधराः, केऽपि पाशपाणयो जम्बुकदिक्पालाः, केऽपि हरिमार्गानुसारिणो बलभद्राः, केऽपि चक्रपाणयो मधुसूदनाः, केऽपि शिवागमावर्तिनो रौद्राः, केऽप्याहिताग्नयो विप्रलोकाः, केऽपि खण्डिताञ्जनाधरप्रवालाः प्रभञ्जनाः, केऽप्युत्खातदन्तिदन्तमुष्टयो निस्त्रिंशाः तस्य पृथ्वीपतेराकुलितश्वापदाः पदातयो वनं रुरुधुः।

संस्कृत-व्याख्या--ततश्च--तदनन्तरं च, तस्य--प्रसिद्धस्य, पृथ्वीपतेः--राज्ञः, केचित्--केऽपि, उद्यत्परश्वधाः--उद्यन्तः पलायमानाः परश्वधाः परे उत्कृष्टाः श्वानो ये तान् दधति धारयन्ति इति तादृशाः, गणपतयः--दलनायकाः, गणेश-पक्षे--उद्यत्परश्वधाः--उद्यन्तः सन्नद्धाः परश्वधाः आयुधविशेषा येषां तादृशाः, गणपतयः--गणनायकाः, केऽपि--केचित्, दृष्टसिंहिकासुतविक्रमाः--दृष्टः अवलोकितः सिंहिकासुतस्य केसरिणीपुत्रस्य (सिंहस्येति यावत्) विक्रमः पराक्रमः यैः तादृशाः, शशधराः--मृगग्राहिणः, पक्षे--दृष्टसिंहिकासुतविक्रमाः--दृष्टः सिंहिकासुतस्य राहोः विक्रमः यैः तादृशाः, शशधराः चन्द्रमसः, केऽपि, पाशपाणयः--पाशहस्ताः, जम्बुकदिक्पालाः--जम्बुकानां शृगालानां दिशं ककुभं पालयन्ति प्रतीक्षन्ते इति तादृशाः, पक्षे--जम्बुकदिक्पालाः--जम्बुको वरुणः तस्य दिशं प्रतीचीं पालयन्ति रक्षन्ति इति तादृशाः, पाशपाणयः--वरुणाः, केऽपि, हरिमार्गानुसारिणः--हरीणां मृगाणां मार्गम् अनुसरन्तीति तादृशाः, बलभद्राः--बलेन भद्राः शक्ताः प्रतिबलशालिन इति यावत्, पक्षे--हरिमार्गानुसारिणः--कृष्णमतानुयायिनः, बलभद्राः--बलदेवाः, केऽपि, चक्रपाणयः--चक्रं रथाङ्गं पाणौ करे येषां तादृशाः, मधुसूदनाः--मधु क्षौद्रं सूदयन्ति क्षारयन्ति इति तादृशाः, पक्षे--चक्रपाणयः--सुदर्शनचक्रहस्ताः, मधुसूदनाः--मधुनामकदैत्यविनाशकाः विष्णवः, केऽपि, शिवागमावर्तिनः--शिवानां शृगालीनाम् आगमम् आगमनम् आवर्तन्ते प्रतीक्षन्ते इति तादृशाः, रौद्राः--भीषणाः, पक्षे--शिवागमावर्तिनः--शिवागमानां शैवशास्त्राणाम् आवर्तिनः पुनः पुनः पाठशीलाः,

रौद्राः—शैवाः केऽपि, आहिताग्नयः—आहिताः गृहीताः अग्नयः वह्नयः यैः तादृशाः, विप्रलोकाः—वीन् पक्षिणः प्रलोकयन्ति पश्यन्तीति तादृशाः पक्षिणाम् आखेटका इत्यर्थः, पक्षे—आहिताग्नयः—अग्निहोत्रिणः, विप्रलोकाः—ब्राह्मणजनाः, केऽपि, खण्डिताञ्जनाधरप्रवालाः—खण्डिताः त्रोटिताः। अञ्जनस्य पक्षिविशेषस्य अधरप्रवालाः अवोलम्बमानपुच्छाग्राः यैः तादृशाः अथवा खण्डिताः अञ्जनवृक्षस्य अधरप्रवालाः अधः पल्लवान्यैः तादृशाः, प्रभञ्जनाः—प्रकर्षेण भञ्जकाः, पक्षे—खण्डितः दृष्टः अञ्जनायाः स्वप्रियायाः अधरपंल्लवः निम्नोष्ठकिसलयः यैः तादृशाः, प्रभञ्जनाः—वाताः, केऽपि, उत्खातदन्तिदन्तमुष्टयः—उत्खाताः उच्छिन्नाः दन्तिदन्ताः गजरदनाः मुष्टिषु संग्राहेषु येषां तादृशाः, निस्त्रिंशाः—क्रूराः, पक्षे—उत्खातदन्तिदन्तमुष्टयः—उत्खातानाम् उत्पाटितानां दन्तिदन्तानां मुष्टिः त्सरुः येषु तादृशाः, निस्त्रिंशाः—खड्गाः, आकुलितश्वापदाः—आकुलिताः उद्वेजिताः श्वापदाः हिंस्रजन्तवो यैः तादृशाः, पदातयः—पादचारिणः (पत्तयः आखेटसहायाश्च), वनम्—अरण्यं, रुरुधुः—वेष्टयामासुः।

हिन्दी अनुवाद—तदनन्तर उस राजा के, हिंसक जन्तुओं को व्याकुल करने वाले पैदल सैनिकों ने वन को घेर लिया। उन (पैदलों) में कोई तेज दौड़ने वाले उत्तम कुत्तों को साथ लिये दलपति (पक्ष में—परशु (कुठार) उठाये हुए गणेश) थे; कोई सिंहिनी के पुत्रों का पराक्रम देख चुकने वाले खरगोशधारी पक्षा में—राहु का पराक्रम देख चुकने वाले चन्द्रमा) थे; कोई पाश हाथ में लिये हुए सियारों की दिशा (राह) जोहने वाले (पक्ष में—पाश हाथ में लिये हुए पश्चिम दिशा के दिक्पाल वरुण) थे; कोई सिंह के मार्ग का अनुसरण करने वाले अत्यन्त बलशाली (पक्ष में—श्रीकृष्ण के मार्ग का अनुसरण करने वाले बलराम) थे; कोई चक्र हाथ में लिये शहद चुआने वाले (पक्ष में—सुदर्शनचक्रधारी विष्णु) थे; कोई गीदड़ियों के आने की प्रतीक्षा करने वाले भयंकर (पक्ष में—शैव दर्शन की आवृत्ति करने वाले शैवमतानुयायी) थे; कोई अग्नि (मशाल) लिये हुए पक्षियों के देखने या खोजने वाले (पक्ष में—अग्निहोत्री ब्राह्मण) थे; कोई अंजन नामक पक्षी की लंबी पूंछ नोचने वाले या अंजन वृक्ष के निचले पत्तों को तोड़ने वाले विध्वंसक (पक्ष में—अंजना (नामक अपनी प्रिया) के प्रवालतुल्य अधर को खंडित करने वाले वायु) थे; कोई उखाड़े

हुए हाथियों के दांतों को मुट्ठी में लिये क्रूर (पक्ष में—उखाड़े गये हाथी दांत की मूठ वाले खड्ग) थे ।

टिप्पणी—यहां के गद्य-खंड में विशेष्य और विशेषण दोनों पदों में श्लेष है, अतएव विषय—पदाति का ग्रहण करने पर भी उससे पहले ही गणपति आदि की प्रतीति हो जाने के कारण अतिशयोक्ति अलंकार है ।

ततश्च तैः क्रियन्ते विकलभा वननिकुञ्जाः कुञ्जराश्च, ध्रियन्तेऽनेकधारयातिपातिनः खड्गाः खड्गिनश्च, कृष्यन्ते कूजन्तः कोदण्डदण्डा गण्डकाश्च, विक्षिप्यन्ते परितः शराः शरभाश्च, भज्यन्ते तरवस्तरक्षवश्च ।

संस्कृत-व्याख्या—ततश्च—तदनन्तरं च, तैः—पदातिभिः वननिकुञ्जाः—अरण्यगुल्माः कुञ्जराश्च गजाश्च, विकलभाः विकला भा येषां तादृशाः विगतकान्तयः (वननिकुञ्जाः) विगताः विनष्टाः कलभाः शावकाः येषां तादृशाः (कुञ्जराः), क्रियन्ते—विधीयन्ते, अनेकधारयातिपातिनः—अनेकधारया उभयतो धारयेत्यर्थः अतिपातिनः आक्रामकाः, खड्गाः—असयः, अनेकधा बहुप्रकारेण रयेण वेगेन अतिपातिनः आक्रामकाः, खड्गिनश्च—प्रौढगण्डकाश्च, ध्रियन्ते—गृह्यन्ते, कूजन्तः—शब्दायमानाः, कोदण्डदण्डाः—धनुर्यष्टयः, गण्डकाश्च—बालखड्गिनश्च, कृष्यन्ते—आकृष्यन्ते, शराः—बाणाः, शरभाश्च—अष्टापदमृगाश्च, परितः—इतस्ततः, विक्षिप्यन्ते—विप्रकीर्यन्ते, तरवः—वृक्षाः, तरक्षवश्च—चित्रकाश्च, भज्यन्ते—त्रोट्यन्ते ।

हिन्दी अनुवाद—तदनन्तर वे पैदल (सैनिक) वन-निकुंजों को श्रीहीन तथा हाथियों को बच्चों से हीन करने लगे, दोनों तरफ से चोट करने वाली तलवारों को तथा अनेक प्रकार से वेग-पूर्वक आक्रमण करने वाले गैंड़ों को पकड़ने लगे, शब्द करते हुए धनुर्दण्डों को तथा छोटे गैंड़ों को खींचने लगे, चारों ओर बाणों और शरभों (आठ पैर वाले मृगों) को बिखेरने लगे तथा वृक्षों और चीतों को तोड़ने लगे ।

टिप्पणी—यहां के गद्य-खण्ड में श्लेषानुप्राणित तुल्ययोगिता अलंकार है ।

क्षणेन च पतन्ति पीवरा वराहाः, सीदन्ति दन्तिनः, विरसं रसन्ति सातङ्का रङ्कवः, प्रकाशैलं शैलं भयादारोहन्ति रोहिताः, शरसंघात-

घूर्णिता यान्ति महीं महिषाः, दुर्गसंश्रयं श्रयन्ते तरलितनेत्राश्चित्रकाः, त्वरिततरं तरन्तीवोत्पतन्तो नभसि निजजवनिर्जिततुरंगाः कुरङ्गाः ।

संस्कृत व्याख्या—क्षणेन च—सहसैव च, पीवराः—स्थूलाः, वराहाः—शूकराः, पतन्ति—भूशायिनो भवन्ति, दन्तिनः—गजाः, सीदन्ति—क्लिश्यन्ते, सातङ्काः—त्रस्ताः, रङ्कवः—मृगाः, विरसं—नीरसं कटुकमिति यावत्, रसन्ति—शब्दायन्ते, रोहिताः—रोहितमृगाः, भयात्—भीतेः, प्रकाशैलं—प्रकाशाः स्पष्टाः एलाः तदाख्यलताः यस्मिन् तादृशं, शैलं—पर्वतम्, आरोहन्ति—आरुढा भवन्ति, शरसंघातघूर्णिताः—शरसंघातेन बाणसमूहेन घूर्णिताः व्याकुलिताः, महिषाः—सैरिभाः, महीं—पृथ्वीं, यान्ति—गच्छन्ति भूमौ पतन्तीत्यर्थः, तरलितनेत्राः—कातराक्षाः, चित्रकाः—तरक्षवः, दुर्गसंश्रयं—कोटसंरक्षणं, श्रयन्ते—आश्रयत्वेन गृह्णन्ति, निजजवनिर्जिततुरङ्गाः—निजजवेन स्ववेगेन निर्जिताः परास्ताः तुरङ्गाः हयाः यैः तादृशाः, कुरङ्गाः—हरिणाः, त्वरिततरं—शीघ्रतरम्, उत्पतन्तः—उच्छलन्तः, नभसि—आकाशे, तरन्ति इव—प्लवनं कुर्वन्तीव ।

हिन्दी-अनुवाद—और क्षण भर में ही मोटे सूकर धराशायी होने लगे, हाथी खिन्न होने लगे, त्रस्त मृग बेसुरा शब्द करने लगे, भय से रोहित मृग प्रकट इलायची लताओं वाले पर्वत पर चढ़ने लगे, बाणों के प्रहार से चक्कर खाये हुए भैंसे भूमि पर पड़ने लगे, चंचल नेत्रों वाले चीते (गुफा आदि रूप) दुर्ग का आश्रय लेने लगे और अपने वेग से घोड़ों को जीत लेने वाले हरिण अत्यन्त शीघ्रता से उछलते हुए मानो आकाश में तैरने लगे ।

टिप्पणी—इस गद्य-खण्ड में 'वरा—वरा, दन्ति—दन्ति' इत्यादि में यमक अलंकार है और 'तरन्तीव' में उत्प्रेक्षा है ।

तत्र च व्यतिकरे,

जाताकस्मिकविस्मयैः किमिदमित्याकर्ण्यमानः सुरैः
सन्त्रासोज्झितकर्णतालचलनान् दिग्दन्तिनः कम्पयन् ।
जन्तूनां जनितज्वरः स मृगयाकोलाहलः कोऽप्यभूद्
येनेदं स्फुटतीव निर्भरभृतं ब्रह्माण्डभाण्डोदरम् ।।४८।।

अन्वय––जाताकस्मिकविस्मयैः सुः किम् इदम् इत्याकर्ण्यमानः सन्त्रासोज्झितकर्णतालचलनान् दिग्दन्तिनः कम्पयन्, जन्तूनां जनितज्वरः सः कोऽपि मृगयाकोलाहलः अभूत्, येन निर्भरभृतम् इदं ब्रह्माण्डभाण्डोदरं स्फुटति इव ।।४८।।

संस्कृत-व्याख्या––तत्र च व्यतिकरे––तथाविधे व्यापारे, जाताकस्मिकविस्मयैः––जातः उत्पन्नः आकस्मिकः अकस्मादागतः विस्मयः आश्चर्यं येषां तादृशैः, सुरैः––देवैः, किम् इदम्––किम् एतत्, इति, आकर्ण्यमानः––श्रूयमाणः, सन्त्रासोज्झितकर्णतालचलनान्––सन्त्रासात् भयात् उज्झितं परित्यक्तं कर्णतालयोः श्रोत्रयोः चलनं संचारो यैः तादृशान्, दिग्दन्तिनः––दिग्गजान्, कम्पयन्––वेपयन्, जन्तूनां––प्राणिनां, जनितज्वरः––जनितः उत्पादितः ज्वरः सन्तापो येन तादृशः, सः––पूर्वोक्तः, कोऽपि––अनिर्वचनीयः, मृगयाकोलाहलः––आखेटकलकलः, अभूत्––उदपद्यत, येन––कोलाहलेन, निर्भरभृतं––निर्भरम् अतिशयं यथा स्यात् तथा भृतं पूरितम्, इदं––दृश्यमानं, ब्रह्माण्डभाण्डोदरं––जगद्रूपं पात्रजठरं, स्फुटति इव––विदीर्यत इव ।।४८।।

हिन्दी अनुवाद––ऐसा घटित होने पर, एकाएक आश्चर्य से चकित हुए देवताओं द्वारा 'यह क्या' इस प्रकार सुना जाता हुआ, डर के मारे तालपत्र जैसे कानों का चलाना छोड़े हुए दिग्गजों को कँपाता हुआ, प्राणियों को सन्ताप उत्पन्न करने वाला वह कोई अनोखा शिकार का कोलाहल हुआ, जिससे अत्यन्त भर जाने पर इस ब्रह्माण्डरूप पात्र का भीतरी भाग फटने-सा लगा ।।४८।।

टिप्पणी––इस श्लोक का भाव यह है कि जैसे किसी बरतन में आवश्यकता से अधिक वस्तु ठूंसने पर वह फट जाता है उसी तरह इस ब्रह्माण्डरूपी पात्र में मृगया का कोलाहल इतना अधिक फैल गया कि समा न सकने के कारण ब्रह्माण्डभाण्ड मानो फटने लगा। इसमें स्वभावोक्ति तथा उत्प्रेक्षा अलंकारों का अंगांगिभाव संकर है तथा शार्दूलविक्रीडित छन्द है ।।४८।।

शूकर-दर्शनम्

राजाप्येकशरप्रहारपातितमत्तमातङ्गः सर्वतो विहारिहरिहरिणशशकशम्बरवराहहननहेलया विचरन्नितस्ततस्तरुणतरतमालमञ्जरी-

जालनीलोद्घुषितस्कन्धकेसरम्, ऊर्ध्वस्तब्धकर्णसम्पुटम्, अश्वचक्राय क्रुध्यन्तम्, आघूर्णितघोणम्, अनवरतकृतघनघोरघर्घररवम्, उत्क्षिप्त-पुच्छगुच्छम्, अभिमुखमेकस्मिन्नतिसान्द्रभद्रमुस्तास्तम्बभाजि पङ्किल-पल्वलप्रदेशे तं शूरशूकरमपरमिव दवदहनदग्धाद्रिमद्राक्षीत् ।

संस्कृत-व्याख्या--राजापि--भूपतिरपि, एकशरप्रहारपातितमत्तमातङ्गः--एकस्यैव शरस्य बाणस्य प्रहारेण पातनेन पातिताः भूलुण्ठिताः कृताः मत्तमातङ्गाः मदोन्मत्तगजाः येन तादृशः, सर्वतः--चतुर्दिक्षु, विहारिहरिहरिणशशकशम्बर-वराहहननहेलया--विहारिणः विहरणशीलाः ये हरयः सिंहाः हरिणाः मृगाः शशकाः मृदुलोमानः शम्बराः मृगविशेषाः वराहाः शूकराः तेषां हननहेलया वधक्रीडया, इतस्ततः, विचरन्--भ्रमन्, तरुणतरतमालमञ्जरीजालनीलोद्घुषित-स्कन्धकेसरम्--तरुणतराः परिपक्वाः याः तमालमञ्जर्यः तापिच्छतरुवल्लर्यः तासां जालेन समूहेन नीलाः कृष्णवर्णाः उद्घुषिताः ऊर्ध्वमुखाः स्कन्धकेसराः अंससटाः यस्य तादृशम्, ऊर्ध्वस्तब्धकर्णसम्पुटम्--ऊर्ध्वम् उपर्युत्थितं स्तब्धं निश्चलं च कर्णयोः श्रोत्रयोः सम्पुटं युगलं यस्य तादृशम्, अश्वचक्राय--हयसमूहाय, क्रुध्यन्तं--कोप कुर्वन्तम्, आघूर्णितघोणम्--आघूर्णिता निरन्तरं चलायमाना घोणा नासिका यस्य तादृशम्, अनवरतकृतघनघोरघर्घररवम्--अनवरतं निरन्तरं कृतः विहितः घनः सान्द्रः घोरः भयंकरःघर्घररवः घर्घरशब्दः येन तादृशम्, उत्क्षिप्तपुच्छगुच्छम्--उत्क्षिप्तः ऊर्ध्वीकृतः पुच्छस्य बालधेः गुच्छः स्तबकः येन तादृशम्, अभिमुखं--सम्मुखम्, एकस्मिन्--कस्मिंश्चित्, अतिसान्द्रभद्रमुस्तास्तम्बभाजि--अतिसान्द्रायाः गाढतमायाः भद्रमुस्तायाः एतदाख्यवनस्पतेः स्तम्बं गुच्छं भजतीति तादृशे, पङ्किलपल्वलप्रदेशे--पङ्किले कर्दमयुक्ते पल्वस्य अल्पसरसः प्रदेशे भूमौ, तं--पूर्वोक्तं, शूरशूकरं--वीरवराहम्, अपरम्--इतरम्, दवदहनदग्धाद्रिमिव--दावाग्निदग्धपर्वतमिव, अद्राक्षीत्--दृष्टवान् ।

हिन्दी अनुवाद--राजा ने भी एक बाण के प्रहार से मतवाले हाथी को गिराकर सब ओर विचरण करने वाले सिंह, हरिण, खरगोश, शम्बरमृग तथा सूकरों की वधक्रीडा के साथ इधर-उधर घूमते हुए, अत्यन्त परिपक्व तमाल वृक्ष की मंजरियों के समूह से काले तथा ऊपर को उठे हुए कंधे पर के बालों

वाले, ऊर्ध्वमुख एवं निश्चल कर्णसम्पुट वाले, घोड़ों पर क्रोध करते हुए, नाक (थूंथनी) को फड़फड़ाते हुए, निरन्तर बादल के समान भयंकर घर्घर शब्द करते हुए, गुच्छाकार पुच्छ को ऊपर उठाये हुए सामने एक अत्यन्त घनी नागरमोथे की झाड़ी वाले पंकिल जलाशय प्रदेश में दावाग्नि से दग्ध एक दूसरे पहाड़ जैसे उस सूकर को देखा ।

टिप्पणी——इस गद्यखण्ड में स्वभावोक्ति अलंकार है ।

शरवर्षणं द्वन्द्वयुद्धं च

दृष्ट्वा च रचितशरसन्धानलाघवो राघव इव राक्षसेश्वरस्य तस्योपरि परिणद्धविविधपत्रैः पतत्रिभिरभ्यवर्षत् । तत्र च व्यतिकरे,

किमश्वः पार्श्वेषु प्लवनचतुरः किं नु नृपतिः
शरान्मुञ्चन्नुच्चैश्चलतरकराकृष्टधनुषा ।
किमालोलः कोलः परिहृतशरः शौर्यरसिको
न जानीमस्तेषां क इह परमो वर्ण्यत इति ।।४९।।

अन्वय——किम् पार्श्वेषु प्लवनचतुरः अश्व।, किं नु चलतरकराकृष्टधनुषा उच्चैः शरान् मुञ्चन् नृपतिः, किम् परिहृतशरः शौर्यरसिकः आलोलः कोलः, न जानीमः इह तेषां कः परमः इति वर्ण्यते ।।४९।।

संस्कृत-व्याख्या——दृष्ट्वा च——अवलोक्य च, रचितशरसन्धानलाघवः—— रचितः कृतः शरसन्धानस्य बाणारोपणस्य लाघवः तत्परता येन तादृशः (नलः), राघवः——रामचन्द्रः, इव, राक्षसेश्वरस्य——रावणस्य, तस्य——शूकरस्य, उपरि, परिणद्धविविधपत्रैः——परिणद्धानि बद्धानि विविधानि अनेकानि पत्राणि पक्षाः येषु तादृशैः, पतत्रिभिः——शरैः, अभ्यवर्षत्——वर्षा चकार । तत्र च व्यतिकरे—— एवंविधव्यापारे,

किम्, पार्श्वेषु——अन्तिकेषु, प्लवनचतुरः——प्लवने उत्कूर्दने चतुरः निपुणः, अश्वः——घोटकः, किनु——किंवा, चलतरकराकृष्टधनुषा——चलतराभ्यां चञ्चलतराभ्यां कराभ्यां हस्ताभ्याम् आकृष्टं यद् धनुः कार्मुकं तेन, उच्चैः——अत्यधिकं, शरान्——बाणान्, मुञ्चन्——वर्षन्, नृपतिः——राजा, किम्, परिहृतशरः——परि-

हृताः निवारिताः शराः बाणाः येन तादृशः, शौर्यरसिकः—अतिशयशूरः, आलोलः—चञ्चलः, कोलः—वराहः, न जानीमः—न विद्मः, इह—अत्र स्थले, तेषाम्—अश्वनृपवराहाणां मध्ये, कः, परमः—श्रेष्ठः, वर्ण्यते—कीर्त्यते, इति ।।४६।।

हिन्दी-अनुवाद—(उस सूकर को) देखकर फुर्ती से धनुष पर बाण चढ़ाता हुआ राजा, जैसे राम ने रावण पर बाणवर्षा की थी, उसी प्रकार उस सूकर पर बँधे हुए अनेक पंखों वाले बाणों की वर्षा करने लगा। वैसा करने पर—

वया पार्श्व भागों में (इर्द-गिर्द) कूदने में निपुण अश्व अथवा अत्यन्त चञ्चल हाथ से खींचे गये धनुष से अत्यधिक बाण-वर्षा करता हुआ राजा अथवा बाणों से अपने को बचाता हुआ शौर्य-रसिक अतिचंचल शूकर—इनमें से किसे उत्कृष्ट वर्णित किया जाय, यह हमारी समझ में नहीं आता ।।४६।।

टिप्पणी—इस श्लोक में 'तीनों में कौन उत्कृष्ट है' यह सन्देह होने से सन्देहालंकार तथा विशेषणों का साभिप्राय होने से परिकर अलंकार हैं, फिर इन दोनों में अंगांगिभाव संकर है। इसमें शिखरिणी छन्द है। इसका लक्षण—'रसै रुद्रैश्छिन्ना यमनसभला गः शिखरिणी' ।।४६।।

अपि च—

अजनि जनितपृथ्वीमण्डलोत्पादकम्पं
किमपि चलितशैलं द्वन्द्वयुद्धं तयोस्तत् ।
स्खलिततुरगवेगो विस्मयेनैष यस्मिन्
दिनपतिरपि शौर्याश्चर्यसाक्षी बभूव ।।५०।।

अन्वय—जनितपृथ्वीमण्डलोत्पादकम्पं चलितशैलं तयोः तत् किमपि द्वन्द्वयुद्धम् अजनि, यस्मिन् विस्मयेन एष स्खलिततुरगवेगः दिनपतिः अपि शौर्याश्चर्यसाक्षी बभूव ।।५०।।

संस्कृत-व्याख्या—जनितपृथ्वीमण्डलोत्पादकम्पं—जनितः रचितः पृथ्वी-मण्डले भूवलये उत्पादैः पादप्रहारैः कम्पः वेपथुः येन तादृशं, चलितशैलं—चलिताः कम्पिताः शैलाः पर्वताः यस्मिन् तादृशं, तयोः—भूपशूकरयोः, तत्—पूर्वोक्तं, किमपि—अनिर्वचनीयं, द्वन्द्वयुद्धं—युग्मसम्प्रहारः, अजनि—अजायत,

यस्मिन्—द्वन्द्वयुद्धे, विस्मयेन--आश्चर्येण, एषः--अयं, स्खलिततुरगवेगः--स्खलितः निरुद्धः तुरगाणां घोटकानां वेगः जवः येन तादृशः, दिनपतिः अपि--सूर्यः अपि, शौर्याश्चर्यसाक्षी--शौर्यस्य वीरतायाः आश्चर्यस्य विस्मयस्य साक्षी साक्षाद् द्रष्टा बभूव--अभवत् ॥५०॥

हिन्दी अनुवाद--और भी, चरण-प्रहार से भूमण्डल में कम्प (भूकम्प) उत्पन्न कर देने वाला तथा पहाड़ों को चलायमान कर देने वाला उन दोनों (राजा और वराह) का वह अनोखा द्वन्द्वयुद्ध हुआ, जिसमें आश्चर्य के कारण (अपने) घोड़ों के वेग को रोककर सूर्य भी पराक्रम और आश्चर्य के (अथवा अद्भुत वीरता के) प्रत्यक्ष द्रष्टा हुए ।।५०।।

टिप्पणी--इस श्लोक में सूर्य के स्खलिततुरगवेगत्व का सम्बन्ध न होने पर भी उसके सम्बन्ध का वर्णन होने से अतिशयोक्ति अलंकार है और मालिनी छन्द है। मालिनी का लक्षण--'ननमयययुतेयं मालिनी भोगिलोकैः' ।।५०।।

शूकरजयो राज्ञो विश्रामश्च

अथ कथमपि नाथं प्रोथियूथस्य जित्वा
ज्वरित इव विशालं सालसः सालमूले ।
सुखमभजत राजा राजमानः श्रमाम्भः-
कणकलितकपोलालोललीलालकेन ।।५१।।

अन्वय--अथ विशालं प्रोथियूथस्य नाथं कथमपि जित्वा ज्वरित इव सालसः श्रमाम्भः कणकलितकपोलालोललीलालकेन राजमानः राजा सालमूले सुखमभजत ।।५१।।

संस्कृत व्याख्या--अथ--अनन्तरं, विशालं--पृथुलं, प्रोथियूथस्य--वराहसार्थस्य, नाथं--स्वामिनं, कथमपि--केनापि प्रकारेण, जित्वा--विजित्य, ज्वरित इव--संजातज्वर इव, सालसः--श्लथीभूतः, श्रमाम्भः कणकलितकपोलालोललीलालकेन--श्रमाम्भः कणैः श्रान्तिजनितस्वेदजललवैः कलितौ युक्तौ यौ कपोलौ गण्डप्रदेशौ तयोः आलोलेन चञ्चलेन लीलालकेन विलासपूर्णकुन्त-

लेन, राजमानः—शोभमानः, राजा—नलः, सालमूले—सर्जतरोरधस्तात्, सुखम् ——आनन्दम्, अभजत—असेवत ॥५१॥

हिन्दी अनुवाद——अनन्तर विशाल शूकरराज को किसी तरह जीतकर ज्वरपीडित के समान अलसाया हुआ तथा परिश्रम के कारण उत्पन्न पसीने की बूंदों से युक्त कपोलों पर चंचल एवं लीलामय घुंघराले बालों से शोभायमान राजा सालवृक्ष के नीचे आराम करने लगा ॥५१॥

टिप्पणी—प्रोथियूथस्य——सूकरों के झुंड का । √प्रोथ्+अच्=प्रोथः= घोणा, प्रशस्तः प्रोथः अस्ति अस्य इति प्रोथी प्रोथ+इनि, प्रोथिनां यूथम् प्रोथियूथम् (ष० त०), तस्य । ज्वरित—ज्वरग्रस्त । ज्वर+इतच् ।

इस श्लोक में 'ज्वरित इव' में उत्प्रेक्षा अलंकार है, 'राजा——राज, लालोलली—लाल' में छेकानुप्रास है, 'साल—साल' में यमक है और थकार आदि की बार-बार आवृत्ति होने से वृत्त्यनुप्रास है; फिर इनकी संसृष्टि हो जाती है । इसमें भी मालिनी छन्द है ॥५१॥

तत्र स्थितं श्रममुकुलितनयनारविन्दम्, आन्दोलयन्तः कुसुमिततरून्, तरलयन्तः शिखिशिखण्डमण्डलानि, ताण्डवयन्तस्तनुलतापल्लवनिवहान्, वहन्तो वहन्निर्झरजलशिशिरशीकरनिकरान्, करालयन्तः कुटजकुड्मलानि, मकरन्दबिन्दुमुचो मन्दमानन्दयामासुः कम्पितनीपवनाः पवनाः ।

संस्कृत व्याख्या——तत्र—सालमूले, स्थितं—निषण्णं, श्रममुकुलितनयनारविन्दं—श्रमेण श्रान्त्या मुकुलिते अर्धनिमीलिते नयनारविन्दे कमललोचने यस्य तादृशम् (राजानम्), कुसुमिततरून्—पुष्पितवृक्षान्, आन्दोलयन्तः——संचालयन्तः, शिखिशिखण्डमण्डलानि——शिखिनां मयूराणां शिखण्डमण्डलानि बर्हचक्राणि, तरलयन्तः—चञ्चलीकुर्वन्तः, तनुलतापल्लवनिवहान्——तनुलतानां लघुवल्लरीणां पल्लवनिवहान् किसलयसमूहान्, ताण्डवयन्तः——नर्तयन्तः, वहन्निर्झरजलशिशिरशीकरनिकरान्——वहतां प्रस्यन्दमानानां निर्झरजलानां स्रोतोवारीणां शिशिरशीकरनिकरान् शीतलकणसमूहान्, वहन्तः——धारयन्तः, कुटजकुड्मलानि ——कुटजानां गिरिमल्लिकानां कुड्मलानि कोरकाणि, करालयन्तः——संचालयन्तः, मकरन्दबिन्दुमुचः——परागकणवर्षिणः, कम्पितनीपवनाः——कम्पितानि चालितानि

नीपवनानि कदम्बकाननानि यैः तादृशाः, पवनाः--वायवः, मन्दं--शनैःशनैः, आनन्दयामासुः--सुखयामासुः ।

हिन्दी-अनुवाद--वहाँ पर अवस्थित तथा परिश्रम के कारण अधमुंदे कमल सदृश नेत्र वाले उस (राजा) को, पुष्पित वृक्षों को हिलाते हुए, मयूरों के पिच्छ-मण्डलों को चंचल करते हुए, पतली लताओं एवं पल्लवों के समूहों को नचाते हुए, बहते हुए झरनों के जल से शीतल कणों को ढोते हुए, कुटज वृक्ष की कलियों को विकसित करते हुए, पराग-विन्दुओं को बरसाते हुए तथा कदम्बवनों को कँपाते हुए पवन धीरे-धीरे आनन्द देने लगे ।

टिप्पणी--निर्झर--झरना । निर्√झृ+अप् । कुटज--गिरिमल्लिका पुष्प । कूटे शृङ्गे जायते इति कुटजः कुट√जन्+ ड, पृषोदरादित्वात् ह्रस्वः । मकरन्द--पराग । मकरमपि अन्दति बध्नाति इति मकरन्दः मकर√अन्द्+अण्, शक० पररूप । इस गद्यखण्ड में एक ही पवन के अनेक क्रियाओं के साथ सम्बन्ध होने से दीपक अलंकार है ।

अनन्तरमनवरतकरालकाककौलेयककुलकवलनाकुलितकोलकरिकुरङ्गकण्ठीरवकिशोरदृषत्पृष्ठधाविते परितः परिजने, जनितविविधमृगवधूवधव्याधीन् व्याधान् निवारयितुमिवान्तरान्तरा प्रसारितकरे मध्यस्थतां गतवति गभस्तिमालिनि, सहसंवर्धितमृगविनाशशोकभरादिव वनवीरुधां पतत्सु पुष्पलोचनेभ्यो वाष्पेष्विव मध्याह्नोष्णविलीनमकरन्दबिन्दुषु, श्रूयमाणेषु वनदेवतानां वनविमर्दोपालम्भेष्विव तरुखण्डोड्डीनविविधविहङ्गविरुतेषु, विघटितार्भककुरङ्गकुटुम्बिनीकरुणकूजितव्याजेनान्यायमिव पूत्कुर्वतीषु वनराजिषु, इतस्ततः संचरच्चटुलतरतुङ्गखुरशिखरशिखोत्खातधरणिमण्डलाद्वनविनाशवार्तां गगनचरेभ्यः कथयितुमिवोत्पतितेऽम्बरतलम् अकृतपरित्राणे च मूर्च्छित इव पुनः पुनः पतति भुवि भवनपारावतपतत्रिपत्रधूसरे धूलिपटले, सकम्पकपिकलापोल्ललनलुलिततरुतरुणमञ्जरीपुञ्जनिकुञ्जाद् उद्वेजिते मञ्जु गुञ्जति वनान्तरमपरमुच्चलिते चञ्चलचञ्चरीकचक्रवाले, चङ्क्रमणक्रमेण च सम्पन्ने सैन्यस्य श्रमावसरे तस्यैव सरससरलशालद्रुमस्याधस्तान्निषण्णे श्रमभाजि राजनि ।

संस्कृत व्याख्या—अनन्तरम्—पश्चात्, अनवरतकरालकाककौलेयककुलक-वलनाकुलितकोलकरिकुरङ्गकण्ठीरवकिशोरदृषत्पृष्ठधाविते—अनवरतं निरन्तरं करालानि भयानकानि काकानां वायसानां कौलेयकानां सारमेयाणां कुलानि समूहाः तेषां कवलनाय भक्षणाय आकुलिताः व्याकुलाः ये कोलाः शूकराः करिणः गजाः कुरङ्गाः हरिणाः कण्ठीरवकिशोराः सिंहशावकाः दृषद इव पाषाणा इव तेषां पृष्ठे पश्चाद् धाविते पलायिते, परितः—सर्वतः, परिजने—आखेटक-समूहे, जनितविविधमृगवधूवधव्याधीन्—जनितः उत्पादितः विविधानाम् अने-केषां मृगाणां हरिणानां वधूनां स्त्रीणां वधस्य हननस्य व्याधिः व्यथा यैः तादृ-शान्, व्याधान्—लुब्धकान्, निवारयितुमिव—निषेद्धुमिव, अन्तरा अन्तरा—मध्ये मध्ये, प्रसारितकरे—विस्तारितकिरणे विस्तारितहस्ते च, गभस्तिमालिनि—सूर्ये, मध्यस्थतां—गगनमध्यवर्तित्वं माध्यस्थ्यं च गतवति—भजति सति, सहसंवर्धितमृगविनाशशोकभरादिव—सह आत्मना साकं संवर्धितानां पोषं गतानां मृगाणां हरिणानां विनाशशोकभरः विनाशेन वधेन यः शोकभरः दुःखभारः तस्मादिव, वनवीरुधां—वनलतानां, पुष्पलोचनेभ्यः—कुसुमनेत्रेभ्यः, बाष्पेष्विव—अश्रुष्विव, मध्याह्नोष्णविलीनमकरन्दबिन्दुषु—मध्याह्नोष्णेन मध्याह्नघर्मेण विलीनाः लयं गताः ये मकरन्दानां पुष्परजसां बिन्दवः पृथुकाः तेषु, पतत्सु—अधस्तादागच्छत्सु, वनदेवतानां—वनाधिष्ठातृदेवीनां, वनविमर्दोपालम्भेष्विव—वनविमर्देन अरण्यध्वंसेन ये उपालम्भाः सोपालम्भवचनानि तेषु इव, तरुखण्डो-ड्डीनविविधविहङ्गविरुतेषु—तरुखण्डेभ्यः—वृक्षसमूहेभ्यः उड्डीनानाम् उत्पति-तानां विविधविहङ्गानाम् अनेकविधपक्षिणां विरुतेषु कूजनेषु, श्रूयमाणेषु—आक-र्ण्यमानेषु, विघट्टितार्भककुरङ्गकुटुम्बिनीकरुणकूजितव्याजेन—विघट्टिताः अर्भकाः शिशवः यासां तादृश्यः याः कुरङ्गाणां हरिणानां कुटुम्बिन्यः मृग्यः तासां करुणं यत् कूजितम् आक्रन्दनं तस्य व्याजेन मिषेण, वनराजिषु—काननपंक्तिषु, अन्यायमिव—अनाचारमिव, पूत्कुर्वतीषु—प्रकटयन्तीषु, इतस्ततः—स्थानात्स्था-नान्तरम्, संचरच्चटुलतरतुरङ्गखुरशिखरशिखोत्खातधरणिमण्डलात्—संचरन्तः विहरन्तः चटुलतराः अतिशयेन चञ्चलाः ये तुरङ्गाः घोटकाः तेषां खुरशिख-रशिखाभिः शफशिखराग्रभागैः उत्खातम् उत्पाटितं यद् धरणिमण्डलं भूतलं तस्माद्, वनविनाशवार्तां—वनविध्वंससमाचारं, गगनचरेभ्यः आकाशविहारिभ्यः, कथयितुमिव—व्याहर्तुमिव, अम्बरतलम्—आकाशतलम्, उत्पतिते—उद्गते,

अकृतपरित्राणे च--अप्रदत्तशरणे च, मूर्च्छिते इव--मोहं प्राप्ते इव, पुनः पुनः --भूयो भूयः, भुवि--भूमौ, पतति--आगच्छति सति, भवनपारावतपतत्रिपत्र-धूसरे--भवनस्य गृहस्य ये पारावतपतत्रिणः कपोतपक्षिणः तेषां पत्रवत् पक्षवत् धूसरे धूम्रवर्णे, धूलिपटले--रजःसमूहे, सकम्पकपिकलापोल्ललनलुलितत-रुतरुणमञ्जरीपुञ्जनिकुञ्जात्--सकम्पः कम्पेन सहितः तादृशश्चासौ कपीनां वानराणां कलापः समूहः तस्य उल्ललेन उत्प्लवनेन लुलिताः खण्डिताः तरूणां वृक्षाणां तरुणाः पूर्णविकसिताः या मञ्जर्यः वल्लर्यः तासां पुञ्जाः गुच्छाः यस्मिन् तादृशो निकुञ्जः लतामण्डपः तस्मात्, उद्वेजिते व्याकुलीकृते, मञ्जु--रम्यं यथा स्यात् तथा, गुञ्जति--शब्दायमाने, अपरम्--इतरं विपिनभागम् उच्चलिते--उड्डीय गतवति, चञ्चलचञ्चरीकचक्रवाले--चपलषट्पदसमूहे, चङ्क्रमणक्रमेण--पर्यटनरीत्या, सैन्यस्य--सेनायाः, श्रमावसरे--श्रान्तिक्रमे, सम्पन्ने--सञ्जाते, तस्यैव--पूर्वोक्तस्यैव, सरसरलशालद्रुमस्य--सरसः सजलः सरलः अवक्रश्च यः शालद्रुमः सर्जवृक्षः तस्य, अधस्तात्--नीचैः श्रमभाजि--श्रमाक्लान्ते, राजनि--नृपे, निषण्णे--उपविष्टे सति,

हिन्दी-अनुवाद--तत्पश्चात् निरन्तर भयंकर कौओं और कुत्तों के समूह को काट खाने के लिए व्याकुल सूकरों तथा हाथियों, हरिणों और सिंह-शावकों के पीछे-पीछे चारों ओर सेवकों के दौड़ने लगने पर, विविध मृगवधुओं के लिए पतिवध रूपी व्याधि उत्पन्न करने वाले व्याधों को मानों रोकने के लिए बीच-बीच में किरण रूपी हाथ फैलाकर सूर्य के मध्यस्थता करने पर (आकाशमध्यवर्ती होने पर), एक ही साथ पले हुए मृगों के विनाशजन्य शोकभार के कारण वनलताओं के पुष्परूप नेत्रों से मकरन्द-बिन्दुरूप आँसुओं के गिरकर मध्याह्न की गर्मी में सूख जाने पर, वृक्ष-समूहों से उड़े हुए विविध पक्षियों के क्रन्दन के रूप में वनदेवताओं का वन-विनाशजन्य उपालम्भ-सा सुनाई पड़ने पर, विनष्ट किये गये बच्चों वाली मृग-वधुओं के करुण चीत्कार के बहाने मानो वनपंक्तियों द्वारा अन्याय का हल्ला मचाने पर, इधर-उधर संचरण करते हुए (तेजी से दौड़ते हुए) चंचल घोड़ों के खुरों की नोक से खोदे हुए भूमंडल से जंगल के विनाश की बात को आकाशचारियों तक मानो पहुँचाने के लिए आकाश में उड़े हुए किन्तु शरण न पाकर मूर्च्छित हुए की तरह, घरेलू कबूतर

के पंख के समान धूसर वर्ण वाले धूलि-समूह के बार-बार भूमि पर गिर पड़ने पर, काँपते हुए वानरों के झुंड के उछलने के कारण वृक्षों से झड़े हुए परिपक्व मंजरी-पुंज वाले निकुंजों से मधुर गुंजार करते हुए चंचल भ्रमर-समूह के दूसरे वन को चल देने पर, भाग-दौड़ करते-करते सेना को थकावट का अवसर प्राप्त हो जाने पर और उसी सरस एवं सीधे शालवृक्ष के नीचे थके हुए राजा के बैठ जाने पर,

टिप्पणी—जनित······गभस्तिमालिनि—में उत्प्रेक्षा अलंकार है। सहसं-वर्धित······मकरन्दबिन्दुषु—में उत्प्रेक्षा' रूपक और उपमा अलंकारों का संकर है। श्रूयमाणेषु······विरतेषु—में उत्प्रेक्षा अलंकार है। विघट्टित······वनरा-जिषु—में सापह्नवोत्प्रेक्षा है। संचरत्······धूलिपटले—में उपमा और उत्प्रेक्षा का संकर है। कौलेयक—कुत्ता। कुले भवः कौलेयकः कुल+ढकञ्—एय 'कुलकुक्षि'—इत्यादिना सूत्रेण। अन्तरा—बीच में। 'अथाऽन्तरेऽन्तराअन्तरेण च मध्ये स्युः' इत्यमरः।

पथिकस्यागमनम्

अकस्मात्कुतोऽपि,

> वल्लीवल्कपिनद्धधूसरशिराः स्कन्धे दधद्दण्डकं
> ग्रीवालम्बितमृन्मणिः परिकुथत्कौपीनवासाः कृशः।
> एकः कोऽपि पटच्चरं चरणयोर्बद्ध्वाऽध्वगः श्रान्तवा-
> नायातः क्रमुकत्वचा विरचितां भिक्षापुटीमुद्वहन् ॥५२॥

अन्वय—वल्लीवल्कपिनद्धधूसरशिराः स्कन्धे दण्डकं दधत् ग्रीवालम्बित-मृन्मणिः, परिकुथत्कौपीनवासाः, क्रमुकत्वचा विरचितां भिक्षापुटीम् उद्वहन्, चरणयोः पटच्चरं बद्ध्वा एकः कोऽपि कृशः, श्रान्तवान् अध्वगः आयातः ॥५२॥

संस्कृत-व्याख्या—वल्लीवल्कपिनद्धधूसरशिराः—वल्लीवल्केन लतात्वचा पिनद्धं बद्धं धूसरं धूम्रवर्णं मलिनमिति यावत् शिरः मूर्धा येन तादृशः, स्कन्धे—अंसे, दण्डकं—लगुडं, दधत्—धारयन्, ग्रीवालम्बितमृन्मणिः—ग्रीवायां कण्ठे आलम्बितः धृतः मृन्मणिः मृत्तिकाविकारो मणिः येन तादृशः, परिकुथत्कौपीन-वासाः—परिकुथत् सर्वतो विदीर्णं जीर्णमिति यावत् कौपीनम् अधोवस्त्रमेव वासः

परिधानं यस्य तादृशः, क्रमुकत्वचा—क्रमुकः पूगीफलं तस्य त्वक् वल्कलं तया, विरचितां--निर्मितां, भिक्षापुटीं—भिक्षापात्रम्, उद्वहन्—धारयन्, चरणयोः —पादयोः, पटच्चरं—जीर्णवस्त्रं, बद्ध्वा, एकः, कोऽपि--कश्चन, कृशः—दुर्बलकायः, श्रान्तवान्—क्लान्तः, अध्वगः—पान्थः, आयातः—आगतः ।।५२।।

हिन्दी अनुवाद--अकस्मात् कहीं से, लताओं के वल्कल से (अपने) मैले-कुचैले सिर को बाँधे, कंधे पर लाठी रखे, गर्दन में मिट्टी के मटकों को लटकाये, चारों ओर से फटे-पुराने लंगोट को पहने, सुपारी की छाल के बने भिक्षापात्र को लिये हुए तथा पैरों में फटे चीथड़े लपेटे एक कोई दुबला और थका हुआ पथिक आया ।।५२।।

टिप्पणी--वल्ली--लता । 'वल्ली तु व्रततिर्लता' इत्यमरः । वल्क--छाल । वलति संवृणोति इति वल्कम् $\sqrt{}$वल्+कन् । 'वल्कं वल्कलमस्त्रियाम्' इत्यमरः । दण्डक--लाठी । कुत्सितो दण्डः इति दण्डकः दण्ड+कन् । कौपीन----लंगोट । कूपपतनमर्हतीति कौपीनम् 'शालीनकौपीने अधृष्टाकार्ययोः' इति सूत्रेण निपातनात् साधुः । 'कौपीनं स्यादकार्येऽपि चीरगुह्यप्रदेशयोः' इत्यमरः । पटच्चरम्—चीथड़ा । पटत् इति अव्यक्तशब्दं चरतीति पटच्चरम् पटत्$\sqrt{}$चर्+ट । 'पटच्चरं जीर्णवस्त्रम्' इत्यमरः । अध्वग—बटोही । अध्वानं गच्छतीति अध्वगः अध्वन्$\sqrt{}$गम्+ड ।

इस श्लोक में स्वभावोक्ति अलंकार है और शार्दूलविक्रीडित छन्द है ।।५२।।

आगत्य च राजानमवलोक्य सविस्मयमेव चिन्तयांचकार ।
'अब्जश्रीसुभगं युगं नयनयोर्मौलिर्महोष्णीषवा-
नूर्णारोमसखं मुखं च शशिनः पूर्णस्य धत्ते श्रियम् ।
पद्मं पाणितले गले च सदृशं शङ्खस्य रेखात्रयं
तेजोऽप्यस्य यथा तथा सजलधेः कोऽप्येष भर्ता भुवः ।।५३।।

तदेवंविधाः खलु महनीया महानुभावा भवन्ति' इत्येवमवधार्य समुपसृत्य 'स्वस्ति स्वकान्तिनिर्जितमकरध्वजाय तुभ्यम्' इत्यवादीत् ।

अन्वय—नयनयोः युगम् अब्जश्रीसुभगं, मौलिः महोष्णीषवान् ऊर्णारोमसखं मुखं च पूर्णस्य शशिनः श्रियं धत्ते, पाणितले पद्मं, गले च शङ्खस्य रेखात्रयम्, अस्य तेजः अपि यथा तथा (मन्ये) एषः कोऽपि सजलधेः भुवः भर्ता (वर्तते) ॥५३॥

संस्कृत-व्याख्या—आगत्य च, एष—पथिकः, राजानं—नृपम्, अवलोक्य—दृष्ट्वा, सविस्मयं—साश्चर्यं, चिन्तयांचकार—विचारयामास।

नयनयोः—नेत्रयोः, युगं—युग्मम्, अब्जश्रीसुभगम्—अब्जश्रीवत् अम्भोज-कान्तिवत् सुभगं सुन्दरं, मौलिः—मस्तकं महोष्णीषवान्—बृहत्किरीटयुक्तः, ऊर्णारोमसखम्—ऊर्णा भ्रूमध्ये शुभरोमावर्तः तद्वत् रोमसखं तल्लोमयुक्तं, मुखं च—वदनं च, शशिनः—चन्द्रस्य, श्रियं—कान्तिं, धत्ते—धारयति, पाणितले—करतले, पदमं—कमलं, गले च—कण्ठे च, शङ्खस्य—कम्बोः, रेखात्रयं—तिस्रः रेखाः (सन्ति), अस्य—पुरोदृश्यमानस्य जनस्य, तेजः अपि—प्रतापोऽपि, यथा (वर्तते) तथा (मन्ये), एषः कोऽपि, सजलधेः—ससमुद्रायाः, भुवः—पृथिव्याः, भर्ता—स्वामी (विद्यते) ॥५३॥

तत्—तस्मात्, एवंविधाः—इत्थंप्रकारकाः, महनीयाः—पूज्याः, महानुभावाः—उदाराशयाः, भवन्ति—जायन्ते, इत्येवम्—इत्थम्, अवधार्य—निश्चित्य, समुपसृत्य—समीपं गत्वा, स्वकान्तिनिर्जितमकरध्वजाय—स्वकान्त्या निजसौन्दर्येण निर्जितः विजितः मकरध्वजः कामदेवः येन तादृशाय, तुभ्यं—भवते, स्वस्ति—मङ्गलम्, इति, अवादीत्—व्याहृतवान्।

हिन्दी-अनुवाद—आकर और राजा को देखकर आश्चर्य के साथ वह सोचने लगा—

'(इस व्यक्ति के) दोनों नेत्र कमल श्री के समान सुन्दर हैं, मस्तक पर विशाल पगड़ी या मुकुट है, भौंहों के बीच के रोमों (भौंर) से युक्त मुख पूर्ण चन्द्र की शोभा को धारण कर रहा है, हथेली में पद्मरेखा है, गले में शंख की जैसी तीन रेखायें हैं और इसका तेज भी जैसा (प्रभावशाली) है, उससे ज्ञात होता है कि यह कोई समुद्र सहित पृथ्वी का स्वामी है ॥५३॥

तो इस प्रकार के महानुभाव निश्चित ही पूजनीय होते हैं' इस प्रकार निश्चित करके पास जाकर 'अपनी कान्ति से कामदेव को जीत लेने वाले आपका कल्याण हो' यह कहा ।

टिप्पणी—महोष्णीषवान्—बड़ी पगड़ी या मुकुट वाला। उष्णम् ईषते हिनस्ति इति उष्णीषम् उष्ण√ईष्+क। महच्च तत् उष्णीषम् महोष्णीषम् (कर्म० स०) महोष्णीषम् अस्ति अस्य इति महोष्णीषवान् महोष्णीष+मतुप्, वत्व। यद्यपि 'न कर्मधारयान्मत्वर्थीयो बहुव्रीहिश्चेत्तदर्थप्रतिपत्तिकरः अर्थात् 'कर्मधारय से मत्वर्थीय प्रत्यय नहीं होता है यदि बहुव्रीहि से काम चल जाये' इस नियम से यहाँ मतुप् प्रत्यय नहीं होना चाहिए, किन्तु यह नियम अनित्य है कहीं नहीं भी लगता है, अतः मतुप् हो गया। 'उष्णीषं तु शिरोवेष्टे किरीटे लक्षणान्तरे' इति विश्वः। ऊर्णारोमसखम्—भौंहों के मध्यवर्ती रोमों से युक्त। 'ऊर्णा मेषादिलोम्नि स्यादावर्ते चान्तरा भ्रुवोः' इत्यमरः।

इस श्लोक में निदर्शना और अनुमान अलंकारों का अंगांगिभाव संकर है। इसमें शार्दूलविक्रीडित छन्द है ॥५३॥

राज्ञः कुतूहलम्

राजापि सविस्मयमना मनागुन्नमितमस्तकः स्वागतप्रश्नेनाभिनन्द्य 'तीर्थयात्रिक, कुतः ? प्रष्टव्योऽसि, क्व च कियच्चाद्यापि गन्तव्यम् । उपविश । विश्रम्य कथय काञ्चिदपूर्वां किंवदन्तीम् । अनेकदेशदृश्वानः किलाश्चर्यदर्शिनो भवन्तीति । न चाकस्मिकं दर्शनमपूर्वः परिचयः स्वल्पा प्रीतिरित्येकमप्याशङ्कनीयम् । अपूर्वदर्शनेऽपि न जात्या मणयः स्वच्छतामपह्नुवते । तदेहि। मुहूर्तमेकत्र गोष्ठीसुखमनुभवावः' इत्येनमवादीत् ।

संस्कृत-व्याख्या—राजापि—नृपोऽपि, सविस्मयमनाः—चकितचित्तः, मनागुन्नमितमस्तकः—मनाक् ईषत् उन्नमितः ऊर्ध्वीकृतः मस्तकः मूर्धा येन तादृशः, स्वागतप्रश्नेन—शुभागमनपृच्छया, अभिनन्द्य—सत्कृत्य, तीर्थयात्रिक—तीर्थभ्रमणशील, प्रष्टव्योऽसि—जिज्ञासितव्योऽसि, क्वच—कुत्र च, कियच्च—कियद्दूरं यावत् च, अद्यापि—सम्प्रत्यपि, गन्तव्यं त्वयेति शेषः। उपविश—

निषीद, विश्रम्य--विश्रामं कृत्वा, काञ्चित्, अपूर्वां--विलक्षणां पूर्वं न श्रुतामिति यावत्, किंवदन्तीं--वार्तां, कथय--ब्रूहि। अनेकदेशदृश्वानः--बहुदेशदर्शिनः, (जनाः) किल--निश्चयेन आश्चर्यदर्शिनः--अद्भुतद्रष्टारः, भवन्ति। आकस्मिकं--सहसा जातं, दर्शनम्--अवलोकनम्, अपूर्वः--नूतनः, परिचयः--संस्तवः, स्वल्पा--न्यूनतमा, प्रीतिः--प्रेम, इति, एकमपि, न च आशङ्कनीयं--न च शङ्कितव्यम्। अपूर्वदर्शनेऽपि--प्रथमसाक्षात्कारेऽपि, न, जात्या--सामान्यधर्मेण, मणयः--रत्नानि, स्वच्छतां--नैर्मल्यम्, आपह्नुवते--प्रच्छादयन्ति। तत्--तस्मात्, एहि--आगच्छ, एकत्र--एकस्मिन् स्थाने, गोष्ठीसुखं--वार्ताप्रमोदम्, अनुभवावः--अनुभूतं कुर्वहे, इति. एनं--पथिकम्, अवादीत्--उक्तवान्।

हिन्दी अनुवाद--राजा ने भी मन में आश्चर्य करते हुए थोड़ा सिर उठाकर स्वागत-प्रश्न से अभिनन्दन करके उससे कहा—हे तीर्थयात्री! कहाँ से आये हो? पूछने योग्य हो, (कि) कहाँ और कितनी दूर तक अभी जाना है। बैठो। विश्राम करके कोई अपूर्व वार्ता बताओ। क्योंकि अनेक देशों के द्रष्टा लोग आश्चर्यदर्शी होते हैं। अकस्मात् दर्शन हुआ है, पहिला-पहिला परिचय है और थोड़ी सी प्रीति हुई है--इनमें से एक की भी आशंका नहीं करनी चाहिए। क्योंकि अपूर्व (प्रथम वार) दर्शन होने पर भी जो जाति से मणि हैं वे (अपनी) निर्मलता को छिपाते नहीं हैं। इसलिए आओ। क्षण भर एक जगह (बैठकर) बातचीत का आनन्द लें।'

टिप्पणी--सविस्मयमनाः--आश्चर्ययुक्तचित्त वाला। विस्मयेन सहितं सविस्मयम् 'तेन सहेति' ब० स०, 'वोपसर्जनस्य' इति सूत्रेण सहस्य सादेशः। सविस्मयं मनो यस्य स सविस्मयमनाः (ब० स०)। अनेकदेशदृश्वानः--अनेक देश देखने वाले। अनेकान् देशान् पश्यन्तीति अनेकदेशदृश्वानः अनेकदेश√दृश् +क्वनिप् 'दृशेः क्वनिप्' इति सूत्रेण।

विदर्भवर्णनम्

असावपि 'अपूर्वकौतुककथाकर्णनरसिक, श्रूयतां यद्येवम्' इत्यभिधाय सुखोपविष्टस्यास्य समीपे स्वयमुपविश्य कथयितुमारभत।

'अस्ति स्वर्गसमः समस्तजगतां सेव्यत्वसंख्याग्रणी-
र्देशो दक्षिणदिङ्मुखस्य तिलकः स्त्रीपुंसरत्नाकरः ।
यस्मिंस्त्यागमहोत्सवव्यसनिभिर्धन्यैरशून्या जनै-
रुद्देशाः स्पृहणीयभावभरिताः कं नोत्सुकं कुर्वते ।।५४।।

अन्वय--स्वर्गसमः, समस्तजगतां सेव्यत्वसंख्याग्रणीः, दक्षिणदिङ्मुखस्य तिलकः, स्त्रीपुंसरत्नाकरः देशः अस्ति । यस्मिन् त्यागमहोत्सवव्यसनिभिः धन्यैः जनैः अशून्याः, स्पृहणीयभावभरिताः, उद्देशाः कम् उत्सुकं न कुर्वते ।।५४।।

संस्कृत व्याख्या--असावपि--सोऽपि, 'अपूर्वकौतुककथाकर्णनरसिक--अपूर्वाणाम् अद्भुतानां कौतुककथानां कुतूहलवार्तानाम् आकर्णने श्रवणे रसिक रसग्राहिन्, यद्येवं--कथाश्रवणे ते मतिश्चेदित्यर्थः तर्हि, श्रूयताम्--आकर्ण्यताम्, इति, अभिधाय--उक्त्वा, सुखोपविष्टस्य--सुखेन अक्लेशेन उपविष्टस्य निषण्णस्य, अस्य--नलस्य, समीपे--अन्तिके स्वयम्--आत्मना, उपविश्य--संनिषद्य, कथयितुं--वक्तुम्, आरभत--प्रारेभे । स्वर्गसमः--अमरलोकतुल्यः, समस्तजगतां--निखिललोकानां, सेव्यत्वसंख्याग्रणीः--सेव्यतागणनायां प्रथमः, दक्षिणदिङ्मुखस्य--याम्याशावदनस्य, तिलकः--विशेषकः, स्त्रीपुंसरत्नाकरः--नरनारीरूपमणीनाम् आकरः खनिः, देशः--विदर्भदेशः, अस्ति । यस्मिन्--देशे, त्यागमहोत्सवव्यसनिभिः--त्यागानां दानानां महोत्सवानाम् उल्लासमारोहाणां च व्यसनिभिः आसक्तिमद्भिः, धन्यैः--श्लाघ्यैः, जनैः--लोकैः, अशून्याः--युक्ताः, स्पृहणीयभावभरिताः--स्पृहणीयैर्मनोहरैः भावैर्वस्तुभिर्भरिताः परिपूर्णाः, उद्देशाः--प्रदेशाः, कं--जनम्, उत्सुकम्--उत्कण्ठितं, न कुर्वते--न विदधति ।

हिन्दी अनुवाद--उस (पथिक) ने भी 'हे अपूर्व कौतुकपूर्ण कथा सुनने के रसिक ! यदि ऐसी बात है तो सुनिए, यह कहकर सुख से बैठे हुए उस (राजा) के समीप स्वयं बैठकर कहना प्रारंभ किया--'स्वर्ग के समान, समस्त लोकों की सेवनीय वस्तुओं की गणना में अग्रगण्य, दक्षिण दिशा के मुख का तिलक, स्त्री-पुरुष रूपी रत्नों की खान (एक विदर्भ नाम का) देश है, जिसमें त्याग और महोत्सवों के व्यसनी धन्य लोगों से युक्त तथा अभिलषणीय भावों से भरे हुए प्रदेश किसे उत्सुक नहीं बना देते ?।।५४।।

टिप्पणी--स्त्रीपुंसरत्नाकरः--स्त्री-पुरुष रूपी रत्नों की खान या स्त्री-पुरुषों का समुद्र। स्त्री च पुमांश्च इति स्त्रीपुंसौ (द्व० स०), 'अचतुरविचतुर'--इत्यादि सूत्रेण समासान्त अच्प्रत्ययः। स्त्रीपुंसौ एव रत्नानि (मयूरव्यंसकादित्वात् रूपकरूपसमासः), तेषां रत्नानि, तेषाम् आकरः (ष० त०)।

इस श्लोक में 'स्वर्गसम' पद में उपमा, 'दक्षिणदिङ्मुखस्य तिलकः' तथा 'स्त्रीपुंसरत्नाकरः' में रूपक तथा 'सर्वानिवोत्सुकान् कुर्वते' यह अर्थतः आपाद्यमान होने से अर्थापत्ति अलंकार हैं। इसमें शार्दूलविक्रीडित छन्द है ।।५४।।

कथं चासौ न प्रशस्यते, यत्र त्रिपुरपुरन्ध्रिरोध्रतिलकहारिणा हरिविरञ्चिचूडामणिमरीचिचक्रचकोरचुम्बितचरणनखचन्द्ररुचिनिचयेन भगवता सेव्यते सेव्यतयाऽपहसितकैलासश्रीः श्रीशैलः शूलपाणिना।

संस्कृत-व्याख्या--असौ--देशः, कथं न प्रशस्यते--कथं न प्रशंसार्हो मन्यते, यत्र--देशे, त्रिपुरपुरन्ध्रिरोध्रतिलकहारिणा--त्रिपुरस्य त्रिपुरासुरस्य पुरन्ध्रीणां नारीणां रोध्रतिलकं लोध्रविशेषकं हरतीति तच्छीलेन, हरिविरञ्चिचूडामणिमरीचिचक्रचकोरचुम्बितचरणनखचन्द्ररुचिनिचयेन--हरिः विष्णुः विरञ्चिः ब्रह्मा तयोः चूडामणिमरीचीनां मौलिस्थमणिकिरणानां यत् चक्रं समूहः तदेव चकोरः चकोरपक्षी तेन चुम्बितः आस्वादितः चरणनखचन्द्ररुचिनिचयः पादनखेन्दुकान्तिसमूहो यस्य तादृशेन, भगवता--ऐश्वर्यवता, शूलपाणिना--शिवेन, सेव्यतया--भोग्यतया, अपहसितकैलासश्रीः--अपहसिता पराजिता कैलासश्रीः कैलासशोभा येन तादृशः, श्रीशैलः--तदाख्यः पर्वतः, सेव्यते--जुष्यते।

हिन्दी-अनुवाद--क्यों न उसकी प्रशंसा की जाय, जहाँ त्रिपुरासुर की स्त्रियों के लोध्रतिलक का हरण करने वाले तथा विष्णु और ब्रह्मा की चूडामणियों के किरण-समूह रूपी चकोर द्वारा चुम्बित चन्द्राकार चरण-नखों के कान्ति-समूह वाले भगवान् शूलपाणि (शिव) कैलास की शोभा की भी हँसी उड़ाने वाले श्रीशैल (पर्वत) का सेवन करते हैं।

टिप्पणी--पुरन्ध्रि--पति, पुत्र, कन्या आदि से भरी-पूरी स्त्री को पुरन्ध्रि या पुरन्ध्री कहते हैं। स्वजनसहितं पुरं धारयतीति पुरन्ध्रि पुर√धृ+खच् पृषोदरादित्वात् साधुः। 'पुरन्ध्रीणां चित्तं कुसुमसुकुमारं हि भवति, (उत्तररामचरित ४, १२)। श्री--शोभा। 'श्रीर्वेषरचना शोभा' इत्यमरः।

यहाँ के गद्यखण्ड में मरीचिचक्र में चकोरत्व का और नख में चन्द्रत्व का आरोप होने से रूपक तथा अपहसितकैलासश्री में चन्द्रत्व का आरोप होने से व्यतिरेक अलंकार हैं।

यत्र च विकचविविधवनविहारसुरभिसमीरणान्दोलितकदलीदल-व्यजनवीज्यमाननिधुवनविनोदखेदविद्राणनिद्रालुद्रविडमिथुनसनाथपरि-सराः सरसघननिचुलतलचलच्चकोरचक्रवाककुलकपिञ्जलमयूरहारी-तहारिण्यो नाकलोककमनीयतां कलयन्ति कलमकेदारसाराः सरससह-कारकारस्कराः कावेरीतीरभूमयः।

संस्कृत व्याख्या—यत्र च—विदर्भदेशे, विकचविविधवन०—विकचानि प्रफुल्लानि यानि विविधवनानि बहुविधकाननानि तेषु विहारेण सञ्चरणेन सुरभिः सुगन्धिः यः समीरणः वायुः तेन आन्दोलितानि संचालितानि कदलीदलानि रम्भा-पत्राणि एव व्यजनानि तालवृन्तकानि तैः वीज्यमानानि कृतवातानि निधुवन-विनोदखेदेन सुरतश्रमेण विद्राणानि ग्लानानि (अतएव) निद्रालूनि शयालूनि यानि द्रविडमिथुनानि द्रविडयुगलानि तैः सनाथाः युक्ताः परिसराः प्रान्तभागाः यासां तादृश्यः, सरसघननिचुलतल०—सरसाः सजलाः घनाः निविडाश्च ये निचुलाः हिज्जलवृक्षाः तेषां तले निम्नभुवि चलन्तः विहरन्तः ये चकोराः चकोर-पक्षिणः चक्रवाककुलानि कोकसमूहाः कपिञ्जलाः तित्तिरयः मयूराः बर्हिणः हारीताः तदाख्यपक्षिविशेषाः तैः हारिण्यः मनोहराः, कलमकेदारसाराः—कलमानां केदारा एव साराः यासां तादृश्यः धान्यक्षेत्रैः रमणीया इत्यर्थः, सरस-सहकारकारस्कराः—सरसाः रमणीयाः सहकाराः रसालतरवः कारस्कराः किम्पाकद्रुमाश्च यत्र तादृश्यः, कावेरीतीरभूमयः—कावेरीतटभुवः, नाकलोक-कमनीयतां—स्वर्गलोकसौन्दर्यं, कलयन्ति—धारयन्ति।

हिन्दी-अनुवाद—और जहाँ (विदर्भदेश में) खिले हुए विभिन्न वनों में विहार करने से सुगन्धित पवन द्वारा हिलाये गये केले के पत्तों से पंखा झले जाते हुए, सुरत-विनोद (रतिक्रीडा) के श्रम से क्लान्त और (अतएव) नींद में पड़े हुए द्रविड स्त्री-पुरुषों से युक्त आस-पास के भाग वाली, सरस एवं घने निचुल (वेंत) वृक्षों के नीचे घूमते हुए चकोरों और चकवों के समूह तथा तीतर, मोर, हारीत आदि पक्षियों से मनोहर, धान के खेतों से सारयुक्त और

सरस ग्राम एवं किम्पाक वृक्षों से भरी हुई कावेरी-तट की भूमियाँ स्वर्गलोक की कमनीयता को धारण करती हैं।

टिप्पणी--नाकलोक--स्वर्गलोक। 'स्वरव्ययं स्वर्गनाकौ' इत्यमरः। व्यजन --पंखा। 'व्यजनं तालवृन्तकम्' इत्यमरः। वि√अज् (क्षेपणे)+ल्यु--अन। निधुवन--मैथुन। नितरां धुवनम् अंगचालनं भवति अत्र इति निधुवनम्। निद्रालु--निद्राशील, नींद में पड़ा हुआ। नि√द्रा (कुत्सायां गतौ)+आलुच् 'स्पृहिगृहि'--इत्यादि सूत्रेण। 'स्वप्नक् शयालुर्निद्रालुः' इत्यमरः। कलमकेदार--धान के खेत। 'शालयः कलमाद्याश्च' इत्यमरः। 'केदारः क्षेत्रम्' इति चामरः।

यहाँ के गद्य-खण्ड में नाकलोक की कमनीयता का कावेरीतटभूमि के द्वारा वहन होने के कारण निदर्शना अलंकार है।

किं बहुना--

अस्तु स्वस्ति समस्तरत्ननिधये श्रीदक्षिणस्यै दिशे
स्वर्गस्पर्धिसमृद्धये हृदयहृद्गोदावरीरोधसे।
यत्र त्रस्तकुरङ्गकार्भकदृशः संभोगलीलाभुवः
सौख्यस्यायतनं भवन्ति रसिकाः कन्दर्पशस्त्रं स्त्रियः॥५५॥

अन्वय--समस्तरत्ननिधये, स्वर्गस्पर्धिसमृद्धये, हृदयहृद्गोदावरीरोधसे, श्रीदक्षिणस्यै दिशे स्वस्ति अस्तु, यत्र त्रस्तकुरङ्गकार्भकदृशः, सम्भोगलीलाभुवः, सौख्यस्यायतनं, कन्दर्पशस्त्रं रसिकाः स्त्रियः भवन्ति॥५५॥

संस्कृत-व्याख्या--समस्तरत्ननिधये--समस्तानां सकलानां रत्नानां मणीनां निधये निधानभूताय, स्वर्गस्पर्धिसमृद्धये--स्वर्गं नाकलोकं स्पर्धते इति तादृशी समृद्धिः वैभवं यस्याः तस्यै, हृदयहृद्गोदावरीरोधसे--हृदयहृत् चित्तहारकं गोदावरीरोधः गोदावरीतटं यत्र तस्यै, श्रीदक्षिणस्यै--दक्षिणाख्यायै, दिशे--काष्ठायै, स्वस्ति--कल्याणम्, अस्तु--भवतु, यत्र--यस्यां दिशि, त्रस्तकुरङ्गकार्भकदृशः--त्रस्तानां भीतानां कुरङ्गकार्भकाणां मृगशावकानामिव दृशः नयनानि यासां तादृश्यः, संभोगलीलाभुवः--सुरतक्रीडास्थल्यः, सौख्यस्य सुखस्य, आयतनं सदनं, कन्दर्पशस्त्रं--कन्दर्पस्य कामदेवस्य शस्त्रम् आयुधं, रसिकाः--रसवत्यः, स्त्रियः--नार्यः, भवन्ति--जायन्ते॥५५॥

हिन्दी-अनुवाद--बहुत क्या (कहें) सकल रत्नों की खान, स्वर्ग से स्पर्धा करने वाली समृद्धि से युक्त और मनोहर गोदावरी के तटों वाली श्रीसम्पन्न दक्षिण दिशा का कल्याण हो, जहाँ भयभीत मृगशावकों की-सी आँखों वाली, संभोग-लीला की भूमि, सुख की वास-स्थली और कामदेव की शस्त्रभूत रसिक स्त्रियाँ होती हैं ।।५५।।

टिप्पणी--अर्भक--बच्चा। अर्यते वृद्धिं प्राप्यते इति अर्भकः √ऋ (गतौ) धातोः 'अर्भकपृथुकपाका वयसि' इति उणादिसूत्रेण सिद्धिः । आयतन--घर। 'चैत्यमायतनं तुल्ये' इत्यमरः । आयतन्ते यत्र इति आ√यत्+ल्युट्—अन ।

इस श्लोक में उपमा तथा उल्लेख अलंकारों का संकर है। इसमें शार्दूल-विक्रीडित छन्द है ।।५५।।

तत्र प्रणतसुरासुरशिरः शोणमरीचिचयबहलकुङ्कुमानुलेपपल्लवितपादारविन्दद्वयस्य क्रौञ्चभिदो भगवतः सुगन्धिगन्धमादनाधिवासिनः स्कन्ददेवस्य दर्शनार्थमितो गतवानस्मि । तस्माच्च निवर्तमानेन क्वचिदेकस्मिन्नध्वरोधिनि न्यग्रोधपादपतले दीर्घाध्वश्रान्तेन विश्राम्यता मया श्रूयतां यदाश्चर्यमालोकितम् ।

संस्कृत व्याख्या--तत्र--तस्मिन् विदर्भदेशे, प्रणत सुरासुरशिरः शोणमरीचिचयबहलकुङ्कुमानुलेपपल्लवितपादारविन्दद्वयस्य--प्रणताः नम्राः ये सुरासुराः देवदानवाः तेषां शिरस्सु मूर्धसु ये शोणानां रक्तवर्णानां मरीचीनां किरणानां चयाः संघाः त एव बहलकुङ्कुमाः प्रचुरकेसराः तेषाम् अनुलेपेन चर्चया पल्लवितं किसलयितं पादारविन्दद्वयं चरणकमलयुगलं यस्य तादृशस्य, क्रौञ्चभिदः--क्रौञ्चदारणस्य, भगवतः—षडैश्वर्यसम्पन्नस्य, सुगन्धिगन्धमादनाधिवासिनः—सुगन्धिः सौरभयुक्तः गन्धमादनः तदाख्यः पर्वतः तमधिवसतीति तस्य, स्कन्ददेवस्य--कार्तिकेयस्य, दर्शनार्थं--साक्षात्करणार्थम्, इतः--अस्मात् स्थानात्, गतवानस्मि--यातोऽस्मि । तस्माच्च, निवर्तमानेन--प्रत्यागच्छता, क्वचित्—कुत्रचित्, एकस्मिन्, अध्वरोधिनि--मार्गावरोधके, न्यग्रोधपादपतले—वटतरोरधस्तात्, दीर्घाध्वश्रान्तेन--दूरमार्गगमनात्खिन्नेन, विश्राम्यता—विश्रामं कुर्वता, मया, यत् आश्चर्यम्--अद्भुतम् आलोकितं--दृष्टं, (तत्) श्रूयताम्--आकर्ण्यताम् ।

हिन्दी-अनुवाद—यहाँ प्रणाम करने के लिए झुके हुए देवों और दैत्यों के मस्तकस्थ (मुकुट-रत्नों के) लाल किरणों के समूह रूप प्रचुर कुंकुम के लेप से पल्लव जैसे (रक्तवर्ण) हुए दोनों चरणाविन्द वाले, क्रौञ्च-भेत्ता, सुरभित गन्धमादनपर्वत के निवासी भगवान् स्कन्ददेव (कार्तिकेय) के दर्शनार्थ में यहाँ से गया था। वहाँ से लौटते हुए कहीं एक मार्गरोधक वटवृक्ष के नीचे, लंबे मार्ग पर चलनें से थक जाने के कारण विश्राम करते हुए मैंने जो आश्चर्य देखा, वह सुनिए।

टिप्पणी—पल्लवित—पल्लव के समान बने। पल्लव+णिच् (नामधातु) +क्त। क्रौञ्चभिदः—क्रौञ्चपर्वत को विदीर्ण करने वाले। क्रौञ्चं भिनत्ति इति क्रौञ्चभित् क्रौञ्च√भिद्+क्विप्, तस्य। पौराणिक गाथा है कि शिवजी से धनुर्वेद सीखते समय कार्तिकेय की स्पर्धा में परशुराम ने अपने तीक्ष्ण बाण से मैनाक-पुत्र क्रौञ्च (पर्वत) को काट दिया था। इससे वह हिमालय की एक घाटी बन गया है। कहते हैं कि इसी क्रौञ्चरन्ध्र से होकर हंस मानसरोवर को जाते हैं। भगवतः—छह प्रकार के ऐश्वर्य से सम्पन्न। 'ऐश्वर्यस्य समग्रस्य धर्मस्य यशसः श्रियः। ज्ञानवैराग्ययोश्चैव षण्णां भग इतीरणा ॥' भगम् अस्ति अस्त इति भगवान् भग+मतुम्, वत्व, तस्य।

यहाँ मरीचिचय में कुङ्कुमत्व का आरोप होने से रूपक है और 'पादारविन्द' में उपमा है। इन दोनों का संकर है।

राजपुत्रीवर्णनम्

अतिललितपदविन्याससारसाधुसिन्धुस्कन्धमधिरूढा, प्रौढसखीसहायप्राया, प्रान्तपतच्चारुचामरमरुन्नर्तितालकवल्लरी, कर्णकुवलयालङ्कारधारिणी, रुचिररुचिमच्चरणनूपुरा, पुरः सरसरागगान्धर्विककण्ठमन्दरविनिःसरत्सरसगीतप्रेङ्खोलनप्रयोगेषु दत्तावधाना, नेत्रे मनाङ्मीलयन्ती, ध्रियमाणमायूरातपत्रमण्डला, मण्डलितमदनचापचक्रवक्रभ्रूः, भूपालपुत्रिका कापि क्वापि कुतोऽप्युच्चलिता तदेव न्यग्रोधपादपच्छायामण्डपमशिश्रियत्।

संस्कृत-व्याख्या—अतिललितपदविन्याससारसाधुसिन्धुरवधूस्कन्धम्—अतिललिता: अतिशयरम्या: पदविन्यासा: चरणप्रक्षेपा: एव सार: प्रधानं यस्या: तादृशी या साधुसिन्धुरवधू: प्रशस्तगन्धगजवशा तस्या: स्कन्धम पृष्ठदेशम्, अधिरूढा—कृतारोहा, प्रौढसखीसहायप्राया—प्रौढा: वयस्का: सख्य: सहचर्य: सहाया: सहायिका: प्रायेण यस्या: तादृशी, प्रान्तपतच्चारुचामरमरुन्नर्तितालकवल्लरी—प्रान्तयो: उभयपार्श्वयो: पतती वीज्यमाने ये चारुचामरे रम्यबालव्यजने तयो: मरुता वायुना नर्तिता आन्दोलिता अलकवल्लरी केशलता यस्या: तादृशी, कर्णकुवलयालङ्कारधारिणी—कर्णयो: श्रोत्रयो: कुवलयालङ्कारं नीलोत्पलभूषणं धारयति धत्ते इति तादृशी, रुचिररुचिमच्चरणनूपुरा—रुचिरौ शोभनौ रुचिमतो: कान्तियुक्तयो: चरणयो: पादयो: नूपुरौ मञ्जीरौ यस्या: तादृशी, पुर: सरसरागगान्धर्विककण्ठकन्दरविनि:सरत्सरसगीतप्रेङ्खोलनप्रयोगेषु—पुर:सरा: अग्रगामिन: सरागा: रागयुक्ता: ये गान्धर्विका: गायका: तेषां कण्ठकन्दरात् गलविवरात् विनि:सरन्ति निष्क्रम्यमाणानि यानि सरसगीतानि सुमधुरगानानि तेषां प्रेङ्खोलनप्रयोगा: आरोहावरोहक्रमा: तेषु, दत्तावधाना—प्रदत्तध्याना, नेत्रे—चक्षुषी, मनाक्—ईषत्, मीलयन्ती—निमेषयन्ती, ध्रियमाणमायूरातपत्रमण्डला—ध्रियमाणं धार्यमाणं मायूरं मयूरपिच्छनिर्मितम् आतपत्रमण्डलं छत्रचक्रवालं यस्या: तादृशी, मण्डलितमदनचापचक्रवक्रभ्रू:—मण्डलित चक्रीकृतं यद् मदनस्य कन्दर्पस्य चापचक्रं धनुर्वलयं तद्वत् वक्रे कुटिले भ्रुवौ यस्या: तादृशी कापि—अपरिज्ञाता, भूपालपुत्रिका—राजसुता, कुतोऽपि—कस्माच्चित् स्थानात्, क्वापि—कुत्रापि, उच्चलिता—प्रस्थिता, तदेव—पूर्वोक्तमेव, न्यग्रोधपादपच्छायामण्डपं—वटतरुच्छायावितानम्, अशिश्रियत्—अभजत् ।

हिन्दी अनुवाद—अत्यन्त मनोहर पद-विन्यास (चरण-क्षेप) रूप तत्त्व (प्रधान गुण) वाली उत्तम हथिनी के कंधे पर सवार, प्राय: प्रौढ सखियों को सहायक बनाये हुई, पार्श्वभाग में डुलाये जाते हुए चँवरों के वायु से लहराती हुई केशलता वाली, कानों में नीलकमल के अलंकार धारण किये हुई, कान्तियुक्त चरणों में सुन्दर नूपुर पहने हुई, आगे-आगे सुन्दर रागों को गाते हुए गवैयों के कण्ठविवर से निकले गीतों के उतार-चढ़ाव के प्रयोगों में ध्यान दिये हुई, नेत्रों को कुछ-कुछ मीचती हुई, धारण किये जाते हुए अर्थात् ऊपर लगाये गये मोरपंखों के छत्र-

मण्डल से युक्त, वक्रीकृत कामदेव के धनुष के समान टेढ़ी भौंहों वाली कोई राजकुमारी कहीं से कहीं को जाती हुई उसी वटवृक्ष के छाया-मण्डप में आ गई।

टिप्पणी--सिन्धूरवधू--हथिनी। सिन्धुः मदजलम् अस्ति अस्मिन् इति सिन्धुरः सिन्धु+र। 'सिन्धुः समुद्रे नद्यां च नदे मत्तेमदानयोः' इति विश्वः। सिन्धुरस्य वधूः सिन्धुरवधूः (ष० त०)=हस्तिनी। अलकवल्लरी--केशलता। कुवलय --नीलकमल। रुचिर--सुन्दर। नूपुर--पायल। 'मञ्जीरो नूपुरोऽस्त्रियाम्' इत्यमरः। गान्धर्विक--गायक, गवैया। गन्धर्वं कुर्वन्ति इति गान्धर्विकाः गन्धर्व+ठक्--इक। गन्धर्वं=गाना। 'गन्धर्वः पशुभेदे स्यात्.......गायने खेचरेऽपि च' इति मेदिनी। यहाँ 'मण्डलित......वक्रभ्रूः' में उपमा अलंकार है।

तां चालोक्य चिन्तितवानस्मि विस्मितमनाः--
'किं लक्ष्मीः स्वयमागता मुररिपोर्देवस्य वक्षःस्थलात्
कोपात्पत्युरुतावतारमकरोद् देवी भवानी भुवि।
श्यामाम्भोजसदृक्षपक्ष्मलचलन्नेत्रामिमां पश्यतो
धातस्तात करोषि किं न वदने चक्षुः सहस्रं मम ॥५६॥

अन्वय--लक्ष्मीः देवस्य मुररिपोः वक्षःस्थलात् स्वयम् आगता किम्, उत देवी भवानी पत्युः कोपात् भुवि अवतारम् अकरोत् किम्, हे धातः! तात! श्यामाम्भोजसदृक्षपक्ष्मलचलन्नेत्राम् इमां पश्यतः मम वदने चक्षुः सहस्रं किं न करोषि ॥५६॥

संस्कृत-व्याख्या--लक्ष्मीः--श्रीः, देवस्य--भगवतः, मुररिपोः--विष्णोः, वक्षःस्थलात्--उरः स्थानात्, स्वयं--साक्षात्, आगता--आयाता, किम्, उत--अथवा, देवी--भगवती, भवानी--पार्वती, पत्युः--स्वामिनः, कोपात्--क्रोधात्, भुवि--पृथिव्याम्, अवतारम् अकरोत्--अवतीर्णाऽभवत्, किम्, हे धातः--हे ब्रह्मन्, तात--पूज्य, श्यामाम्भोजसदृक्षपक्ष्मलचलन्नेत्रां--श्यामाम्भोजसदृक्षे नीलकमलतुल्ये पक्ष्मले पक्ष्मयुक्ते चलती चञ्चले नेत्रे चक्षुषी यस्याः तादृशीम्, पुरोदृश्यमानां (राजकुमारीं) पश्यतः--अवलोकयतः, मम--मे, वदने--मुखे, चक्षुःसहस्रं--सहस्रं नेत्राणीत्यर्थः, किं न करोषि--कुतो न विधत्से ॥५६॥

हिन्दी-अनुवाद--उसे देखकर आश्चर्यित मन वाला मैं सोचने लगा--

'क्या स्वयं लक्ष्मी भगवान् विष्णु के वक्षः स्थल से आ गई है ? अथवा क्या भगवती पार्वती स्वामी (शिव) के कोप से पृथ्वी पर अवतीर्ण हुई है ? हे विधाता ! पूज्य ! नीलकमल के समान पलक युक्त चंचल नेत्रों वाली इस (कन्या) को देखते हुए मेरे मुख पर आँखें हजार क्यों नहीं बना देते (जिससे मैं इसे अधिकाधिक देख सकूं) ।।५६।।

टिप्पणी--मुररिपोः--मुर नामक दैत्य के शत्रु, विष्णु के। **सदृक्ष**--समान। समानं दर्शनमस्य इति समान√दृश्+क्स, समानस्य सादेशः। **पक्ष्मल**--सुन्दर बरौनी से युक्त। पक्ष्मन्+लच्।

इस श्लोक में सन्देह एवं उपमा अलंकारों की परस्पर निरपेक्ष स्थिति होने से संसृष्टि है। इसमें शार्दूलविक्रीडित छन्द है ।।५६।।

अपि च--

> **इन्दोः सौन्दर्यमास्यं कलयति कमलस्पर्धिनी नेत्रपत्रे**
> **कालिन्द्याः कुन्तलाली तुलयति विभवं भव्यभङ्गैस्तरङ्गैः ।**
> **तस्याः किं श्लाघ्यतेऽन्यत्सुभगगुणनिधेः काप्यपूर्वेव यस्याः**
> **पुष्पेषोर्वैजयन्ती जयति युवजनोन्मादिनी यौवनश्रीः ।।५७।।**

अन्वय--आस्यम् इन्दोः सौन्दर्यं कलयति, नेत्रपत्रे कमलस्पर्धिनी, कुन्तलाली भव्यभङ्गैः तरङ्गैः कालिन्द्याः विभवं तुलयति। सुभगगुणनिधेः तस्याः अन्यत् किं श्लाघ्यते यस्याः पुष्पेषोः वैजयन्ती युवजनोन्मादिनी कापि अपूर्वा एव यौवनश्रीः जयति ।।५७।।

संस्कृत-व्याख्या--आस्यं--मुखम्, इन्दोः--चन्द्रस्य, सौन्दर्यं--रामणीयकं, कलयति--धारयति, नेत्रपत्रे--नयनदले, कमलस्पर्धिनी--पद्मातिशायिनी, कुन्तलाली--केशावली, भव्यभङ्गैः--भव्याः रमणीयाः भङ्गाः भङ्ग्यो येषां तादृशैः, तरङ्गैः--लहरीभिः, कालिन्द्याः--यमुनायाः, विभवं--विभूतिं, तुलयति--तुलनां करोति। सुभगगुणनिधेः--सुभगानां सुन्दराणां गुणानां निधेः निधानभूतायाः, तस्याः--राजकुमार्याः, अन्यत्--इतरत्, किं, श्लाघ्यते--प्रशस्यते, यस्याः, पुष्पेषोः--पुष्पबाणस्य (कामदेवस्य), वैजयन्ती--पताका, युवजनो-

न्मादिनी—युवजनानां तरुणजनानाम् उन्मादिनी उन्मादयित्री, कापि—अनिर्वचनीया, अपूर्वा—विलक्षणा, एव, यौवनश्रीः—तारुण्यशोभा, जयति—सर्वोत्कर्षेण वर्तते ॥५७॥

हिन्दी अनुवाद—और भी, (उस राजकुमारी का) मुख चन्द्रमा के सौन्दर्य को प्रस्तुत करता है, पत्राकार नयन कमल से स्पर्धा करते हैं, और केश-राशि सुन्दर भंगिमाओं वाली तरंगों से (युक्त) यमुना के वैभव की तुलना कर रही है। सुन्दर गुणों की निधिभूत उस (राजकुमारी) के अन्य किस (अंग) की प्रशंसा की जाये, जिसकी कामदेव की पताका रूप, युवकों को उन्मत्त कर देने वाली कोई अपूर्व ही यौवन-श्री सर्वोत्कृष्ट है ॥५७॥

टिप्पणी—आस्यम्—मुख । अस्यन्ते वर्णाः येन तत् आस्यम्=मुखम्, लक्षणया तन्मण्डलमपि आस्यमुच्यते । 'मुखं मुखान्तरालं च द्वयमास्यमुदीरितम्' इति शाश्वता । कुन्तलाली—केशपंक्ति । 'चिकुरः कुन्तलो बालः कचः केशः शिरोरुहः' इत्यमरः । तुलयति—तुलना या समता करती है । पुष्पेषोः—पुष्प ही जिसके बाण हैं । पुष्पाण्येव इषवो यस्य स पुष्पेषुः (ब० स०), तस्य । वैजयन्ती—पताका । 'पताका वैजयन्ती स्यात्' इत्यमरः ।

इस श्लोक के पूर्वार्ध में दो निदर्शना अलंकार हैं और यौवनश्री में वैजयन्ती का आरोप होने से रूपक भी है । फिर इनकी संसृष्टि हो जाती है । इसमें स्रग्धरा छन्द है । उसका लक्षण—'म्रभ्नैर्यानां त्रयेण त्रिमुनियतियुता स्रग्धराकीर्तितेयम्' ॥५७॥

अपि च—

आकारः स मनोहरः स महिमा तद्वैभवं तद्वयः
सा कान्तिः स च विश्वविस्मयकरः सौभाग्यभाग्योदयः ।
एकैकस्य विशेषवर्णनविधौ तस्याः स एव क्षमो
यस्य स्यादुरगप्रभोरिव मुखे जिह्वासहस्रद्वयम् ॥५८॥

अन्वय—तस्याः स मनोहरः आकारः, स महिमा, तद् वैभवं, तत् वयः, सा कान्तिः, स विश्वविस्मयकरः सौभाग्यभाग्योदयः च, एकैकस्य विशेषवर्णनविधौ स एव क्षमः यस्य मुखे उरगप्रभोः इव जिह्वासहस्रद्वयं स्यात् ॥५८॥

संस्कृत-व्याख्या—तस्याः—राजपुत्र्याः, सः—अवर्णनीयः, मनोहरः—सुन्दरः, आकारः—आकृतिः, सः, महिमा—माहात्म्यं, तद्, वैभवं—विभूतिः, तत्, वयः—आयुः, सा, कान्तिः—शोभा, सः, विश्वविस्मयकरः—आश्चर्यकृत्, सौभाग्यभाग्योदयः—सौभाग्यं सौन्दर्यमेव भाग्यं भागधेयं तस्य उदयः आविर्भावः, च—तथा, एकैकस्य—प्रत्येकस्य, विशेषवर्णनविधौ—विशेषप्रशंसनकर्मणि, स एव—जनः, क्षमः—समर्थः, यस्य—जनस्य, मुखे—आनने, उरगप्रभोः—शेषनागस्य, इव—यथा, जिह्वासहस्रद्वयं—द्विसहस्ररसनावत्त्वं, स्यात्—भवेत् ॥५८॥

हिन्दी-अनुवाद—और भी, उसकी वह मनोहर आकृति, वह महिमा, वह वैभव, वह अवस्था, वह कान्ति, वह संसार को विस्मय में डालने वाला सौभाग्य या सौन्दर्य का भाग्योदय, इनमें से एक-एक के विशेष वर्णन-व्यापार में वही समर्थ है जिसके मुख में शेषनाग की तरह दो हजार जिह्वायें हों ॥५८॥

टिप्पणी—महिमा—माहात्म्य या गौरव। महतो भावः महिमा महत्+इमनिच्। उरगप्रभोः—सर्पराज अनन्तशेष के। उरसा गच्छतीति उरगः उरस्√गम्+ड, सलोपश्च, उरगाणां प्रभुः उरगप्रभुः (ष० त०), तस्य। जिह्वासहस्रद्वयम्—दो सहस्र जिह्वायें। क्योंकि साँप की दो जीभें प्रसिद्ध हैं, अतएव उसका नाम द्विजिह्व पड़ा है। इसी तरह शेषराज के एक सहस्र सिर या मुख प्रसिद्ध हैं। प्रत्येक मुख में दो-दो जीभों के हिसाब से द्विसहस्र जिह्वाओं का होना स्वतः सिद्ध है।

इस श्लोक में 'जिसके मुख में दो सहस्र जिह्वायें होंगी, वही उसके वर्णन में समर्थ होगा' ऐसी संभावना होने से संभावना अलंकार है और 'उरगप्रभोरिव' में उपमा है, फिर उन दोनों का संकर हो जाता है। इसमें शार्दूलविक्रीडित छन्द है ॥५८॥

सापि यथा त्वमिदानीं मामिह पृच्छसि तथार्धपथमिलितं कञ्चिदुदीचीनमध्वगं दक्षिणस्यां दिशि प्रस्थितमादरेण पृच्छन्ती मुहूर्तमिव तत्रैव विश्रमितुमारभत। श्रुतश्चायं मयापि तेन तस्याः पुरः कस्यचिदुदीच्यनरपतेः श्लाघ्यमानकथावशेषालापः।

संस्कृत-व्याख्या--सापि--राजदारिकापि, यथा--येन प्रकारेण, त्वम्--भवान्, इदानीम्--अधुना, इह--अत्र, त्वं--भवान्, मां, पृच्छसि--जिज्ञाससि, तथा, अर्धपथमिलितं--मध्येमार्ग सम्प्राप्तं, कंचित्, उदीचीनम्--उत्तरदिग्भवम्, दक्षिणस्यां दिशि--याम्यकाष्ठायाम्, प्रस्थितं--चलितम्, अध्वगम्--पथिकम्, आदरेण--सम्मानपूर्वकं, पृच्छन्ती--अनुयुञ्जाना, मुहूर्तमिव--घटिकाद्वयमिव, तत्रैव--तस्मिन्नेव स्थाने, विश्रमितुं--विश्रामं कर्तुम्, आरभत--प्रवृत्ता । मयापि--पथिकेन, तेन--उदीचीनेनाध्वगेन, तस्याः--राजकुमार्याः पुरः--अग्रे, कस्यचित्--अज्ञातस्य, उदीच्यनरपतेः--उत्तरदेशवासिनृपस्य, श्लाघ्यमाकथावशेषालापः--श्लाघ्यमानकथायाः प्रशंसनीयवार्तायाः अवशेषालापः अवशिष्टसंलापः, श्रुतः--आकर्णितः ।

हिन्दी-अनुवाद--जैसे इस समय आप यहाँ मुझसे पूछ रहे हैं उसी प्रकार वह (राजकुमारी) भी आधे मार्ग में मिले हुए किसी उत्तर दिशा के पथिक से, जो दक्षिण दिशा की यात्रा पर था, आदर के साथ पूछती हुई दो घड़ी वहीं विश्राम करने लगी । मैंने भी उस (राजकुमारी) के सम्मुख (पथिक) से किसी उत्तर देश के राजा की प्रशंसनीय कथा का यह अवशिष्ट वार्तालाप सुना ।

टिप्पणी--**अर्धपथ**--आधा रास्ता । पथः अर्धम् इति अर्धपथम् (एकदेशि-तत्पुरुषसमास) । **उदीचीनम्**--उत्तर दिशा या देश में होने वाला । उदीची+ख--ईन । **उदीच्य**--उत्तर का या पश्चिमोत्तर देश का । उदीची+यत् । **श्लाघ्यमान**--प्रशंसनीय । √श्लाघ्+लट् कर्मणि--शानच् ।

तस्मिन् स्मितमुखे यूनि यूपदीर्घभुजद्वये ।
ते धन्या न्यपतन् येषां कन्दर्पसदृशे दृशः ॥५६॥

अन्वय--स्मितमुखे, यूपदीर्घभुजद्वये, कन्दर्पसदृशे तस्मिन् यूनि येषां दृशः न्यपतन् ते धन्याः ॥५६॥

संस्कृत-व्याख्या--स्मितमुखे--स्मितम् ईषद्धास्यं मुखे आनने यस्य तादृशे, यूपदीर्घभुजद्वये--यूपो यज्ञस्तम्भः तद्वत् दीर्घं विशालतरं भुजद्वयं बाहुयुगं यस्य तादृशे, कन्दर्पसदृशे--कामदेवतुल्ये, तस्मिन्--प्रसिद्धे, यूनि--तरुणे,

येषां——जनानां, दृशः——नेत्राणि, न्यपतन्——पतितानि, ते——जनाः, धन्याः——भाग्यशालिनः ॥५९॥

हिन्दी-अनुवाद——मुसकराते हुए मुख वाले, यज्ञस्तम्भ के समान लंबी दोनों भुजाओं वाले तथा कन्दर्प के सदृश उस युवक पर जिनकी दृष्टियाँ पड़ जाती हैं, वे धन्य हैं ॥५९॥

टिप्पणी——यूपदीर्घभुजद्वये——जिनकी दोनों भुजायें यज्ञस्तम्भ के समान लंबी या विशाल हैं। दृशः——दृष्टियाँ। √दृश्+क्विन्। धन्याः——धनं लब्धारः इति धन्याः धन+यत्।

इस श्लोक में दो उपमाओं का संकर है। इसमें अनुष्टुप् छन्द है ॥५९॥

किं बहुना——

सा त्वं मन्मथमञ्जरी स च युवा भृङ्गस्तवैवोचितः
श्लाघ्यं तद्भवतोः किमन्यदपरं किं त्वेतदाशास्महे ।
भाग्यैर्योग्यसमागमेन युवयोर्मानुष्यमाणिक्ययोः
श्रेयानस्तु विधेर्विचित्ररचनासंकल्पशिल्पश्रमः ॥६०॥

अन्वय——सा त्वं मन्मथमञ्जरी, स च युवा, तव एव उचितः भृङ्गः, तद् भवतोः किमन्यत् श्लाघ्यं, किं तु एतद् अपरम् आशास्महे भाग्यैः मानुष्यमाणिक्ययोः युवयोः योग्यसमागमेन विधेः विचित्ररचनासंकल्पशिल्पश्रमः श्रेयान् अस्तु ॥६०॥

संस्कृत-व्याख्या——सा——पूर्वोक्ता, त्वं——राजकुमारी, मन्मथमञ्जरी——मन्मथस्य कन्दर्पस्य मञ्जरी वल्लरी, स च——पूर्ववर्णितः, युवा——युवकः, तव एव——भवत्या एव, उचितः——योग्यः, भृङ्गः——भ्रमरः, तत्——तस्मात्, भवतोः——युवयोः, किम्, अन्यत्——इतरत्, श्लाघ्यम्——प्रशस्यम्, किं तु——परन्तु, एतत्, अपरम्——अन्यत्, आशास्महे——अभिलषामः, (यद्) भाग्यैः——भागधेयैः, मानुष्यमाणिक्ययोः——मानवरत्नयोः, युवयोः——उदीच्यनृपतेः तव च, योग्यसमागमेन——उचितसंयोजनेन, विधेः——विधातुः, विचित्ररचनासंकल्पशिल्पश्रमः——विचित्ररचनायाः अपूर्वनिर्मितेः संकल्पो मानसं कर्म यत्र तादृशः शिल्पश्रमः निर्माणप्रयासः, श्रेयान्——प्रशस्यतरः, अस्तु——भवतु ॥६०॥

हिन्दी-अनुवाद—बहुत क्या (कहें)। वह तुम काममञ्जरी हो और वह युवक भ्रमर है, जो तुम्हारे ही योग्य है। इसलिए तुम दोनों की और क्या प्रशंसा की जाय किन्तु यही अतिरिक्त आशा करते हैं कि भाग्यों के द्वारा मानवरत्न तुम दोनों के समागम से विधाता के अपूर्व रचना के संकल्प का शिल्पश्रम (अर्थात् संकल्प को मूर्त रूप देने का श्रम) सफल हो ॥६०॥

टिप्पणी—**मञ्जरी**—मञ्जुत्वम् ऋच्छति इति मञ्जरी मञ्जु√ऋ+इ 'अच इः' इत्योणादिकसूत्रेण, शकन्ध्वादित्वात् पररूपम्=मञ्जरिः, ङीषि कृते मञ्जरी इति। **भवतोः**—भवती च भवान् च इति भवन्तौ 'पुमान् स्त्रिया' इति सूत्रेण एकशेषसमासः, तयोः। **मानुष्यमाणिक्ययोः**—मानव-समुदाय में रत्न=श्रेष्ठ अर्थात् नर-रत्न। मनुष्याणां समूहः मानुष्यम् मनुष्य+अण्। मणिके तन्नामके नगरे भवम् इति माणिक्यम् मणिक+ष्यञ्।

इस श्लोक में रूपक तथा सम अलंकारों में अंगागिभाव संबंध होने से संकर अलंकार हो जाता है। इसमें शार्दूलविक्रीडित छन्द है ॥६०॥

तन्न जाने स कः सुकृती तेन तस्याः श्रवणादेवोल्लसद्बहुलपुलकाङ्कुरोत्तम्भितांशुकायाः पुरो विस्तरेणैवं वर्णितः। न च मयापि विस्मयविस्मृतविवेकेन केयं कस्येयं कुत्र कुतो वा प्रस्थितेति प्रश्नाग्रहः कृतः। केवलमदृष्टपूर्वरूपोत्पन्नाकस्मिककौतुकातिरेकास्तम्भितसमस्तान्यव्यापारेणैकाग्रतया ग्रहनिरुद्धेनेवान्धेनेव मूकेनेव मूच्छितेनेव विषविघूर्णितेनेव स्तोभस्तम्भितेनेव गतायामपि तस्यां तेनाध्वनीनेन सह तत्रैव न्यग्रोधतरुतले सुचिरमासितमासीत्।

संस्कृत-व्याख्या—तत्—तस्मात्, न जाने—न वेद्मि, सः कः, सुकृती—पुण्यवान्, तेन—अध्वगेन, श्रवणादेव—आकर्णनादेव, उल्लसद्बहुलपुलकाङ्कुरोत्तम्भितांशुकायाः—उल्लसन् उद्गच्छन् बहुलः प्रचुरः यः पुलकाङ्कुरः रोमाञ्चोद्गमः तेन उत्तम्भितम् उत्थापितम् अंशुकं वसनं यस्याः तथाविधायाः, तस्याः—राजकुमार्याः, पुरः—समक्षम्, विस्तरेण—विस्तारपूर्वकम्, एवम्—इत्थं, वर्णितः—कथितः। न च, विस्मयविस्मृतविवेकेन—विस्मयेन आश्चर्येण विस्मृतः विस्मरणं नीतः विवेकः कर्तव्याकर्तव्यज्ञानं येन तादृशेन, मयापि, केयं—किनाम्नीयं,

कस्येयं--कस्य महानुभावस्य सुतेयं, कुत्र—कस्मिन् स्थाने, कुतो--कस्माद्वा स्थानात्, प्रस्थिता—चलिता, इति, प्रश्नाग्रहः--पृच्छाहठः, कृतः--विहितः। केवलम्, अदृष्टपूर्वरूपोत्पन्नाकस्मिककौतुकातिरेकास्तमितसमस्तान्यव्यापारेण--अदृष्टपूर्वेण पूर्वमनवलोकितेन रूपेण सौन्दर्येण उत्पन्नः जातः यः आकस्मिकः अकस्मादुद्भूतः कौतुकातिरेकः कुतूहलातिशयः तेन अस्तमिताः अस्तं गताः शान्ता इति यावत् समस्ताः समग्राः अन्यव्यापाराः इतरकार्याणि यस्य तादृशेन, एकाग्रतया--एकतानतया, ग्रहनिरुद्धेनेव—पूतनादिग्रहाविष्टेनेव, अन्धेनेव--नेत्रविहीनेनेव; मूकेनेव—वाक्शक्तिरहितेनेव, मूर्च्छितेनेव--चेतनारहितेनेव, विषविघूर्णितेनेव—विषेण गरलेन विघूर्णितेनेव उन्मादितेनेव, स्तोभस्तम्भितेनेव—स्तोभः चेष्टाविघातः तेन स्तम्भितेनेव गतिरहितेनेव, तस्यां--राजकुमार्यां, गतायामपि —प्रस्थितायामपि, तेन--पूर्वोक्तेन, अध्वनीनेन--पथिकेन, सह—साकं, तत्रैव —पूर्वोक्त एव, न्यग्रोधतरुतले--वटवृक्षस्याधः, सुचिरं—दीर्घकालं यावत्, आसितम्--उपविष्टम्, आसीत्।

हिन्दी अनुवाद—अतः मैं नहीं जानता कि वह कौन पुण्यात्मा है जिसका उस (पथिक) ने श्रवणमात्र से निकलते हुए प्रचुर रोमांचों के अंकुरों से उभरे वस्त्र वाली उस राजकुमारी के आगे विस्तार से इस प्रकार वर्णन किया था। और आश्चर्य से खोये हुए विवेक वाले मैंने भी यह कौन है, किसकी पुत्री है, कहाँ को या कहाँ से चली है—ऐसे प्रश्नों का आग्रह नहीं किया। केवल पहले न देखे गये रूप से उत्पन्न आकस्मिक कुतूहल के अतिरेक के कारण समस्त अन्य कार्यों के शान्त हो जाने पर एकाग्र हो जाने से ग्रह से रोके गये की तरह, अंधे की तरह, गूंगे की तरह, मूर्च्छित की तरह, विष से चकराये की तरह और चेष्टा-विघात से गतिहीन हुए की तरह मैं उस (राजकुमारी) के चले जाने पर भी उस पथिक के साथ वहीं वटवृक्ष के नीचे बहुत काल तक बैठा रहा।

टिप्पणी—**एकाग्रतया**—एकचित्त होने से। एकम् अग्रं प्रधानं यस्य स एकाग्रः (ब० स०), एकाग्रस्य भावः एकाग्रता एकाग्र+तल्+टाप् (आ), तया। **आसितम्**--बैठा हुआ। यह 'आसीत्' क्रिया का विशेषण है। किन्तु ऐसा प्रयोग व्याकरण-सम्मत नहीं है।

यहाँ के गद्य-खण्ड में उत्प्रेक्षा अलंकार है।

तदायुष्मन्नेष कथितः स्ववृत्तान्तः । तस्यां दिशि तया सकलजगज्ज्योत्स्नया, अस्मिन्नपि देशे निःशेषजननयनकुमुदेन्दुना त्वया दृष्टेन दृष्टं यद् द्रष्टव्यम् । अभूच्च मे श्लाघ्यं जन्म। जाते कृतार्थे चक्षुषी। सम्पन्नः सफलः परिभ्रमणप्रयासः। तदिदानीं किमन्यत्। अनुमन्यस्व स्वविषयगमनाय माम्' इत्यभिधाय व्यरंसीत् ।

संस्कृत-व्याख्या—तत्—तस्मात्, आयुष्मन्—हे जैवातृक, एषः—अयं, स्ववृत्तान्तः—निजोदन्तः, कथितः—वर्णितः । तस्यां दिशि—दक्षिणस्यां दिशि, सकलजगज्ज्योत्स्नया—सम्पूर्णविश्वचन्द्रिकया, तया—राजकुमार्या, अस्मिन्नपि, देशे, निःशेषजननयनकुमुदेन्दुना—निःशेषाणां समस्तानां जनानां लोकानां नयनानि नेत्राणि एव कुमुदानि कैरवाणि तेषाम् इन्दुना चन्द्रेण, त्वया—भवता, दृष्टेन—साक्षात्कृतेन, दृष्टं—साक्षात्कृतं, यत्, द्रष्टव्यं—साक्षात्कर्तुं योग्यम् (आसीत्) । मे—मम, जन्म—जनिः, श्लाघ्यं—प्रशंसनीयम्, अभूत् । चक्षुषी—नेत्रे, कृतार्थे—कृतकृत्ये, जाते—अभूताम् । परिभ्रमणप्रयासः—परिभ्रमणस्य पर्यटनस्य प्रयासः प्रयत्नः, सफलः—फलवान्, सम्पन्नः—संजातः। तत्—तस्मात्, इदानीम्—अधुना, अन्यत्—अपरम्, किम् अवशिष्टमिति शेषः । स्वविषयगमनाय—स्वदेशप्रस्थानाय, माम्, अनुमन्यस्व—अनुजानीहि, इति, अभिधाय—उक्त्वा, व्यरंसीत्—तूष्णीं बभूव ।

हिन्दी अनुवाद—तो, हे आयुष्मन् ! यह मैंने अपना वृत्तान्त कह दिया । उस (दक्षिण) दिशा में सम्पूर्ण संसार की चाँदनी रूप उस (राजकुमारी) और इस देश में सभी लोगों के नेत्र रूपी कुमुदों के लिए चन्द्रमा रूपी आपके दर्शन कर लेने पर मैंने (सब कुछ) देख लिया, जो देखने योग्य था। मेरा जन्म श्लाघनीय हो गया। आँखें कृतार्थ हो गईं। पर्यटन का परिश्रम सफल हो गया । तो अब और क्या । मुझे अपने देश को जाने के लिए आज्ञा दीजिए ।' यह कहकर वह चुप हो गया ।

टिप्पणी—वृत्तान्त—समाचार । 'वार्ता प्रवृत्तिर्वृत्तान्त उदन्तः स्यात्' । ज्योत्सा—चन्द्रिका, चांदनी । व्यरंसीत्—विरत या चुप हो गया । -लुङ् (प्र० पु० ए), 'व्याङ्परिभ्यो रमः' इति सूत्रेणात्मनेपदत्वम् ।

इस गद्यखण्ड में 'सकलजगज्ज्योत्स्नया' तथा 'नयनकुमुदेन्दुना' में रूपक अलंकार है।

राज्ञश्चिन्ता

राजाप्येतदाकर्ण्य चिन्तितवान् ।
स्त्रीमाणिक्यमहाकरः स विषयः पान्थोऽप्ययं तथ्यवाग्
व्यापारोऽपि विधेर्विचित्ररचनस्तत्किं न संभाव्यते ।
किं त्वाश्चर्यमदृष्टरूपविभवाप्याकर्ण्यमाना सती
कान्तेत्युन्नतचेतसोऽपि कुरुते नाम्नैव निम्नं मनः ।।६१।।

अन्वय--स विषयः स्त्रीमाणिक्यमहाकरः, अयं पान्थः अपि तथ्यवाक्, विधेः व्यापारः अपि विचित्ररचनः, तत् किं न संभाव्यते, किं तु अदृष्टरूपविभवा अपि कान्ता इति नाम्ना एव आकर्ण्यमाना सती (सा) उन्नतचेतसः अपि (मम) मनः निम्नं कुरुते (इति) आश्चर्यम् ।।६१।।

संस्कृत-व्याख्या—सः--पथिकेनोक्तः, विषयः—देशः, स्त्रीमाणिक्यमहाकरः --स्त्रिय एव रमण्य एव माणिक्यानि रत्नानि तेषां महाकरः महाखनिः (अस्ति), अयं—पुरो दृश्यमानः, पान्थः--पथिकः, अपि, तथ्यवाक्--सत्यवक्ता, विधेः-- विधातुः, व्यापारः अपि--कर्म अपि, विचित्ररचनः--विचित्रा अद्भुता रचना सृष्टिर्यत्र तादृशः, तत्--तस्मात्, किं न संभाव्यते--किं न संभवम् ? किं तु-- परन्तु, अदृष्टरूपविभवा अपि--अदृष्टः अनवलोकितः रूपविभवः सौन्दर्यवैभवं यस्यास्तयाविधापि, कान्ता--रमणीया, इति, नाम्ना एव--नाममात्रेणैव, आकर्ण्यमाना—श्रूयमाणा (सती सा) उन्नतचेतसः--प्रशस्तमनसः, अपि (मम) मनः--चित्तं, निम्नं कुरुते--अधीरं करोति, (इति) आश्चर्यम्—अद्भुतम् ।।६१।।

हिन्दी-अनुवाद—राजा भी यह सुनकर सोचने लगा--वह (विदर्भ) देश स्त्रीरूप रत्नों की विशाल खान है, यह पथिक भी सत्यवक्ता है, विधाता का व्यापार (कार्य) भी विचित्र रचना से युक्त होता है। अतः क्या संभव नहीं है ? किन्तु न देखे गये सौन्दर्य-वैभव वाली भी केवल 'कमनीय है' इस प्रकार सुनी जाती हुई वह (विदर्भराजकुमारी मुझ) उन्नत चित्त वाले के भी मन को अधीर कर रही है, यह आश्चर्य है ।।६१।।

तदायुष्मन्नेष कथितः स्ववृत्तान्तः । तस्यां दिशि तया सकलजगज्ज्योत्स्नया, अस्मिन्नपि देशे निःशेषजननयनकुमुदेन्दुना त्वया दृष्टेन दृष्टं यद् द्रष्टव्यम् । अभूच्च मे श्लाघ्यं जन्म। जाते कृतार्थे चक्षुषी। सम्पन्नः सफलः परिभ्रमणप्रयासः। तदिदानीं किमन्यत्। अनुमन्यस्व स्वविषयगमनाय माम्' इत्यभिधाय व्यरंसीत् ।

संस्कृत-व्याख्या—तत्—तस्मात्, आयुष्मन्—हे जैवातृक, एषः—अयं, स्ववृत्तान्तः—निजोदन्तः, कथितः—वर्णितः । तस्यां दिशि—दक्षिणस्यां दिशि, सकलजगज्ज्योत्स्नया—सम्पूर्णविश्वचन्द्रिकया, तया—राजकुमार्या, अस्मिन्नपि, देशे, निःशेषजननयनकुमुदेन्दुना—निःशेषाणां समस्तानां जनानां लोकानां नयनानि नेत्राणि एव कुमुदानि कैरवाणि तेषाम् इन्दुना चन्द्रेण, त्वया—भवता, दृष्टेन—साक्षात्कृतेन, दृष्टं—साक्षात्कृतं, यत्, द्रष्टव्यं—साक्षात्कर्तुं योग्यम् (आसीत्) । मे—मम, जन्म—जनिः, श्लाघ्यं—प्रशंसनीयम्, अभूत् । चक्षुषी—नेत्रे, कृतार्थे—कृतकृत्ये, जाते—अभूताम् । परिभ्रमणप्रयासः—परिभ्रमणस्य पर्यटनस्य प्रयासः प्रयत्नः, सफलः—फलवान्, सम्पन्नः—संजातः। तत्—तस्मात्, इदानीम्—अधुना, अन्यत्—अपरम्, किम् अवशिष्टमिति शेषः । स्वविषयगमनाय—स्वदेशप्रस्थानाय, माम्, अनुमन्यस्व—अनुजानीहि, इति, अभिधाय—उक्त्वा, व्यरंसीत्—तूष्णीं बभूव ।

हिन्दी अनुवाद—तो, हे आयुष्मन् ! यह मैंने अपना वृत्तान्त कह दिया। उस (दक्षिण) दिशा में सम्पूर्ण संसार की चाँदनी रूप उस (राजकुमारी) और इस देश में सभी लोगों के नेत्र रूपी कुमुदों के लिए चन्द्रमा रूपी आपके दर्शन कर लेने पर मैंने (सब कुछ) देख लिया, जो देखने योग्य था। मेरा जन्म श्लाघनीय हो गया। आँखें कृतार्थ हो गईं। पर्यटन का परिश्रम सफल हो गया। तो अब और क्या। मुझे अपने देश को जाने के लिए आज्ञा दीजिए।' यह कहकर वह चुप हो गया।

टिप्पणी—वृत्तान्त—समाचार। 'वार्ता प्रवृत्तिर्वृत्तान्त उदन्तः स्यात्' इत्यमरः। ज्योत्स्ना—चन्द्रिका, चाँदनी। व्यरंसीत्—विरत या चुप हो गया। वि√रम्+लुङ् (प्र० पु० ए), 'व्याङ्परिभ्यो रमः' इति सूत्रेणात्मनेपदत्वम्।

इस गद्यखण्ड में 'सकलजगज्ज्योत्स्नया' तथा 'नयनकुमुदेन्दुना' में रूपक अलंकार है।

राज्ञश्चिन्ता

राजाप्येतदाकर्ण्य चिन्तितवान् ।
स्त्रीमाणिक्यमहाकरः स विषयः पान्थोऽप्ययं तथ्यवाग्
व्यापारोऽपि विधेर्विचित्ररचनस्तत्किं न संभाव्यते ।
किं त्वाश्चर्यमदृष्टरूपविभवाप्याकर्ण्यमाना सती
कान्तेत्युन्नतचेतसोऽपि कुरुते नाम्नैव निम्नं मनः ॥६१॥

अन्वय--स विषयः स्त्रीमाणिक्यमहाकरः, अयं पान्थः अपि तथ्यवाक्, विधेः व्यापारः अपि विचित्ररचनः, तत् किं न संभाव्यते, किं तु अदृष्टरूपविभवा अपि कान्ता इति नाम्ना एव आकर्ण्यमाना सती (सा) उन्नतचेतसः अपि (मम) मनः निम्नं कुरुते (इति) आश्चर्यम् ॥६१॥

संस्कृत-व्याख्या—सः--पथिकेनोक्तः, विषयः--देशः, स्त्रीमाणिक्यमहाकरः--स्त्रिय एव रमण्य एव माणिक्यानि रत्नानि तेषां महाकरः महाखनिः (अस्ति), अयं—पुरो दृश्यमानः, पान्थः--पथिकः, अपि, तथ्यवाक्--सत्यवक्ता, विधेः--विधातुः, व्यापारः अपि--कर्म अपि, विचित्ररचनः--विचित्रा अद्भुता रचना सृष्टिर्यत्र तादृशः, तत्--तस्मात्, किं न संभाव्यते--किं न संभवम् ? किं तु--परन्तु, अदृष्टरूपविभवा अपि--अदृष्टः अनवलोकितः रूपविभवः सौन्दर्यवैभवं यस्यास्तथाविधापि, कान्ता--रमणीया, इति, नाम्ना एव--नाममात्रेणैव, आकर्ण्यमाना--श्रूयमाणा (सती सा) उन्नतचेतसः--प्रशस्तमनसः, अपि (मम) मनः--चित्तं, निम्नं कुरुते--अधीरं करोति, (इति) आश्चर्यम्--अद्भुतम् ॥६१॥

हिन्दी-अनुवाद--राजा भी यह सुनकर सोचने लगा--वह (विदर्भ) देश स्त्रीरूप रत्नों की विशाल खान है, यह पथिक भी सत्यवक्ता है, विधाता का व्यापार (कार्य) भी विचित्र रचना से युक्त होता है। अतः क्या संभव नहीं है ? किन्तु न देखे गये सौन्दर्य-वैभव वाली भी केवल 'कमनीय है' इस प्रकार सुनी जाती हुई वह (विदर्भराजकुमारी मुञ्ज) उन्नत चित्त वाले के भी मन को अधीर कर रही है, यह आश्चर्य है ॥६१॥

टिप्पणी—विषय—देश। महाकरः—बहुत बड़ी खान। 'खनिः स्त्रियामाकरोऽस्त्री' इत्यमरः। आक्रियन्ते धातवोऽत्र इति आकरः आ√कृ+अप्। पान्थः—पथिक। पथि कुशलः इति पान्थः पथिन्+ण, पन्थादेश, आदिवृद्धि। कान्ता—सुन्दरी, रमणीय। √कम्+क्त+टाप् (आ)।

इस श्लोक में विभावना अलंकार है, क्योंकि रूप-विभव-दर्शन रूप हेतु के अभाव में भी मन के निम्नत्व करण रूप कार्य का वर्णन किया गया है। इसमें शार्दूलविक्रीडित छन्द है ॥६१॥

तथा हि—

> नो नेत्राञ्जलिना निपीतमसकृत्तस्याः स्वरूपामृतं
> नो नामान्वयपल्लवोऽपि च मया कर्णावतंसीकृतः।
> चित्रं चुम्बति चुम्बकाश्मकमयो यद्वद्बलाद्दूरत-
> स्तद्वर्त्तर्जितधैर्यमेतदपि मे तस्यां मनो धावति ॥६२॥

अन्वय—मया नेत्राञ्जलिना असकृत् तस्याः स्वरूपामृतं न निपीतम्, अन्वयपल्लवोऽपि च नो नाम कर्णावतंसीकृतः, चित्रं यद्वत् चुम्बकाश्मकम् अयः दूरतः बलात् चुम्बति तद्वत् एतद् तर्जितधैर्यम् मे मनः अपि तस्यां धावति ॥६२॥

संस्कृत-व्याख्या—मया—नलेन, नेत्राञ्जलिना—चक्षूरूपपाणिपुटेन, असकृत्—वारं वारं, तस्याः—राजदारिकायाः, स्वरूपामृतं—सौन्दर्यसुधा, न पीतं—न आस्वादितम्, अन्वयपल्लवोऽपि—वंशकिसलयोऽपि, च, नो नाम—नैव, कर्णावतंसीकृतः—श्रोत्रालङ्कारतां नीतः, चित्रम्—आश्चर्यम्, यद्वत्—यथा, चुम्बकाश्मकं—चुम्बकपाषाणखण्डम्, अयः—लौहधातुं, दूरतः—विप्रकृष्टादेव, बलात्—हठात्, चुम्बति—स्पृशति, तद्वत्—तथैव, एतत्—इदं, तर्जितधैर्यं—तर्जितं तिरस्कृतं धैर्यं गाम्भीर्यं येन तादृशं, मे—मम, मनः—चित्तम्, अपि, तस्यां—राजकुमार्यां, धावति—वेगेन गच्छति ॥६२॥

हिन्दी अनुवाद—क्योंकि, मैंने न तो नेत्र रूपी अंजलि से बार-बार उसकी सौन्दर्य-सुधा का पान किया और न ही वंश रूपी पल्लव को (कभी) कान का आभूषण बनाया; (फिर भी) आश्चर्य है कि जैसे चुम्बक पत्थर लोहे को दूर

से ही बलपूर्वक चूम (या खींच) लेता है उसी प्रकार यह धैर्य का तिरस्कार कर चुकने वाला मेरा मन भी उसके प्रति दौड़ रहा है ॥६२॥

टिप्पणी--अन्वयपल्लव:--वंशरूपी पल्लव। 'सन्ततिर्गोत्रजननकुलान्यभिजनान्वयौ' इत्यमरः। कर्णावतंसीकृतः--कानों का आभूषण बनाया। अवतंस= आभूषण। न अवतंसः अवतंसः कृतः इति अवतंसीकृतः अवतंस√कृ+च्वि, ईत्व, कर्णयोः अवतंसीकृतः इति कर्णावतंसीकृतः (ष० त०)।

इस श्लोक में भी बिना हेतु के कार्योत्पत्ति का वर्णन होने से विभावना, प्रथम पाद में रूपक और उत्तरार्ध में उपमा अलंकार भी हैं। इन सबका अंगांगिभाव से संकर है। इसमें शार्दूलविक्रीडित छन्द है ॥६२॥

सोऽयं दुर्लभेष्वनुरागः पुंसाम्, अज्वरमस्वास्थ्यम्, अदौर्गत्यं दौःस्थ्यम्, अविषास्वादनमाघूर्णनम्, असाध्वसं कम्पनम्, अनात्मविक्रयं पारवश्यम्, अजरं जाड्यम्, अनिन्धनं ज्वलनम्, अलग्नग्रहमुन्मादनम्, अवात्याघातमुद्भ्रमणम्, अमौनं मौक्यम्, अहीनश्रुति बाधिर्यम्, अनष्टदृष्टिकमन्धत्वम्, अस्खलितमनोरथं मनः स्तम्भनम्, अमन्त्र आवेशः। सर्वथा नमः सुस्थितजनदुर्जनाय मनोजन्मने, यस्यायमेवंविधो व्यापारः।

संस्कृत-व्याख्या--सोऽयं, पुंसां--पुरुषाणां, दुर्लभेषु--अलभ्यवस्तुषु, अनुरागः--प्रेम, अज्वरं--ज्वररूपशरीरतापं विनैव, अस्वास्थ्यम्--अस्वस्थता, अदौर्गत्यं--दारिद्र्यं विनैव, दौःस्थ्यं--दुःस्थितिः, अविषास्वादनम्--गरलसेवनं विनैव, आघूर्णनं--शिरोभ्रान्तिः, असाध्वसं--भीतिं विनैव, कम्पनं--वेपथुः, अनात्मविक्रयम्--आत्मनो विपणं विनैव, पारवश्यं--पराधीनत्वम्, अजरं--स्थविरत्वं विनैव, जाड्यं--चेतनाशून्यत्वम्, अनिन्धनं--काष्ठं विनैव, ज्वलनं--ज्वालः, अलग्नग्रहं--ग्रहावेशं विनैव, उन्मादनम्--उन्मत्तता, अवात्याघातं--चक्रवातप्रहारं विनैव, उद्भ्रमणम्--उद्भ्रान्तिः, अमौनं--तूष्णीम्भावं विनैव, मौक्यम्--मूकत्वम्, अहीनश्रुति--कर्णक्षतिं विनैव, बाधिर्यं--श्रवणासामर्थ्यम्, अनष्टदृष्टिकं--दृष्टिराहित्यं विनैव, अन्धत्वं-दर्शनासामर्थ्यम्, अस्खलितमनोरथम्--इच्छावरोधं विनैव, मनःस्तम्भनम्--मनसः स्तब्धीभावः, अमन्त्रः--मन्त्रप्रयोगं विनैव, आवेशः--भूताद्यावेशनम्। सुस्थितजनदुर्जनाय--

सुस्थितजनेषु स्वस्थनरेषु दुर्जनाय—दुष्टाय, मनोजन्मने—कन्दर्पाय, सर्वथा—सर्वप्रकारेण, नमः—नमस्कारः (अस्तु), यस्य—मनोजन्मनः, अयम्, एवंविधः—उक्तप्रकारकः, व्यापारः—चेष्टा (अस्ति)।

हिन्दी अनुवाद—सो यह दुर्लभ व्यक्ति के प्रति पुरुषों का अनुराग बिना ज्वर का अस्वास्थ्य है, बिना दरिद्रता के दुर्गति है, बिना विष-भक्षण के मूर्च्छा है, बिना भय के कम्पन है, बिना अपने को बेचे परधीनता है, बिना बुढ़ापे के जडता है, बिना इन्धन के जलना है, बिना ग्रहकोप के पागलपन है बिना बवण्डर की चपेट के चक्कर काटना है, बिना मौन के गूंगापन है, बिना कानों को क्षति पहुँचे बहरापन है, बिना आँखों के नष्ट हुए अन्धापन है, बिना इच्छावरोध के मन का स्तम्भन है और बिना मन्त्र-प्रयोग के (भूतादि का शरीर में) आवेश है। स्वस्थ जनों के प्रति दुर्जन कामदेव को सर्वथा नमस्कार है, जिसका यह ऐसा व्यवसाय है।

टिप्पणी—दुर्लभेषु—दुर्लभ वस्तुओं में। दुर्√लभ्+खल्। दौःस्थ्यम्—बुरी स्थिति या दुर्गति। आघूर्णनम्—सिर चकराना या मूर्च्छा। आसमन्तात् घूर्णते यस्मिन् तत् आघूर्णनम्। असाध्वसम्—बिना भय के। 'भीतिर्भीः साध्वसं भयम्' इत्यमरः। अवात्याघातम्—बवण्डर के प्रहार के बिना। वात्या=बवंडर या तूफान। वात+य+टाप्। मनोजन्मने—कामदेव को। मनसो मनसि वा जन्म यस्य स मनोजन्मा (ब० स०), तस्मै।

इस गद्य-खण्ड में विभावना अलंकार है।

पथिक-विसर्जनम्

इत्यवधारयन्नवतार्य सर्वाङ्गेभ्यो भूषणानि तस्मै सदयमदात्। तैस्तैरालापैः स्थित्वा च कञ्चित्समयमिममथ यथाप्रस्थितं पान्थं कथमपि प्रेषयामास। स्वयमपि तत्कालान्तरालमिलितैर्नक्षत्रैरिव सार्द्रमृगशिरोहस्तैः सश्रवणचित्रकृत्तिकोपस्करवाहिभिः पापर्द्धिकपरिजनैरनुगम्यमानो राजा निजावासमयासीत्।

संस्कृत-व्याख्या—इति—एवम्, अवधारयन्—निश्चिन्वन्, सर्वाङ्गेभ्यः—समस्तावयवेभ्यः भूषणानि—अलङ्कारान्, अवतार्य—पृथक्कृत्य, तस्मै—पथि-

काय, सदयं—सकरुणम्, अदात्—दत्तवान् । अथ—अनन्तरम्, तैस्तैः—अनेकविधैः, आलापैः—वार्ताभिः, कञ्चित् समयं—कञ्चित्कालं, स्थित्वा—अवस्थाय, यथाप्रस्थितं—प्रयाणाभिमुखम्, पान्थं—पथिकं, कथमपि—केनापि प्रकारेण, प्रेषयामास—विससर्ज । स्वयमपि—आत्मनापि, तत्कालान्तरालमिलितैः—तस्य कालस्य समयस्य अन्तराले मध्ये मिलितैः संगतैः, नक्षत्रैरिव—तारकाभिरिव, सार्द्रमृगशिरोहस्तैः—सार्द्राणि स्रवद्रुधिराणि मृगशिरांसि हरिणशीर्षाणि हस्तेषु पाणिषु येषां तादृशैः (नक्षत्रपक्षे—) तत्कालान्तरालमिलितैः—तत्कालम् अन्तराले आकाशे मिलितैः, सार्द्रमृगशिरोहस्तैः-आर्द्रा-मृगशिरा-हस्तनामकनक्षत्रैः, सश्रवणचित्रकृत्तिकोपस्करवाहिभिः—सश्रवणाः सकर्णाः चित्राः चित्रकाः तेषां कृत्तिका चर्म तस्य उपस्करान् उपकरणानि वहन्ति इति तैः कर्णोपेतानां चित्रकमृगाणां चर्मनिष्कासनसामग्रीधारिभिरिति यावत् (नक्षत्रपक्षे तु—) सश्रवणचित्रः श्रवणचित्रनक्षत्रसहितो यः कृत्तिकोपस्करः कृत्तिकासमहस्तं वहन्तीति तैः, पापर्द्धिकपरिजनैः—आखेटकपरिवारैः, अनुगम्यमानः—अनुस्रियमाणः, राजा—नलः, निजावासं—स्वगृहम्, अयासीत्—जगाम ।

हिन्दी-अनुवाद—इस तरह सोचते हुए अपने सभी अंगों से आभूषण उतारकर दयापूर्वक उसे दे दिया । अनन्तर उन वार्तालापों के साथ कुछ समय ठहरकर यथेच्छ प्रस्थान करने वाले उस पथिक को किसी तरह विदा किया । स्वयं भी उस समय के बीच में आकर मिले हुए (नक्षत्र-पक्ष में—आकाश में मिले हुए), आर्द्र (खून से लथपथ) मृग के सिर हाथों में लिये हुए (नक्षत्र-पक्ष में—आर्द्रा, मृगशिरा तथा हस्त नामक तारापुंजों समेत) और कान सहित चीतों की खाल तथा (शिकारोपयोगी) सामग्री धारण करने वाले (नक्षत्र-पक्ष में—श्रवण, चित्रा तथा कृत्तिका (नामक नक्षत्रों को धारण करने वाले) शिकारी परिजनों से अनुसरण किया जाता हुआ राजा अपने निवास-स्थान को चला गया ।

टिप्पणी—अवधारयन्—निश्चय करता हुआ या सोचता हुआ । अव√धृ +णिच् (स्वार्थे)+लट्—शतृ । सदयम्—दया सहित । 'कृपा दयाऽनुकम्पा स्यात्' इत्यमरः । पापर्द्धिकपरिजनैः—शिकार खेलने वाले परिजनों या अनुचरों

से । पापस्य ऋद्धिः येषाम् ते पापर्द्धयः त एव पापर्द्धिकाः स्वार्थे क प्रत्ययः, त एव परिजनाः, तैः ।

यहाँ के गद्यखण्ड में 'स्वयमपि' से लेकर श्लेषानुप्राणित उपमा अलंकार है ।

राजदशा-वर्णनम्

ततः प्रभृति च ।

हृद्योद्यानमरुत्तरङ्गितसरित्तीरे तरूणामध-
स्तल्पेऽनल्पसरोजिनीनवदलप्रायेऽपि खिन्नात्मनः ।
धीरस्यापि मनाङ्मनस्तृणकुटीकोणान्तराले बला-
ल्लग्नोऽस्येति विभाव्यते परवशैरङ्गैरनङ्गानलः ।।६३।।

अन्वय—हृद्योद्यानमरुत्तरङ्गितसरित्तीरे तरूणामधः अनल्पसरोजिनीनवदलप्राये अपि तल्पे खिन्नात्मनः धीरस्य अपि अस्य मनस्तृणकुटीकोणान्तराले अनङ्गानलः बलात् मनाक् लग्नः इति परवशैः अङ्गैः विभाव्यते ।।६३।।

संस्कृत-व्याख्या—हृद्योद्यानमरुत्तरङ्गितसरित्तीरे—हृद्योद्याने मनोहरोपवने मरुता वायुना तरङ्गितायाः संजाततरङ्गायाः सरितः नद्याः तीरे तटे, तरूणां—वृक्षाणाम्, अधः—नीचैः, अनल्पसरोजिनीनवदलप्राये—अनल्पाः प्रचुराः याः सरोजिन्यः कमलिन्यः तासां नवदलानि नवीनपत्राणि तत्प्राये तत्प्रचुरे, अपि, तल्पे—शय्यायां, खिन्नात्मनः—क्लान्तमनसः, धीरस्य—धैर्यशालिनः, अपि, अस्य—नलस्य, मनस्तृणकुटीकोणान्तराले—मनः मानसमेव तृणकुटी पर्णशाला तस्याः कोणान्तराले एकदेशे, अनङ्गानलः—कामाग्निः, बलात्—हठात्, मनाक् ईषत्, लग्नः—सम्पृक्तः, इति, परवशैः—पराधीनैः, अङ्गैः—अवयवैः, वि ाव्यते—प्रतीयते ।।६३।।

हिन्दी-अनुवाद—और तब से, मनोहर उपवन के वायु से लहराती हुई नदी के तट पर वृक्षों के नीचे प्रचुर कोमल कमलिनी-दलों से परिपूर्ण शय्या पर उदास मन वाले धीर भी उस (राजा) के मन रूपी झोंपड़ी के कोने में कामाग्नि हठात् थोड़ा लग गया, यह (उसके) पराधीन अंगों से प्रतीत हो जाता था ।।६३।।

टिप्पणी—हृद्य—सुन्दर । हृदयस्य प्रियम् इत्यर्थे हृदय+यत्, हृदादेश । तल्प—शय्या । 'तल्पं शय्याट्टदारेषु' इत्यमरः ।

इस श्लोक में मनोविनोद के हेतुओं—सरित्तीरतरुलादिकों—के रहने पर भी वे राजा का मनोविनोद नहीं कर रहे हैं, इसलिए हेतु के सद्भाव में फल का अभाव होने से विशेषोक्ति अलंकार है, 'अनङ्गानलः' तथा 'मनस्तृणकुटी' में रूपक है, उससे नल का ताप दर्शन होने से परिणाम है, परवश अंगों से अनङ्गालन की प्रतीति होने से अनुमान है और इन सब में अंगांगिभाव संबंध होने से संकर है। इसमें शार्दूलविक्रीडित छन्द है ॥६३॥

एवमस्य,

पुनरपि तदभिज्ञान् पृच्छतः पान्थसार्थान्
प्रतिपथमथ यूनो यान्ति तस्य क्रमेण
हरचरणसरोजद्वन्द्वमुद्राङ्कमौले-
र्मदनमदनिवासा वासराः प्रावृषेण्याः ॥६४॥

अन्वय—अथ पुनरपि प्रतिपथम् तदभिज्ञान् पान्थसार्थान् पृच्छतः, हरचरण-सरोजद्वन्द्वमुद्राङ्कमौलेः तस्य यूनः मदनमदनिवासाः प्रावृषेण्याः वासराः क्रमेण यान्ति ॥६४॥

संस्कृत-व्याख्या—अथ—अनन्तरम्, पुनरपि—भूयोऽपि, प्रतिपथम्—प्रतिमार्गं, तदभिज्ञान्—तस्याः पथिकोदितराजदारिकायाः अभिज्ञान् वृत्तान्तज्ञान्, पान्थसार्थान्—पथिकसमूहान्, पृच्छतः—अनुयुञ्जानस्य, हरचरणसरोजद्वन्द्वमुद्राङ्कमौलेः—हरस्य शिवस्य यत् चरणसरोजद्वन्द्वं पादारविन्दयुगलं तस्य मुद्राङ्कः मुद्राचिह्नं मौलौ मुकुटे यस्य तादृशस्य, तस्य—प्रसिद्धस्य, यूनः—तरुणस्य (नलस्य) मदनमदनिवासाः—मदनमदस्य कामोन्मादस्य निवासः स्थितिः येषु तादृशाः, प्रावृषेण्याः—वर्षाकालिकाः, वासराः—दिनानि, क्रमेण—क्रमशः, यान्ति—गच्छन्ति ॥६४॥

हिन्दी अनुवाद—इस प्रकार इस (राजा नल) के—

अनन्तर पुनः प्रत्येक मार्ग पर उस (दमयन्ती) के वृत्तान्त जानने वाले पथिक-समूहों से (उसके विषय में) पूछ-ताछ करते हुए शंकर के दोनों

चरणारविन्दों की मुद्रा से अंकित मुकुट वाले उस युवक (नल) के, कामोन्माद के निवासभूत बरसात के दिन क्रमशः बीतने लगे ॥६४॥

टिप्पणी—प्रावृषेण्याः—वर्षाकाल के। प्रावृषि भवाः प्रावृषेण्याः प्रावृष्+एण्य 'प्रावृष एण्यः' इति सूत्रेण।

इस श्लोक में 'चरणः सरोजमिव' में उपमा अलंकार है और छन्द मालिनी है। मालिनी का लक्षण—'ननमयययुतेयं मालिनी भोगिलोकैः' ॥६४॥

इति श्रीत्रिविक्रमभट्टविरचितायां दमयन्तीकथायां हरचरणसरोजाङ्कायां प्रथम उच्छ्वासः समाप्तः ॥१॥

श्रीसाम्बसदाशिवार्पणमस्तु

———